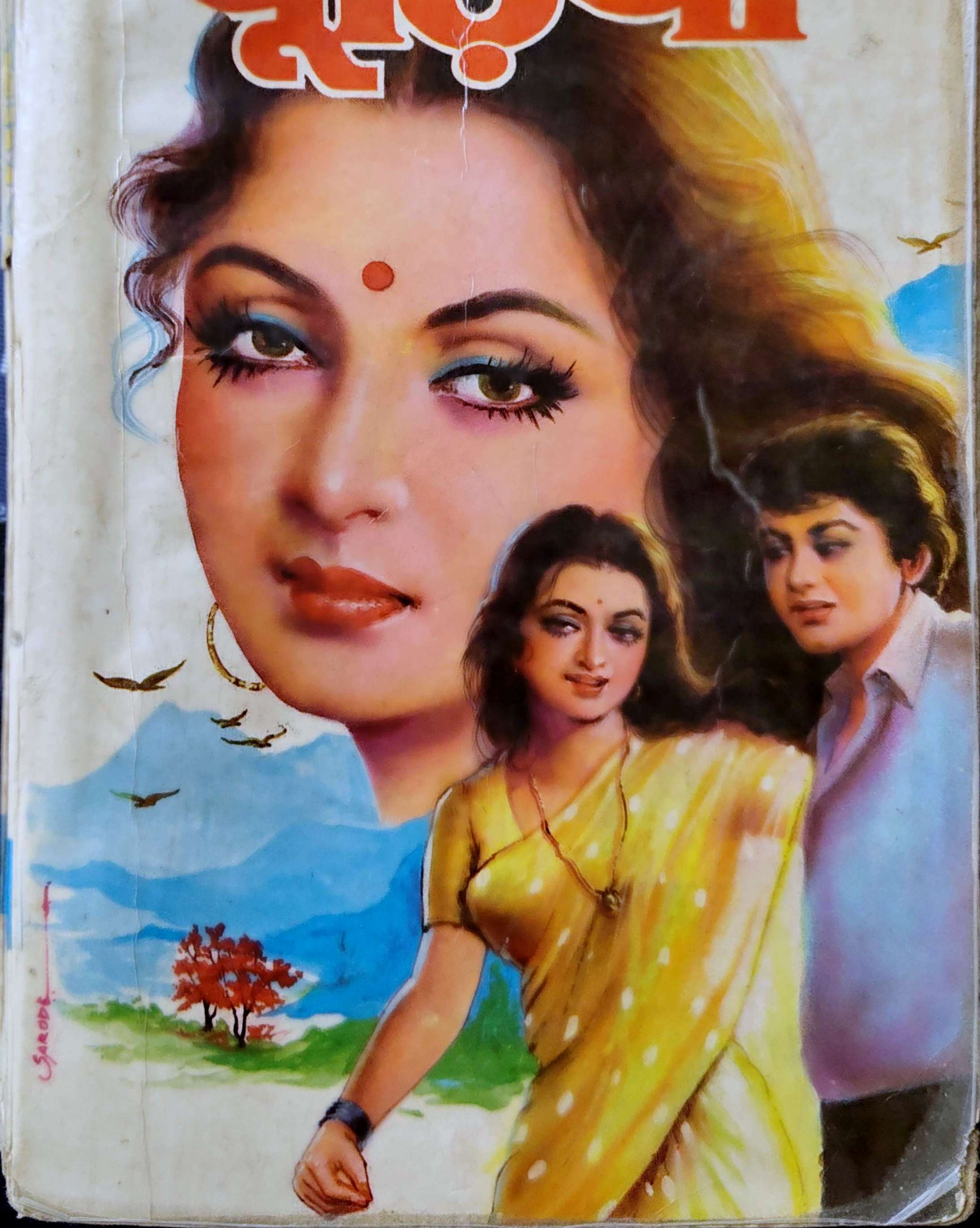
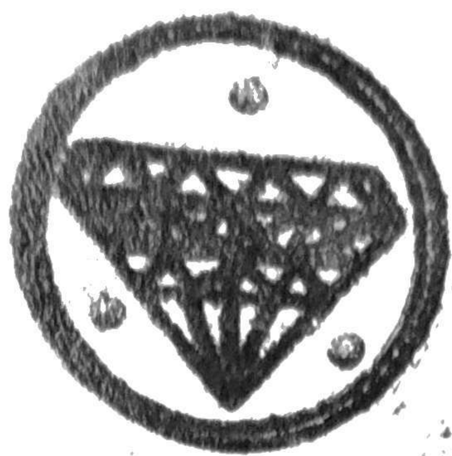
कुशवाहा 'कान्त'

चूड़ियाँ





D—१२६१

जुगल की दी हुई उन चूड़ियों की झनझनाहट से बेला का रोम-रोम प्रकम्पित हो उठा। दुःख का भार सम्हालना कठिन हो गया।

ये चूड़ियां···! जब तक ये चूड़ियां बेला की कलाइयों में पड़ी रहेंगी तब तक उसका अन्तर जलता रहेगा, उसके हृदय पर सांप खेलता रहेगा, उसकी घृणा उस कपटी जुगल की याद दिलाती रहेगी, उसका दिल रह-रहकर तड़प उठता रहेगा—तो इन्हें हाथ में रखने से लाभ ही क्या ?

पास में ही पत्थर का एक टुकड़ा पड़ा था। उसे उठाकर उसने क्रमशः दोनों कलाइयों पर दे मारा। कांच की चूड़ियां पत्थर की मार खाकर चीख उठीं—तड़प उठीं। स्नेह का बन्धन खण्ड-खण्ड होकर टूट गया—रक्त से सने हुए शीशे के टुकड़े झनझना कर जमीन पर बिखर गये—अंधेरी रात ने खून बहती हुई उन कलाइयों पर काला परदा डाल दिया।

—इसी उपन्यास में से

डायमंड पाकेट बुक्स में

सदाबहार उपन्यासकार

कुशवाहा 'कान्त'

के उपन्यास



नीलम	10.00	दानव देश	6.00
चूड़ियाँ	10.00	निर्मोही	6.00
मंजिल	6.00	आहुति	6.00
कुंकुम	6.00	अपना पराया	6.00
भंवरा	6.00	पागल	6.00
इशारा	6.00	बसेरा	6.00
अकेला	6.00	खून का प्यासा	6.00
जलन	6.00	सरोज (गीतारानी कुशवाहा)	10.00
लवंग	6.00		

कुशवाहाकान्त हिन्दी उपन्यास जगत पर पिछले 40 वर्षों से छाए हुए हैं। श्रृंगार रस, क्रांतिकारी लेखनी व जासूसी कृतियों में उनका कोई सानी नहीं है।

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि. 2715, [illegible] -110002

कुशवाहा कान्त



चूड़ियाँ

प्रकाशक :
डायमंड पाकेट बुक्स
2715, दरियागंज (मोती महल के पीछे)
नई-दिल्ली-110002
वितरक :
पंजाबी पुस्तक भंडार
दरीबा कलाँ, दिल्ली-110006
मूल्य : दस रुपये
मुद्रक : जी० आर० प्रिंटर्स, 9/3399, गांधीनगर, दिल्ली-31

CHOORIYAN : KUSHVAHA KANT
(NOVEL) Rs. 10/-

दो शब्द

प्रिय पाठकगण,

आपके प्रिय उपन्यासकार 'कुशवाहा कान्त' का नवीनतम उपन्यास 'चूड़ियां' आपकी सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

यह लेखक का बहुत ही मनोरंजक उपन्यास है जिसे आप अवश्य पसन्द करेंगे।

यदि आप चाहते हैं कि हर माह इसी प्रकार के रोचक उपन्यास आपको घर बैठे प्राप्त होते रहें तो आप डायमण्ड पाकेट बुक्स की 'अपने घर में अपनी लाइब्रेरी योजना' के सदस्य बन जाएं। हर महीने तीन पुस्तकें २४ रुपये के स्थान पर २० रुपये की वी० पी० द्वारा भेजी जाती हैं, डाक व्यय भी फ्री।

आशा है आप भी लाखों पाठकों की तरह इस योजना से लाभ उठाएंगे।

सधन्यवाद !

—प्रकाशक

चूड़ियां

'केले ले लो जी···! एक-एक पैसे जी···!'

मीठी आवाज से गांव का कोना-कोना सजग हो रहा था, जैसे उस स्वर में जाने कितना सौन्दर्य, जाने कितना माधुर्य, जाने कितनी मादकता अन्तर्हित है।

राह चलते हुए बूढ़े, सफेद भौंह वाली आंखें उठाकर देखते और बीती जवानी को याद करते चले जाते। पगडण्डी से जाते हुए जवान लाख-लाख अरमान-भरी हुई नजरें घुमाकर देखते —और देखते रह जाते। सीने का दर्द उठ खड़ा होता, कलेजा दबाकर मन मसोस लेते वे।

धूल-मिट्टी से सने आंख-मिचौनी खेलते हुए बालक, उसे देखते तो खेलना बन्द कर दौड़ पड़ते और उसे चारों ओर से घेर लेते।

कहते—'बेला दीदी! एक केला हमें दो न···!'

'पैसे हैं···?' पूछती बेला।

'हां···!' खपड़े के पैसे गढ़ लाया हूं, दीदी! देखो, कितने सुन्दर बने हैं—!' एक बालक कहता और बेला के हाथों पर गोल-गोल खपड़े का टुकड़ा रख देता।

बालकों की अज्ञानता पर बेला मन-ही-मन हंस पड़ती, परन्तु बनावटी गुस्से के साथ कहती—'चल हट! खपड़े के पैसे से केले नहीं मिलते···! तांबे का पैसा ला, तो दूं···।'

'तांबे का पैसा मेरे बाप के पास है, दीदी···!'

'और तेरे पास···?'

'हमारे पास कहां···?' भोला बालक कहता—'हम तो मिट्टी से खेलते हैं और मिट्टी ही पैसा है, दीदी···! मिट्टी से तांबे के पैसे कहां मिल सकते हैं—!'

'तो भाग जा ! केले नहीं मिलेंगे—!'

और वह छिपी मुस्कान के साथ झूमती हुई आगे बढ़ चली।

सुरीले गले से बांसुरी जैसी मीठी आवाज निकली—

'केले ले लो जी—! एक-एक पैसे जी !'

बेला नाम था उसका। बेला जैसी सुगन्ध तो उसमें नहीं थी, परन्तु बेला जैसा गौरांग शरीर उसके पास था, जो पन्द्रह-सोलह बसन्तों की मस्त बयार खाकर यौवन-जनित झकोरे खा रहा था।

गांव की बिजली थी वह। जिधर जाती चमक उठती—और जिधर चमक उठती उधर कहर हो जाता।

अंग-अंग में चांचल्य भरा था कि जैसे पग जमीन पर पड़ते ही न थे। स्वच्छ हिरन की तरह वह घूमती-फिरती। किसी बात का दुःख नहीं, किसी चीज का गम नहीं। सावन के अन्धे के लिए जैसे चारों ओर हरियाली ही थी।

'अरे बेला रानी ! सुनना तो···!'

बेला ने सर उठाया। देखा, ठाकुर बलजीत सिंह अकेले ही अपनी चौपाल के बाहर खड़े हैं। चालीस की उमर, बड़ी-बड़ी मूंछें, पिचके गाल और अंगारे जैसी क्रूर आंखें···! गांव के जमींदार हैं वे और क्रूरता के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध हैं।

परन्तु बेला को देखते ही यह पत्थर, पानी-सा बह निकला है। और बेला ठाकुर को देखकर जाने कैसी घृणा से भर उठती है। फिर भी जमींदार ने उसे बुलाया है। जाना पड़ेगा ही। वह डरे क्यों—भयभीत क्यों हो ?

मुस्कराती हुई, सर पर केले की टोकरी लादे वह ठाकुर के सामने आ खड़ी हुई। ठाकुर पि· सातुर नेत्रों से देखते रहे—सौन्दर्य का प्याला पीते रहे गुम-सुम होकर।

'क्यों बुलाया है, ठाकुर···?' बेला ने पूछा।

'केले लूंगा—और किस लिए बुलाऊंगा···!' ठाकुर ने सजग होकर कहा—'उतार टोकरी।'

कमर पर बल देकर बेला ने टोकरी उतारी और उसके एक बल पर ठाकुर की वासना हजार-हजार बल खाकर रह गई।

'कैसे दिया बेला रानी—?' पूछा ठाकुर ने।

'एक-एक पैसे जी!' बेला ने जरा मुंह विकृत कर कहा—'लेने हैं···?'

'आज के केले तो ठीक नहीं दिखते बेला···! मेरे बगीचे में देख, कितने बड़े-बड़े केले लटके हैं···!'

'जब तुम्हारे बगीचे में थे, तो मुझे क्यों बुलाया···?' बेला आंखों पर तीर चढ़ाकर बोली—'बड़े खराब हो ठाकुर तुम। लो, मैं चली।'

'अरे नहीं बेला रानी! दे दो एक दर्जन केले! तुम तो बहुत जल्द उखड़ जाती हो···।' बोले ठाकुर।

'तुम बात ही ऐसी करते हो। बताओ तो एक दर्जन कितना होता है जी?'

'बारह!'

'लो···।' कहकर बेला ने बारह केले ठाकुर के सामने रख दिये...'निकालो पैसे।'

'कितने दूं?'

'बारह पैसे और कितने? तुम तो मुझसे भी गये-बीते हो, ठाकुर! हिसाब-किताब पढ़े हो या नहीं···कि यों ही ठकुराई करने लगे।'

'सब पढ़ा हूं बेला रानी, मगर तुम्हें देखते ही भूल जाता हूं···।'

'अच्छा! यह सब चापलूसी रहने दो! जल्दी से पैसे टपको, मैं चलूं···इस तरह आंखें फाड़कर मेरी ओर क्या देख रहे हो···? बाप रे बाप! तुम्हारी आंखें हैं या बिजली के लट्टू···!'

'बिजली के लट्टू देखे हैं, बेला रानी?'

'देखा तो नहीं मगर सुना है।'

'किससे सुना है?'

'जुगलकिशोर भैया कह रहे थे···वे शहर में पढ़ते हैं न···? उन्होंने सब-कुछ देखा है। बिजली का लट्टू, मोटर, रेलगाड़ी,

रिक्शा —सभी कुछ !'

'रिक्शा क्या बला है, बेला रानी ?'

'मैं क्या जानूं···। जुगल भैया कह रहे थे कि रिक्शागाड़ी में बैल की जगह आदमी जोते जाते हैं··· कितनी मशक्कत पड़ती होगी बेचारों को··· एक आदमी को बैल की तरह जोतकर दूसरा आदमी उस पर बैठता है। सुना न ठाकुर ! शहर की बात ही निराली है। जिसके पास पैसा है वह चाहे जो करे, सब चलता है वहां···और यहां···! यहां तो गरीबों की पूरी मरन है···।'

'तू भी शहर चलेगी बेला···? चल तो ले चलूं तुझे—।'

'ना बाबा ! तुम्हीं शहर जाओ—मुझे तो अपना यह गांव ही भला है। जहां जाकर आदमी प्रेत बन जाता है, वह शहर नहीं मसान-घाट है—मुझे नहीं जाना है, मगर तुम पैसे क्यों नहीं निकालते, ठाकुर ? अभी मुझे ढेर से केले बेचने हैं।'

'आज तो पैसे नहीं हैं, बेला रानी ! कल आकर ले जाना।'

'अच्छा जी ! तो मेरे केले इधर लाओ, उधार का रोजगार करने लगूं तो दिन भर दाना मुंह में न जाय—इसी का तो सहारा है। अन्दर जाकर ठकुराइन से मांग लाओ न पैसे।'

'अच्छा ले तू नहीं मानती तो—!'

ठाकुर ने बारह पैसे निकालकर बेला के आगे फेंक दिए।

बेला उन्हें उठाते हुए बोली—'देखो जी ! पैसे फेंका न करो, इससे लक्ष्मी रूठ जाती है—।'

'अच्छा रहने दे—यह क्यों नहीं कहती कि पैसे उठाने में कमर टूट जाती है···।'

'कमर भी क्या कुलबेरा का डंठल है, ठाकुर ! जो झुकते ही टूट जाय···या लजारो है, जो छूते ही मुरझा जाय···!'

'तू यह सब अभी नहीं समझेगी, बेला !'

'अच्छा जी ! तुम समझाने को रहने दो, मैं चली—कल फिर केले लोगे···?'

'लूंगा क्यों नहीं···? तुम रोज आया करो !' बोले ठाकुर।

'भला जी···!' कहकर बेला ने टोकरी सर पर उठाई और बिना ठाकुर की ओर देखे चल पड़ी।

अतृप्त वासना का बोझ लादे, ठाकुर चौपाल में आ बैठे। बड़ी देर तक कुछ सोचते रहे, फिर पुकारा—'रामसरन···!'

'आया सरकार···!' कहता हुआ लठैत रामसरन लोहार आ पहुंचा—'क्या है मालिक?' रामसरन ठाकुर का दाहिना हाथ और विश्वासपात्र लठैत था।

बोले ठाकुर—'यह जो बड़कू खटीक की छोकरी है, उसे जानते हो, रामसरन?'

'भला बेला को कौन नहीं जानता, सरकार···?' रामसरन ने कहा—'गांव की शोभा है वह तो ठाकुर राजा···!'

'दिन-दिन कैसी निखरती आ रही है···?'

'पूछिये मत सरकार! उजले पाख का चन्द्रमा रोज-रोज दूना हो रहा है, राजा! तालाब के कुलबेरे उसके बदन के आगे मात हैं मात!'

'मगर शैतान इतनी है कि चंग पर चढ़ती ही नहीं···।'

'मैं चंग पर लाऊंगा उसे सरकार! आज्ञा हो तो अभी जाऊं···कांटों के बीच से गुलाब तोड़ लाना माली का ही काम है, राजा! महल में बैठने वाले, कांटा चुभ जाने से सी-सो करने लगते हैं!' बोला रामसरन।

'तो जाओ अभी—।'

'किधर गई है?'

'मस्जिद की ओर!' रामसरन लट्ठ उठाकर चल पड़ा। तेजी से पग बढ़ाता हुआ वह पहुंच ही गया बेला के पास।

कानों में माधुर्य बरस पड़ा—'केले ले लो, केले जी! एक-एक पैसे जी···'

'जरा रुको, बेला रानी···!' पुकारा रामसरन ने।

बेला रुकी। रामसरन पास आ गया।

'कितने दूं···?' बेला टोकरी में से केले निकालने लगी।

'अरे नहीं बेला रानी! हम गरीब आदमी केले नहीं खाते—इसे तो ठाकुर ही खा सकते हैं—। हंसकर बोला रामसरन।

'अच्छा जी! तो यह घास-पात से निकला हुआ फल तुम नहीं खा सकते···?' आश्चर्य से वह बोली—'तो क्या सोने-चांदी का कलेवा करते हो···?'

'एक बात तुमसे कहनी थी, बेला रानी!'

'फिर जल्दी कह डालो जी ! नहीं तो मुझे देर हो जायेगी—बापू राह ताकते होंगे मेरी···'

'ठाकुर तुम्हें चाहते हैं, बेला !' धीरे से बोला रामसरन।

'यही कहना चाहते थे तुम ?' बेला तुनक कर बोली—'मुझे तो सभी चाहते हैं—जुगल भैया, रशीद भैया, चुनुआ, मुबुआ—कौन नहीं चाहता···तुम तो बड़े बतोलेबाज निकले जी ! नाहक मुझे रोककर उल्टी-सीधी बात करने लगे, चलो हटो !'

जाने लगी बेला, तो आगे आकर रामसरन ने रास्ता रोक लिया।

'और कुछ ······ है···?' पूछा बेला ने।

'ठाकुर ने तुम्हारे लिये एक चीज दी है—।' रामसरन ने कहा।

'क्या दिया है, देखूं ?'

'यह !' रामसरन ने पांच रुपये का एक नोट निकालकर बेला के फैले हाथों पर रख दिया।

'यह कितने का नोट है जी ?'

'पांच रुपये का···।' रामसरन बोला।

'पांच रुपये के केले तो मेरी टोकरी में नहीं हैं—चलो, घर चलकर दे दूंगी···।' बेला ने कहा।

'ठाकुर केले नहीं लेंगे, बेला रानी ! तुम इसे वैसे ही रख लो।'

'वाह जी ! मैं कोई भिखमंगिन हूं क्या—? ले जाओ, मैं नहीं लेती इसे।'

'बेला रानी ! ठाकुर यहां के जमींदार हैं। वे गरीबों की मदद करते हैं। मदद स्वीकार न करने से उन्हें दुःख होगा—।' बोला रामसरन।

'तो क्या छबिया, अमवा सभी को ऐसे ही दे देते हैं ?' पूछा बेला ने।

'हां !'

'तब तो ठाकुर बड़े अच्छे हैं जी—! लो इस बार तो लिये लेती हूं, मगर अब कभी फोकट के पैसे नहीं लूंगी—कह देना ठाकुर से···।'

'तो पक्का रहा ?'

'कैसा पक्का-कच्चा जी ?'

'यानी…? मतलब कि तुम कब आओगी ?'

'कहकर आ रही हूं कि कल आऊंगी—फिर क्यों सूखे जा रहे हैं ठाकुर ! जैसे केले ही दिन भर खाते रहते हैं…।'

हंसता हुआ रामसरन पीछे लौट गया।

बेला बढ़ चली आगे। सामने ही गांव के पुरोहित दयाराम दूबे का कुआं था और पुरोहित जी पानी खींच रहे थे।

बेला को प्यास लग रही थी। कुएं के पास पहुंचकर उसने टोकरी जमीन पर रख दी और पक्की जगत पर जा चढ़ी।

'पण्डित काका…!' बेला ने पुकारा।

चौंककर पुरोहित ने पीछे देखा।

'चल हट ! नीचे चलकर खड़ी हो—तेरे बाप का कुआं नहीं है !'

'तुम भी तो मेरे बाप हो, पण्डित काका !' हंसकर बेला बोली और कूदकर नीचे खड़ी हो गई—'प्यास लगी है काका ! एक चुल्लू पानी पिला दो, तुम्हें केला दूंगी।'

'ले, ले—पानी पीकर भाग यहां से—बड़ी आई है केले देने वाली।'

'अच्छा जी !'

बेला ने चुल्लू रोप दिए और पुरोहित पानी पिलाने लगे।

पानी पीकर बेला ने टोकरी सर पर रखी। पुरोहित पुनः पानी खींचने लगे।

'पण्डित काका !'

'अब क्या कहना है ?'

'जुगल भैया शहर से आने वाले थे न ?' बेला ने पूछा।

'हां रे ! आ गया है, रशीद के घर गया है। वह लड़का शहर में पढ़ते-पढ़ते पूरा म्लेक्ष बन गया है…मुसलमान के यहां जाता है…भला विधर्मी की मित्रता किस काम की ? हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे।' पुरोहित जी राम नाम जपने लगे।

'मैं भी उधर ही जा रही हूं, काका ! जमीला भाभी को केले देने हैं न।' कहकर बेला उधर चल पड़ी जिधर रशीद का

मकान था।

उस गांव में पचास-साठ घर मुसलमानों के थे और इतने ही हिन्दू भी थे। मुसलमानों में संगठन अधिक था और हिन्दू अपनी परम्परागत छूआछूत एवं आपसी वैमनस्य के कारण खण्ड-खण्ड हो रहे थे।

रशीद गांव का नेक मुसलमान और जुगलकिशोर का परम मित्र था। कट्टर ब्राह्मण का जवान लड़का जुगल, शहर के वातावरण में पूरा आधुनिक बन गया था। मानव-मानव में अन्तर देखने की उसकी आदत नहीं थी, इसलिए वह रशीद के घर आता-जाता और खाता-पीता था। रशीद की बीवी जमीला को वह भाभी कहता था।

'एक गिलास पानी देना, भाभी ! प्यास लगी है !' जुगल ने कहा।

'अपना धरम क्यों बिगाड़ते हो जुगल !' जमीला ने कहा—'तुम्हारे वालिद इतने कट्टर हिन्दू हैं और तुम हो कि यहां आकर बिना पानी पीये मानते ही नहीं, जैसे तुम्हारी जिन्दगी भर की प्यास यहां आकर उमड़ पड़ती है···।'

'बातें न बनाओ, भाभी !' जुगल हंसकर बोला—'साफ कह दो कि घर में पानी नहीं है। जाड़े के कारण सबेरे-सबेरे कौन पानी खींचे···? रही धर्म-कर्म की बात तो मैं उसे नहीं मानता··· मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर करना—हमवतन हैं हम सब, हिन्दोस्तां हमारा !'

'दे दो जमीला···' रशीद हंसकर कहने लगा—'इसे एक गिलास पानी दे दो। यह बी० ए० पास करके आया है न, बातों में पार नहीं पा सकोगी तुम, मगर इसे मिट्टी के कुल्हड़ में पानी देना। यह अपना मजहब छोड़ चुका है, मगर हम अपना क्यों बिगाड़ें ?'

'रखे रहो अपना मजहब तुम···' जुगल जरा तैश में आकर बोला—'गिलास में पानी लाना, भाभी ! नहीं तो मैं पीऊंगा भी नहीं···और हां ! जरा-सी चीनी भी डाल देना···न हो तो गुड़ से भी काम चल जायेगा।'

'रहने दो जमीला, रहने दो—इसे पानी-वानी नहीं पीना है, सिर्फ तुम्हें उठाना-बैठाना चाहता है।' रशीद ने कहा।

मगर अब तक जमीला चली गई थी और थोड़ी ही देर में एक गिलास शर्बत बना लाई।

'लो पीओ।' गिलास देते हुए जमीला ने कहा।

जुगल ने एक घूंट पीया, तो मुंह बिचका कर रह गया।

'क्यों, क्या हुआ?' रशीद ने पूछा।

'कुछ नहीं...' बोला जुगल—'अच्छा शर्बत बना है, जरा तुम भी स्वाद ले लो न...।'

रशीद ने गिलास लेकर एक घूंट पीआ।

फिर हंसकर जमीला से बोला—'यह क्या मजाक किया है तुमने?'

'क्या है?' आश्चर्य में आकर जमीला ने पूछा।

'शक्कर की जगह नमक डाल लाई हो, और क्या!' रशीद ने कहा।

'ओह! बड़ी भूल हुई—नमक और शक्कर की हांडियां एक ही जगह थीं और वहां अंधेरा था, इसी से यह गलती हो गई।' जमीला पश्चाताप करती हुई बोली।

'लो—इसे पी जाओ जुगल! खारे शर्बत से पेट का दर्द अच्छा हो जाता है।' रशीद ने कहा।

'तुम्हारे पेट में दर्द हो तो तुम्हीं पी लो इसे, मैं जाता हूं। फिर कभी नहीं आऊंगा...।' कृत्रिम रोष प्रकट करते हुए जुगल ने कहा।

और तेजी के साथ दरवाजे की ओर बढ़ा। बाहर निकलते ही किसी से टक्कर लग गई। सर उठाकर देखा तो बेला थी।

बेला ने भी जुगल को देखा तो बेला की तरह खिल उठी।

बोली—'अरे जुगल भैया, तुम!'

'चल हट...! तूफान की तरह चलती है। जब टकरा गई तो कहती है—अरे जुगल भैया तुम...!'

'तूफान की तरह तो तुम्हीं आ रहे थे—अपने तो आंख खोलकर चलते नहीं—दूसरों पर रौब गांठते हैं।'

दरवाजे पर तकरार होती सुनकर मियां-बीवी बाहर निकल आये—'कहो बेला रानी! केले देने आई हो?' जमीला ने पूछा।

'हां भाभी! जल्दी ले लो, मैं भी जुगल भैया के साथ

जाऊंगी।' बेला ने कहा।

'मैं तुझे अपने साथ नहीं ले चलता।' जुगल बोला।

'अच्छा जी, समझ गई। तुम इस बार भी शहर से मेरे लिये चूड़ियां नहीं लाये—मैं जानती हूं तुम बिजली के लट्टू हो, भक्क से जलते हो और भक्क से बुझ जाते हो···मेरे पास रहे तो जलते रहे, बकते रहे—यह लाऊंगा, वह लाऊंगा···शहर गये तो बुझ गये, कुछ याद ही न रहा—क्यों भाभी···? ठीक है न?'

'ठीक है, बेला रानी!' जमीला बोली—'लाओ आधे दर्जन दे दो।'

'दर्जन-वर्जन मैं नहीं जानती जी! ठीक से गंडे में बातचीत किया करो, भाभी!'

'अच्छा तो डेढ़ गंडे दे दे···!'

'अब समझ गई—चार और दो डेढ़ गंडे हुए! लो···' और बेला ने गिनकर केले दे दिए।

'मगर मेरे पास पैसे नहीं हैं, जमीला!' रशीद ने कहा।

'पैसे नहीं हैं तो भीख मांगो—।' चिढ़ाने की गरज से जुगल बोला—'इतना भारी चोंगा पहने हो और पास में एक पैसा नहीं, शर्म नहीं आती तुम्हें।'

'तुम्हें ही बड़ी शर्म है···।' रशीद मुस्कराते हुए बोला—'घर से दौड़-दौड़ यहां शोरबा चाटने चले आते हो···।'

'मैं तुम्हारे यहां नहीं आता—मैं तो भाभी के पास आता हूं।'

'मैं नहीं रहूंगा तो देखूंगा भाभी को कहां रखते हो?' बोला रशीद।

'जाओ जी जाओ—तुम भी चले जाओ, मैं भाभी को रख लूंगा जहां रखते बनेगा।'

'अच्छा जी!' बेला से चुप नहीं रहा गया—'तुम लोगों की जीभ तो कतरनी को भी मात दे गई। मुंह भी नहीं दुखता कि चुप तो हो रहे। केले ले लो रशीद भाई, पैसे कल दे देना···।'

'अच्छा, चल बड़कू काका के पास···! कह दूंगा कि यह केले उधर बांटती फिरती है।' जुगल ने कहा।

'मैं भी पंडित काका से कह दूंगी कि जुगल भैया मुझसे

केले मांग रहे थे···रशीद भैया के घर लपसी खा रहे थे···और अपनी धोती से जूता पोंछ रहे थे।'

'जाकर कह दे न···।'

तुम भी जाकर कह देना जी! किसी का डर पड़ा है क्या?' फिर एकाएक जुगल का हाथ पकड़कर बोली—'चलो जी···।'

'कहां?'

'तालाब के किनारे चलो, घण्टे भर बैठकर बातें होंगी··· शहर का सब हाल-चाल पूछना है न!'

बेला और जुगल, दोनों तालाब के किनारे आ बैठे। सर पर आम के पेड़ की छाया थी। बड़े से कच्चे तलाब में कुलबेरा हंस रहे थे।

'क्यों जी! तुम हिन्दू हो—?' पूछा बेला ने।

'हां···।' जुगल बोला।

'अच्छा···! हिन्दू किसे कहते हैं?'

'जो धर्म के पीछे अन्धा बन जाता है, उसे हिन्दू कहते हैं।'

'अच्छा जी! तो क्या सभी हिन्दू अन्धे हैं···?'

'और नहीं तो क्या?'

'मगर देखते तो सभी हैं—अभी आज ठाकुर आंखें फाड़कर मुझे देख रहे थे—फिर अन्धे कैसे हुए?'

'तू यह सब नहीं समझ सकेगी बेला!' जुगल ने कहा।

'तो तुम्हीं समझा दो न, जुगल भैया··! यह बताओ कि तुम हिन्दू होकर रशीद के घर पानी क्यों पीते हो?'

'मैं इन्सान-इन्सान में कोई फर्क नहीं समझता, बेला!'

'तुम्हारे समझने, न समझने से क्या होता है—लोग इस बात को जान जायें तो तुम्हें जात से बाहर कर दें···तुम लोगों से छिपाकर ऐसा क्यों करते हो?'

'यह हिन्दू समाज ऐसा ही है, बेला!' जुगल ने कहा—'इसकी पीठ में छुरा भोंक दो तो यह कुछ न बोलेगा, सामने से ठोकर मारो तो ज्वाला उगलने लगेगा—इसको आंखें मूंदकर ठोकरें मारो तो शान्त रहेगा और अगर देखते हुए इसके मुख पर थूक दो तो तूफान खड़ा कर देगा··'

'ठीक कहते हो·· मैं भी हिन्दू हूं न, जुगल भैया?'

'जरूर।'

'तो लोग मुझे नीच क्यों समझते है ?'

'मैं तो तुम्हें नीच नहीं समझता।' बोला जुगल।

'तुम न समझो मगर पण्डित काका तो, बाप रे बाप ! मुझे कुएं पर भी चढ़ने नहीं देते...'

'क्या व्यर्थ की बक-झक लगा रखी है—छोड़ इन बातों को...' जुगल ने कहा—'मैं तेरे लिए चूड़ियां लाया हूं।'

'लाये हो !' हर्ष से उछल कर वह बोली—'कहां हैं ?'

'देख...।' जुगल ने जेब से चूड़ियों का पैकेट निकालकर बेला को दिखाया। बेला ने झपटकर उसे छीन लिया। खोलकर देखा—चूड़ियां थीं, सूर्य की रोशनी में चमक रही थीं।

'जुगल भैया ! बड़े अच्छे हो तुम...ऐसी चूड़ियां गांव में किसी के हाथों में नहीं...छबिया, अमवा...'

'अच्छा नाम मत गिना, बढ़ा हाथ, पहना दूं !' जुगल ने कहा।

बेला ने गोरी-गोरी पतली कलाइयां जुगल के हाथों में दे दीं। बड़े परिश्रम से जुगल ने उसे चूड़ियां पहनाईं।

'दाम निकाल।' बोला जुगल।

'कितने की हैं, जुगल भैया ?' बेला ने पूछा।

'चार रुपये की।'

'राम रे राम ! चार रुपये तो बापू ने भी न देखे होंगे, मेरी क्या बिसात...! मगर लो, मेरे पास इस बखत पांच रुपये हैं—इन्हें रख लो।' बेला ने नोट निकालकर जुगल को दे दिया।

'यह नोट कहां से पा गई रे ?'

'ठाकुर ने रामसरन के हाथ भेजा था।' बेला ने सरल भाव से कह दिया।

'क्यों ?' अनुभवी जुगल कुछ चिन्ता में पड़ गया।

'ऐसे ही...।'

'ऐसे ही क्यों ?' जुगल की आकृति कुछ कठोर हो चली थी और स्वर भी।

'कह तो दिया ऐसे ही ! मैं जानूं, क्यों भेजा था ?'

'ठाकुर के रुपये तुमने लिए क्यों...?'

'उन्होंने भेजा—मैंने ले लिया···।' पूर्ववत सरल भाव से बेला ने कह दिया।
'तुम्हें नहीं लेना चाहिए था।'
'क्यों?'
'वह बहुत पाजी है।'
'पाजी होगा अपने घर का।' बोली बेला—'मेरे से क्या मतलब, मगर कहते हो तो अब न लूंगी।'
'हां! अब कभी न लेना···और ले यह नोट, उसे कल लौटा देना। अपने बापू को भी यह न बताना।'
'मैं बापू से कोई बात छिपाती नहीं, जुगल भैया!'
'मगर इसे छिपाना, नहीं तो मार खाने लगेगी।'
'कौन मारेगा···?'
'तेरे बापू और कौन···? ठाकुर बड़ा शैतान है, भोली लड़कियों को रुपये देकर फंसाया करता है।'
'वाह जी! लड़कियां न हुईं, जैसे बुलबुल-गौरैया हो गईं—वह क्या फंसायेगा हरामी!' बेला ने क्रोध भरे स्वर में कहा।
'उठ! जाकर पानी में से चार पांच कुलबेरे तोड़ ला—डण्ठल सहित तोड़ना···'
'क्या करोगे जी कुलबेरे का?'
'माला बनाऊंगा।'
'मुझे भी माला बनाना बताओगे?'
'हां।' बोला जुगल।
उछल कर उठ खड़ी हुई बेला। घुटने तक पानी में पैठकर थोड़े से फूल तोड़ लाई। जुगल कुलबेरा के डण्ठलों को चीर कर माला बनाने लगा। छः-सात मालायें तैयार हुईं। दो-तीन मालायें जुगल ने बेला के गले में डाल दी। बेला खिल उठी।
'अच्छा जी, तो क्या तुमने इन्हें मेरे लिए ही बनाया था?'
'और कौन है जिसके लिए बनाता?' बोला जुगल।
'लाओ तुम्हें भी पहना दूं।'
कहकर बेला ने शेष मालायें उठा लीं और जुगल को पहनाने के लिए बढ़ी। जुगल उसी की ओर देख रहा था। एक क्षण के लिए चार आंखें मिलीं और बेला का चांचल्य विलीन हो

गया। मुख पर यौवन की लाली फूट पड़ी। हाथ कांप कर रह गये।

'रुक क्यों गई ?' जुगल ने पूछा।

और बेला ने जुगल के गले में कुलबेरा की माला डाल दी। बचपन के साथ खेले हुए ये दोनों प्राणी, इस समय बीते दिनों की सुध में समा गये।

यह तालाब का किनारा, ये कुलबेरे के फूल, यह आम का पेड़, यह कूकती कोयल, सभी तो उन्हीं दिनों तरह थे, परन्तु वह न था, जिसके दिन सोने के और रात चांदी की होती है वही बचपना !

'यह माला तुम्हें बहुत अच्छी लग रही है, बेला !'

'तुम्हें तो और भी अच्छी लग रही है, जुगल भैया।' धीरे से कहा बेला ने। स्वर जैसे लज्जा में डूब-उतरा रहा था।

'बेला···! वह देख तो, ऊपर क्या है।'

'क्या है···? बताओ ?'

'तोते का बच्चा···।' जुगल ने कहा—'तेरे सिर के ऊपर की डाल पर बैठा है··· पेड़ पर चढ़कर पकड़ तो उसे।'

बेला ने सर उठाकर देखा। तोते का बच्चा ही था वह।

बोली—'पेड़ पर चढ़ने से डाल हिल पड़ेगी और वह उड़ जायेगा···' फिर कुछ याद कर बोली—'तुम झुको, मैं तुम्हारी पीठ पर चढ़कर उसे पकड़ती हूं।'

'बचपन के दिन अब नहीं रहे, बेला ! समझ गई न तू···! मैं बी० ए० पास हूं।'

'मैं भी तो तुम्हारे पास हूं···मैं सब समझती हूं, झुको···।'

और जुगल झुका ही था कि बेला उसकी पीठ पर जा चढ़ी। हाथ बढ़ाकर उसने तोते को पकड़ना चाहा, तब तक वह फुर्र हो गया !

'क्या हुआ ?'

'उड़ गया···फुर्र हो गया।'

'उड़ गया तो नीचे उतर—ऊपर ऊंटनी-सी खड़ी हुई फुर्र-फुर्र क्या कर रही है ?'

बेला पीठ पर से कूद पड़ी। जुगल अपनी पीठ सीधी करने लगा।

'राम रे राम ! तुम्हारी तो कमर ही जैसे टूट गई, जुगल भैया !' हंसती हुई बेला बोली—'जरा-सी देर के लिए पीठ पर चढ़ी तो लगे उल्टे-सीधे होने—बचपन में तो घन्टों पीठ पर लादे घूमा करते थे।'

'तब तू तोते बराबर थी।'

'अब हथिनी जैसी थोड़े ही हो गई हूं···अलबत्ता बचपन में तुम बी० ए० पास नहीं थे और अब बी० ए० पास हो···यह बी० ए० क्या बला है जी ?'

'बी० ए० यानी बेचलर ऑफ आर्ट्स, समझी ?'

'मैं क्या समझूं बिचिल फार्ट ! तुम्हीं जानो ! बनते तो हिन्दू हो और बोलते हो साहेबानी बिचिल फार्ट···सीधे-सीधे अपनी भाषा बोला करो···चार अच्छर पढ़कर लाट नहीं बन सकते···इतना पढ़े तो हो, एक सवाल पूछूं ?'

'पूछ न !'

'एक दर्जन में कित्ते केले ?'

'बारह···! तीन गंडे···' जुगल ने कहा।

'और आधे दर्जन में ?'

'छः—डेढ़ गण्डे···।'

'अरे राम ! तुम तो सचमुच में बिचिल फार्ट हो···अच्छा तो इत्ते केले बचे हैं—दो-चार खा लो।'

बेला केले छीलकर देने लगी और जुगल खाने लगा।

'आज बिदेशिया नाटक होगा, जुगल भैया ! चलोगे देखने ?'

'तू जायेगी क्या ?'

'तुम चलो तो मैं जरूर चलूंगी।'

'कब शुरू होगा ?' जुगल ने पूछा।

'दो घड़ी रात गये शुरू होगा और सारी रात होगा।' बेला ने कहा।

'तो मैं वहीं मिलूंगा···आ जाना !'

'नहीं, मेरे घर पर आना होगा, जुगल भैया।'

'तेरे बापू तुझे रात के समय नहीं जाने देंगे मेरे साथ।'

'क्यों नहीं जाने देंगे ? इसमें डर की क्या बात है···! तुम आना, मैं चल दूंगी—भला जी !'

'अच्छा जी !' उसी स्वर में जुगल ने मुस्कराकर कह दिया।

दोनों कहकहा लगाकर उठ खड़े हुए।

जुगल अपने घर की ओर चला और बेला अपने घर की ओर।

तीन वर्णों की बस्ती से कुछ अलग हटकर, चौथे वर्ण की बस्ती थी।

जमींदार ठाकुर बलजीतसिंह की आज्ञा से, अछूत गांव से अलग टूटा-फूटी झोपड़ियों में रहा करते थे। तालाब ही उनका जलदाता था, क्योंकि गांव के कुएं उनके लिए वर्जित थे।

सात-आठ घर चमारों के, दो-तीन पासियों के, चार भरों के, दस धरकारों के, और तीन घर खटीकों के थे।

अछूतों की दुनिया, चीख, चीत्कारों से भरी बिलखती रहती थी। आधुनिक सभ्यता का वह खंडहर, पूंजीपतियों के उपहास की सामग्री थी। धन का उजाला यहां न था—युगों के शोषण का अन्धकार वहां चारों ओर छाया रहता था। नंगे-अधनंगे, धूल-धूसरित बालक चार-पांच वर्ष के होते ही परिश्रम की चक्की में पिसने लगते थे।

पसीने की जगह खून बहाकर, भूखे रहकर—आधे पेट बाजरे की रोटी नमक से खाकर, एक ओर जहां दानवता के जबड़े में जकड़ा हुआ असहाय मानव था, वहां दूसरी ओर धन की गंगा में गोते लगाने वाले, गरीबों के खून से हाथ रंगकर मौज-मस्ती उड़ाने वाले शोषक भी थे।

अछूतों को अस्पृश्य समझने वाले समाज के कर्णधार, रात के घने अंधेरे में, सुन्दर अछूत बालाओं से अपनी कामवासना शान्त करते थे और दिन के उज्ज्वल प्रकाश में दूध के धोये-से घूमते-फिरते थे—जैसे यह कोई खिलवाड़ हो उनके लिये।

पैसे के लिए सिसकती हुई उन अछूत युवतियों की आत्मा, अपनी अस्मत के बदले रुपये, दो रुपये पाकर प्रसन्नता से फूल उठती थी।

और धन के कोड़े हाथ में लिए वह पिशाचाकार मानव अट्टहास करता था···अपनी तृष्णा की शान्ति के लिये ही तो उसने इन असहायों पर अपने प्रभाव का बज्र गिराया···जानता

था वह कि अभाव के थपेड़े खाकर इन्सान अपनी आत्मा की पुकार भूलकर अभाव का दास बन जाता है।

बेला का बाप—बड़कू !

अपनी झोंपड़ी के सामने बैठा हुआ नारियल का हुक्का पी रहा था और बुढ़ापे के भार से दबकर खों-खों खांस रहा था। तभी केले की खाली टोकरी सर पर रखे आ पहुंची बेला।

'आ गई बिटिया ?' बड़कू ने पुकारा।

'हां बापू···!' कहती हुई बेला बड़कू के सामने आकर बैठ गई और गांठ से पैसे खोलकर देती हुई बोली—'लो बापू ! पैसे सहेज लो ?'

बड़कू हुक्का रखकर पैसे गिनने लगा।

'क्यों रे पैसे कम क्यों हैं ? तू तो बीस गाही केले ले गई थी न ?' बड़कू बोला।

'बापू···!' बेला ने कहा—'जुगल भैया शहर से आये हैं न। उन्हीं के साथ तालाब पर चली गयी थी, सो थोड़े से केले उन्हें खिला दिये···'

'इतनी बड़ी हो गई—अल्हड़पन तेरा अभी नहीं गया।'

'अब पहले जैसा कहां खेलती हूं, बापू···? थोड़ा-सा खेल लिया तो तुम बिगड़ने लगे···यह देखो बापू ! जुगल भैया मेरे लिए शहर से चूड़ियां लाये हैं···देखो कितनी अच्छी हैं।'

'बड़ी अच्छी हैं···तभी तो जुगल को केले खिला आई है, अगर कभी पुरोहित भैया देख लेंगे तो मेरी हड्डी-पसली एक कर देंगे, समझी।'

'पण्डित काका बूढ़े हो गये हैं बापू, फिर भी बात-बात में काटने दौड़ते हैं।' बोली बेला।

'चुप बेईमान ! ऐसी बातें नहीं कही जातीं···पण्डित भैया हमारे परमेस्सर हैं।'

'पण्डित काका परमेस्सर हैं, बापू ?' आश्चर्य भरे स्वर में बेला ने कहा—'तब तो उन्हें किसी मन्दिर में बैठना चाहिए।'

'तू मूरख है···ढेर पिटिर-पिटिर मत किया कर।' बड़कू ने चेतावनी दी।

'मैं कहां करती हूं, बापू···? जुगल भैया मुझसे भी अधिक करते हैं, बिचिल फाट हैं न वे।'

'बिचिल फार्ट क्या रे ?'

'जुगल भैया ही तो कहते थे, बापू ! मैं क्या जानूं यह सब ···माई कहां है ?'

'भीतर है—जा, उसके काम में हाथ बंटा।'

बेला भीतर आई। उसकी मां मुर्गियों को धान का कन्ना पानी में भिगोकर खिला रही थी।

'माई ! ओ माई !'

'क्या है ?'

'जुगल भैया चूड़ियां लाये हैं मेरे लिए···अभी कल ही तो शहर से आये हैं···बिचिल फार्ट हो गये हैं न !

'जुगल के साथ रहते-रहते तू भी अलबी-तलबी बोलने लगी। क्यों री ? कहां थी अब तक ?'

'तुम तो छन-छन का हिसाब पूछने लगती हो ! मुझे बड़ा खराब लगता है। जुगल भैया से बातें कर रही थी, और कहां थी ! अब पूछो कि क्या-क्या बातें हुईं ?'

'भाड़ में जाय तेरी बातें···मुई कहीं की। मुझसे झगड़ा करती है कल की छोकरी···।'

'माई रे ! ठाकुर बड़े अच्छे हैं···उन्होंने मुझे···'

कहते-कहते बेला रुक गई। वह नोट वाली बात कहने जा रही थी कि जुगल की चेतावनी याद आते ही चुप हो रही।

'क्या हुआ, कह न···?' उसकी मां ने पूछा।

'ठाकुर ने तीन गंडे केले लिए थे, माई।' बात बदल दी बेला ने।

'उसके बगीचे में तो ढेर से केले के पेड़ हैं, फिर तेरे केले क्यों लिये ?'

'कहते थे—मेरे केले इतने बड़े-बड़े नहीं होते।'

'हरामी कहीं की, बात बनाती है···' मां ने झिड़की दी—'उनके बगीचे में तो बम्बइया केले लगते हैं, जो हाथ-हाथ भर के होते हैं।'

'अच्छा जी। मैं यह सब क्या जानूं—उन्होंने केले लिए, मेरे पैसे दिए—बस !'

बेला की मां कुछ नहीं बोली। इस बातूनी लड़की से पार पाना मुश्किल है, यह वह जानती थी।

कुछ देर तक चुप रहकर बेला पुनः बोली—'जुगल भैया बहुत अचरज की बातें बताते हैं, माई ! कहते थे, शहर में एक बक्स होता है, जिसमें बिजली के लट्टू जलते हैं। पेंच घुमाते ही बढ़िया-बढ़िया गाना सुनाई पड़ता है—बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, लाहौर—सब जगह की बातें सुनाई पड़ती हैं—और कहते थे कि एक सिनेमा होता है—वह अंधियारे में दिखाया जाता है। कपड़े का एक परदा होता है जिस पर आदमी चलते हैं, मोटरें दौड़ती हैं, रेलगाड़ी भक-भक करती हुई आती है—कितना अच्छा यह तमाशा होगा माई—कभी-कभी जुगल भैया गप्प भी हांकते हैं—अबकी बार मैं शहर जाकर यह सब देखूंगी। जुगल भैया के साथ शहर जाऊं माई ?'

'चुप रह, नहीं तो एक थप्पड़ जमा दूंगी।'

'अच्छा जी ! तो अपना थप्पड़ अपने पास रखो—मैं शहर नहीं जाऊंगी, बस न ? मगर आज विदेशिया नाटक देखने जरूर जाऊंगी।'

'कहां ?'

'घुरहू के गांव में···जुगल भैया जायेंगे मेरे साथ।'

'तो चली जाना, तुझे रोक ही कौन सकता है !'

नाचती हुई बेला झोंपड़ी से सटे छोटे-से झाड़-झंखाड़ पूरित बाग में चली गई। वहां जाकर तितलियां और टिड्डियां पकड़ने लगी। समय बिताये नहीं बीतता था। बेला चाहती थी जल्दी से शाम हो, जुगल आये और वह उसके साथ कोयल-सी कूकती चल दे।

परन्तु सूर्य का गोला उसी अलमस्त चाल से धीरे-धीरे पश्चिम की ओर बढ़ रहा था। देखकर बेला क्रोधित हो उठी और उसने मुंह उठाकर सूर्य पर थूक दिया—और जब वह थूक शून्य से लौटकर सीधे उसकी नाक पर गिरा तो वह और भी जल उठी, तिलमिला उठी।

जुगल को देखने के लिए, उससे मिलने के लिए बेला की अभिलाषा उछलने लगी।

जुगल के लिये वह इतनी बेचैन तो कभी नहीं होती थी। क्या कलाई की चूड़ियां झनझनाकर उसकी स्मृति दिला रही हैं, अथवा हृदय पर पड़ी हुई कुलबेरा की माला कलेजे में उ ।र-

कर कसक पैदा कर रही है !

भोली बालिका क्या जाने यह सब ! यह अनुभूति···यह सिहरन, यह पीड़ा, यह उन्मादकारी व्यथा तो उसके लिए सर्वथा नई है।

औरों के लिए जुगल चाहे जितना विद्वान, चाहे जितना बड़ा हो गया हो, परन्तु बेला की आंखों में वह वही जुगल है, उसके बचपन का साथी, जिसके साथ दस बरस तक आंख-मिचौनी खेलकर वह इतनी बड़ी हुई है।

अब भी वह उससे उत्साह से, उसी चांचल्य-चपलता से मिलती है, जैसे उम्र के हाथों ने उसकी सुप्त गम्भीरता को संवारा ही न हो, वह अब भी तितली की तरह उछलती-कूदती है, फूल की तरह हंसती है।

और जुगल ! विद्या का संयोग पाकर वह काफी समझदार हो गया है। कॉलेज के अच्छे छात्रों में है। समाचार-पत्र तथा विभिन्न विषय की पुस्तकें पढ़कर वह राजनीतिक बातें भी समझने लगा है। उसके अन्दर की सुप्त मानवता जागृति के पथ पर है। दलितों का रुदन वह सुन सकता है, शोषकों का शोषण वह देख सकता है। पूंजीपतियों की क्रूरता को वह पीस डालना चाहता है। स्वातन्त्र्य आन्दोलन के प्रति उसकी आस्था है। राजनैतिक एवं सामाजिक उत्थान का वह अभिलाषी है।

फिर भी गांव में आकर वह 'घर की मुर्गी साग बराबर' होकर रह जाता है। सभ्य कहे जाने वाले नरपशुओं का कुकृत्य वह गांव में देखता है, किसानों एवं गरीबों पर चलते हुए दमन-चक्र से वह अनभिज्ञ नहीं है, सिसकते-तड़पते हुए कीड़े जैसे मानवों की करुण पुकार वह सुनता है।

सब-कुछ देख-सुनकर उसके अन्दर का विद्रोह अंगड़ाई लेना चाहता है, परन्तु कोई सहारा नहीं मिलता, कोई प्रोत्साहन नहीं पाता वहां। लगता है जैसे सामाजिक क्रांति का उसका संकल्प केवल स्वप्न बनकर रह जायेगा।

गांव में सभी तो एक से हैं। स्वयं उसके पिता भी कट्टर रूढ़िवादी हैं और सब ओर से निराश होकर जुगल अपने ही में घुट-घुटकर रह जाता है।

अन्तर में विद्रोह है उसके—परन्तु हाथ में शक्ति नहीं,

साथ में सहायता नहीं। तो वह अकेला चना क्या भाड़ फोड़ सकेगा।

फिर भी जुगल फौलाद का बना है, वह थोड़े में ही हार मानने का अभ्यस्त नहीं। वह युवक है, उसके शरीर में गर्म रक्त है, उसके हृदय में महान उद्देश्य की धधकती ज्वाला है। उसकी आंखों में आग बरसाने वाली शक्ति है। उसकी वाणी में तूफान लाने वाली ताकत है!

सब-कुछ है, परन्तु कोई भी भावना पनपी नहीं है। समय की प्रतीक्षा में हृदय का तूफान निश्चल पड़ा है। प्रतीक्षा कर रहा है कि अवसर आये और प्रबल वायु का वेग, आंधी बनकर बह निकले और अपने साथ-साथ उसको बहा ले जाय—अन्ध-विश्वास, धर्मान्धता, छुआछूत, भेदभाव, वैमनस्य, शोषण सभी उस झकोरे में पड़कर नामशेष हो जायें—फिर चारों ओर सुख-शान्ति की वर्षा होने लगे।

यह स्वप्न साकार तो तभी होगा जब कर्मठता उठ खड़ी होगी, युवकों की शक्ति जागृत होगी। संगठन की दीप्ति फैलेगी।

और उसी दिन की प्रतीक्षा में जुगल अब तक चुप है।

गांव वाले तो उसे वही जुगल समझते हैं, जिसे बचपन में वे नंगा घूमते देख चुके थे—परन्तु इसे केवल जुगल की भावना ही जानती है कि उसके अन्तराल में कितना भीषण ज्वालामुखी उदयोन्मुख है।

और ज्वाला से भरा हुआ वही जुगल, जब कभी बेला के सामने आ खड़ा होता है और बेला कहती है—'अच्छा जी! तुम तो विचिल फार्ट हो गये हो—तब जुगल समझता है कि उसके स्वप्न संसार से परे एक वास्तविक जीती-जागती दुनिया भी है, जो अद्भुत है, साकार है, बेलामयी है।

यहीं आकर बेला के प्रति उसके बचपन का मोह जागृत हो उठता है। उस मोह में तृष्णा नहीं, कामना नहीं—कुछ पाने कुछ खोने की अभिलाषा नहीं।

बेला है, जुगल है, तालाब का किनारा है, कुलबेरा के हंसते फूल हैं और बचपन की याद! यही उसके मोह का साकार रूप है।

और इस मोह के बन्धन में पड़कर कभी-कभी जुगल अपनी साधना, अपना कर्तव्य, अपना स्वप्न भूल जाता है--सोचता है, जो कुछ है बेला है, उसके परे कुछ नहीं।

परन्तु आंख खोलकर देखते ही कर्तव्य का कठोर पथ स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है और तब जुगल समझता है कि कर्मशील युवक के लिए मोह का बन्धन त्याज्य है। बेला ही उसके जीवन की साधना नहीं। मानव का चरम उत्थान उसका लक्ष्य है और उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए बेला का साथ कांटे के समान है।

वह उत्थान चाहता है—बेला का चापल्य नहीं।

फिर भी न जाने क्यों वह बेला का दिल दुखाना नहीं चाहता—और इसीलिए दो घण्टे रात बीते वह उसके घर की ओर बढ़ा जा रहा है···उसे विदेशिया नाटक दिखाना है जो!

मन पीछे की ओर खींच रहा है, परन्तु पैर बन्धनहीन होकर अपने आप आगे बढ़ते जा रहे हैं। सोचता चला जा रहा है जुगल।

मोह और कर्तव्य का द्वन्द्व अब भी उसे उद्वेलित कर रहा है।

और वह ग्लानि से भर उठता है।

जब वह इस जरा से मोह को न ठुकरा सका, तो किस शक्ति से अपने स्वप्न को साकार करेगा?

बेला का घर आ गया। झोंपड़ी के भीतर टिमटिमाता हुआ दीपक अपनी क्षीण आलोक-रेखा बाहर तक फेंक रहा था।

अब जैसे जुगल अपने-आप में चैतन्य हो उठा। कर्तव्य भावना ने मोह का क्षणिक बन्धन तोड़-मरोड़ डाला। सजग जुगल की क्षणिक असफलता दूर भाग गई। उल्टे पांव लौटने लगा वह।

जुगल मोह का दास नहीं, बेला का गुलाम नहीं। वह कर्तव्यशील बनना चाहता है और बनकर रहेगा, औरों को बना-कर रहेगा।

'जुगल भैया!' दरवाजे पर जुगल की प्रतीक्षा में खड़ी बेला की छाया पुकार उठी।

कर्तव्य का मार्ग अवरुद्ध हो गया। मोह का प्राबल्य जागरूक

होकर जैसे जुगल का पांव पकड़ बैठा। तब तक दौड़ती हुई बेला आ गई।

अंधेरे में भी बेला का सौन्दर्य जैसे जगमगा रहा हो, ऐसा जुगल को लगा, परन्तु उस सौन्दर्य में चन्द्रमा जैसा प्रकाश नहीं था, नहीं तो दिशायें हंस पड़तीं और स्वच्छ चांदनी में जुगल देखता कि बेला आज कितनी बनी-ठनी है, कितने वैकल्य से वह जुगल की प्रतीक्षा कर रही थी !

बेला ने आकर जुगल का हाथ पकड़ लिया और खींच ले चली अपने घर की ओर। बन्धन में बंधा हुआ जुगल निस्तब्ध भाव से चलता गया, चलता गया।

'तुम लौटे जा रहे थे, जुगल भैया…? बताओ तो…?'

'तुझे देखा नहीं, तो मैंने सोचा कि शायद देर होती जानकर तू चल गई है।' जुगल ने कहा।

'तुम्हारे बिना मैं अकेले कैसे जाती जी ? तुमने पुकारा क्यों नहीं ? मैं तो सरे-शाम से ही दरवाजा थामे खड़ी हूं, तुम्हीं ने इतनी देर कर दी। अच्छा तुम इस मचिया पर बैठ जाओ। मैं बापू से पूछ आऊं ?'

जुगल को मचिया पर बैठाकर बेला तेजी से भीतर चली गई।

'बापू ! ओ बापू ! ओ माई !' शोर मचाने लगी वह।

'क्या है रे ?' चारपाई पर लेटा हुआ बड़कू उठ बैठा।

'मैं नाटक देखने जा रही हूं बापू !'

'किसके साथ ?'

'जुगल भैया आये हैं, बाहर बैठे हैं।' बोली बेला।

जुगल का नाम सुनते ही बड़कू उठकर बाहर आया।

'नाटक देखने जा रहे हो, जुगल बेटा ?' पूछा उसने।

'हां काका !' जुगल बोला—'यह बेला मानती ही नहीं। अगर इसे आज नाटक नहीं दिखाया तो कल मेरा सर खाने लगेगी…'

'ठीक कहते हो, बचवा ! बड़ी शैतान है यह ! अच्छा जल्दी चले आना।'

कहकर बड़कू भीतर चला गया। जुगल और बेला अंधेरे में एक-दूसरे का हाथ पकड़े, पथ पर बढ़ चले।

जुगल मौन था, परन्तु बेला के हृदय में आ ा न जाने क्या कसक रहा था। वह जानकर भी और अनजाने भी ठोकरें खा जाती और रह-रहकर जुगल के बदन का सहारा ले लेती थी।

'क्यों री, देखकर नहीं चलती ? इतनी ठोकरें क्यों खा रही है…?'

'तुम्हीं देखते चलो जी।' मुझे तो अंधेरे में कुछ सूझता ही नहीं।

'एक तमाचा जड़ दूंगा तो सूझने लगेगा…' जुगल बोला।

'देखो जी ! तमाचा जड़ना हो तो मुझे अपनी पीठ पर चढ़ा लो, फिर ठोकरें नहीं लगेंगी…' बेला हंसकर बोली।

दूर से ही गैस की रोशनी चमकी। कुछ दूर आगे बढ़ने पर ढोलक की थाप और घुंघरू की छुमछनन आवाज सुनायी पड़ी।

पेड़ की पत्तियां जैसे प्रकाश में स्नान करके हंस रही थीं।

'अरे बड़ी दूकानें सजी हैं, जुगल भैया !' बोली बेला— 'वह देखो तमोली ''वह देखो हलवाई…वह देखो चूरन वाला …पैसे लाये हो जी ?'

'लाया हूं मगर पहले चल तमाशा देख ले, फिर खरीदना जो मन चाहे…'

गंवई-गांव के लिए वह नाटक एक मेला सदृश था। बड़ी भीड़ थी। चारों ओर से अंपढ़ ग्रामीण उलटे पड़ रहे थे।

बेला को बगल में दबाकर जुगल भीड़ में घुस गया और आगे निकल आकर तमाशा देखने लगा। विदेशिया नाटक देखने के लिए ग्रामीण जानता एकदम शान्त बैठी थी।

एक गाना हो रहा था—

केसिया त बाढ़ी जैसे काली रे नगिनिया से,
सेनुरा से भरल लिलार रे विदेसिया।
अंखिया त हउवे जैसे अमवा की फंकिया से,
गलवा सोहेला गुलेनार रे बिदेसिया।
बोलिया त बाड़ी जैसे कुहुके कोइलिया से;
सुन हिया फाटे ला हमार रे विदेसिया।
मुंहवा त हवे जैसे कमल के फुलवा से,
तोहि बिन गइले कुम्हिलाय रे विदेसिया।

जुगल और बेला, भीड़ में फंसकर एक हो रहे थे। जुगल

को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। शहर में सिनेमा और थियेटर देखने वाला जुगल इस ग्रामीण नाटक में कोई आकर्षण नहीं पा रहा था।

परन्तु बेला तो तन-मन की सुध खोकर उस गाने में लीन हो गई थी। उसे जैसे होश ही नहीं था। उसका सर जुगल के कन्धे पर टिका था और अपना समस्त भार उसे देकर जैसे वह सारी चिन्ताओं से मुक्त हो गई थी।

बेला चुप रही। बोली नहीं कुछ। सुना हो, न सुना हो —कौन जाने !

'बेला !' जुगल ने पुनः पुकारा।

'कहो !' जैसे जागकर उठती हुई बेला बोल उठी—'चलूं क्या...?'

'चलेगी नहीं तो क्या रात भर यहीं रहेगी ?'

'नहीं जी, चलो चलें। तुम्हारे पैर दुखने लगे होंगे खड़े-खड़े ...है न जुगल भैया...!'

दोनों भीड़ से बाहर आये।

'जुगल भैया, मैं पान खाऊंगी...' बोली बेला।

'और सिगरेट नहीं पीयेगी...?' जुगल व्यंग करता हुआ बोला।

'सिगरेट तुम पीना जी—मैं पाव भर मिठाई भी लूंगी, बापू और माई के लिए...'

'अच्छा तो निकाल पैसे ?'

'पैसे तो तुम्हीं निकालोगे जी ...!' बेला मुस्कराकर बोली —'मैं तुम्हारे साथ आई हूं, तुम मेरे साथ नहीं आये हो...चलो सीधे से पान खिलाओ, नहीं तो मिठाई ही खरीद दो...।'

दोनों मिठाई की दूकान की ओर चल पड़े।

२

गांव की सन्ध्या और जाड़े का मौसम !

जगह-जगह आग जल रही है और उसके चारों ओर बैठे हुए दिन-भर के थके-मांदे ग्रामीण अपना शरीर गर्म कर रहे हैं। हुक्का-तमाखू चल रहा है। जात-बिरादरी की, टाट-भात की, खेती-बारी की, फसल-पौधे की, तोर-मोर की बातें भी होती जा रही हैं।

जुम्मन के दरवाजे पर भी आग जल रही है। कई मुसलमान हाथ सेंकते हुए बैठे हैं। वह गांव का एक मोटा किसान है, तगड़ा है और हेकड़ीबाज भी ! किसी से डरता नहीं। उसमें सभी खराबियां मौजूद हैं जो एक अशिक्षित, मजहब-परस्त मुसलमान में होती हैं।

'सुना उस्मान तुमने...?' जुम्मन बोला—'नोवाखाली में हमारे भाइयों ने काफिरों का नामोनिशान मिटा दिया।'

'क्या सभी हिन्दू मार डाले गए—?' उस्मान ने पूछा।

'और नहीं तो क्या...! सब कत्ल कर दिये गए, घास-मूली की तरह ! उनकी जवान और खूबसूरत औरतें हमारा घर आबाद करने आ गई हैं, जिनसे हमारी औलाद बढ़ेगी...'

'यह तो अच्छा हुआ भाई ! मगर हमें इससे क्या फायदा हुआ ?'

'अरे मर्द ! चाहो तो तुम्हें भी एकाध छोकरी ला दूं...।' जुम्मन धीरे से बोला—'शहर में हमारे रिश्तेदार इसहाक मियां जो रहते हैं न...! उनके पास बीसों छोकरियां पोशीदा तौर से हैं...अभी परसों गया था उनके घर तो कहने लगा—'क्या जुम्मन ! तुम भी कोई हसीना ले जाओ न ? रोशनी हो जायेगी तुम्हारे घर में...'

'तो तुमने क्या कहा ?' पूछा उस्मान ने।

मैंने कहा—'भाई ! हमारे गांव का जमींदार बड़ा कातिल है, हिम्मत नहीं पड़ती। तो कहने लगे—थोड़े दिन गम खाओ, गांव के मुसलमानों को तैयार करो, मैं हथियार वगैरह की पूरी मदद दूंगा, फिर एक दिन हमला बोल दो, रास्ता साफ हो जायेगा...तुम्हारी क्या राय है, जुम्मन ?'

'मेरी क्या राय है…जहां तुम सभी हो, वहां मैं भी।'

'इसहाक मियां जल्द ही आने वाले हैं…' बोला जुम्मन—'यहां आकर वे हमारी पोशीदा मीटिंग करेंगे, हमें हमारे हकूक की बात बतायेंगे, मुसलमानी सल्तनत की तवारीख सुनायेंगे—बड़े दिमागदार हैं इसहाक मियां।'

'मगर रशीद तो शामिल होगा नहीं !'

'वह तो पूरा काफिर है। इस जंग में वह हमारा साथ नहीं दे सकता। देखते नहीं, पण्डित के बेटे से उसकी कैसे पटती है ? अगर सीधे से नहीं मानेगा, जोर-जबरदस्ती से मानेगा…।'

'आखिरी अंजाम यही होगा, मगर यह बात बहुत पोशीदा रखनी होगी—।' उस्मान ने कहा।

'यह तो होगा ही…इसहाक मियां कहते थे कि अब पंजाब में हवा गर्म हो चली है…धुआं निकल रहा है। सिर्फ लपटें उठनी बाकी हैं…।'

▭ ▭

जुम्मन के घर से सौ कदम दूरी पर ही जमींदार की हवेली थी।

ठाकुर बलजीतसिंह हौली से एक अद्धा मंगाकर चढ़ा गये थे और नशे में बुत बने गद्दी पर बैठे थे।

'रामसरन !' पुकारा उन्होंने।

'आया सरकार !'

झपटता हुआ रामसरन आया—'क्या हुकुम है सरकार।'

'रात हो गई है न ?' ठाकुर ने पूछा।

'हां मालिक !'

'और चन्द्रमा ?'

'चन्द्रमा भी चमक रहा है, राजा !' रामसरन ने झट से उत्तर दे दिया। परन्तु इस समय चारों ओर अंधेरा था। रामसरन जानता था कि मदहोश ठाकुर को कैसा उत्तर मिलना चाहिए।

'अरे उस चन्द्रमा की बात बता, उल्लू, जिसे पकड़ने के लिए सवेरे भेजा था ?'

'ओह ! बेला की बात कहते हैं, सरकार ! अब तक आपसे बताया नहीं…आपको सुनाने का मौका ही नहीं मिल सका।'

'मगर अब तो बता···' ठाकुर बोले।

'बताता हूं सरकार···! सब ठीक कर आया हूं। पांच रुपये का नोट भी पकड़ा दिया है। कल आने का वादा कर गई है—'

'वह समझ कैसे गई तुम्हारी बात?' पूछा ठाकुर ने।

'वह जानकर अनजान बनती है, राजा···! शैतान सभी कुछ जानती है। जवानी की देह और उभरता फोड़ा, दोनों दर्द भरे होते हैं, सरकार! बेला सब समझती है, ठाकुर राजा!'

'तुझे कैसे मालूम?'

'सरकार! आपसे वह हीला-हवाला करती है, मगर पुरोहित जी के बेटे से घुल-मिलकर बातें करती है···कल जुगलकिशोर ने तालाब के किनारे उसे चूड़ियां पहनाई थीं, बेला तोता पकड़ने के लिए उसकी पीठ पर चढ़ी थी···'

'तूने देखा यह सब, रामसरन?'

'हां राजा! छिपे छिपे इन्हीं आंखों से देखा है···'

'जुगल और बेला का मिलना ठीक नहीं, रामसरन···! तभी तो वह हमारी ओर आंख उठाकर नहीं देखती···'

'सब ठीक हो जायेगा ठाकुर, आप धीरज रखिए···'

इतने में ही एक दूसरा लठैत अन्दर आया।

'क्या है, सरजू?' ठाकुर ने पूछा।

'सरकार! पुरोहित जी आये हैं···' बोला लठैत।

'अच्छा···!' आश्चर्य में भरकर बोले ठाकुर—'उन्हें यहीं भेज दो···और तुम रामसरन! वह कुर्सी खींचकर यहां रख दो।'

पुरोहित पंडित दयाराम दूबे भीतर आये तो ठाकुर ने उठकर हाथ जोड़ दिये।

'आयुष्मान···!' कहकर पुरोहित जी कुर्सी पर आ बैठे और ठाकुर अपने स्थान पर।

पुरोहित का चेहरा दमक रहा था। इन्द्रिय-निग्रह, कठोर व्रत, अतुलित संयम की दीप्ति से मुखाकृति प्रकाशमान थी।

'कैसे पधारे पुरोहित जी?' ठाकुर ने पूछा।

'ऐसे ही चला आया, जजमान···!' बोले पुरोहित। बूढ़े चेहरे पर एक अव्यक्त मुस्कान दौड़ गई—'हम ब्राह्मणों का

काम ही क्या है ? मांगना और खाना !'

'तो भिक्षा मांगने आये हैं, पुरोहित जी ?'

'और नहीं तो क्या···? जुगल बी० ए० पास करके घर आ गया है···वह कहता है कि अभी और पढ़ूंगा, मगर उसकी करनी देखकर मुझे भय लगने लगा है···'

'कैसा भय पण्डित जी···?'

'कुछ पूछो मत, ठाकुर···! अपना हिन्दू-धर्म संसार में सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु आजकल के पढ़े-लिखे युवक स्वेच्छाचारी होते जा रहे हैं। धार्मिक बन्धन, परम्परागत रूढ़ियां—सब-कुछ उनके लिए हास्यास्पद हैं। तुम्हीं बताओ, इस तरह हमारा धर्म रसातल को नहीं चला जायेगा ?'

'जरूर चला जायेगा पुरोहित जी।' ठाकुर हंसते हुए बोले; 'जुगल को सीमा के भीतर जकड़े रहना अत्यन्त आवश्यक है।'

'इसीलिए तो आया हूं तुम्हारे पास ठाकुर ! अब जुगल पढ़-लिख गया है। उसे अपने यहां रख लो तुम। कारिन्दा का काम वह अच्छी तरह कर सकेगा और यहां रहकर कुछ सीख भी जायेगा। यही बन्धन उसके लिए उचित समझा है मैंने··· तुम्हारी क्या राय है जजमान ?'

'मैं हर तरह से तैयार हूं, पण्डित जी ! आपकी आज्ञा कैसे टाल सकता हूं, कल से जुगल को यहां भेज दीजियेगा।'

'महामाया तुम्हारा कल्याण करें ठाकुर ! तुमने मुझे उबार लिया।' पुरोहित बोले।

'मगर जुगल के लिए विवाह सबसे बड़ा बन्धन होगा, पण्डित जी !' ठाकुर ने कहा।

'वही तो मैं भी सोच रहा हूं···तनिक रास्ते पर आ जाय तो विवाह कर दूं उसका। अभी तो विवाह के नाम से भड़कता है। बड़ी-बड़ी बातें करता है ठाकुर ! संस्कृत का विद्वान हूं मैं, परन्तु मुझे भी शिक्षा देता है···पिता की लकीर पर चलने की तो उसमें जैसे गन्ध तक नहीं···।

'और सुनोगे ठाकुर ! एक दिन मुझसे कहता था कि जमींदारों का नाश हो जाना चाहिये। छुआछूत, खानपान, भेदभाव, जाति-बन्धन—सब टूट जाना चाहिये। हिन्दू-मुसलमान एक होकर रहें, कोई दुराव न रखें—भला यह कभी हो सकता है,

ठाकुर ! हरे राम, हरे राम !'

'मैं सब ठीक कर दूंगा, पुरोहित जी ! आप जुगल के सुधारने का भार मुझ पर छोड़ दें।'

'विवाह के लिए देखो न, परसाल नैपुरवा के मातादीन पाठक आये थे—चार हजार दहेज दे रहे थे, लड़की के लिए चार थान, सुनहरे गहने और जुगल को अंगूठी, घड़ी आदि देने को कह रहे थे, मगर मेरे बोलने से पहले ही जुगल ने इन्कार कर दिया। पहले माता-पिता विवाह पक्का करते थे और अब के लड़के तो अपने से ही लड़कियां खोज लेते हैं। पतन के मुंह पर खड़ा हो गया है हमारा समाज, ठाकुर ! यही लड़के आगे चलकर हमारे उत्तराधिकारी होंगे···और इनके लड़के तो इनसे भी चार हाथ बढ़कर होंगे, क्यों ठाकुर !'

'ठीक कहते हैं आप पण्डित जी।'

'तो मैं चलूं ठाकुर ! बहुत देर हो गई।' और आशीर्वाद देकर चले गये पुरोहित जी !

बूढ़े पुरोहित, जवान जुगल का रंग-ढंग देखकर सशंकित हो उठे थे। पुराना जमाना उन्होंने देखा था, नया जमाना देख सके थे नहीं—तो क्यों न सशंकित होते !

घर आये तो जुगल को अनुपस्थित देखकर कुढ़ गये।

जुगल की मां बहुत पहले ही मर चुकी थी। घर में केवल पिता-पुत्र ही रहते थे। पुरोहिती के बल पर पण्डित जी ने जुगल को बी० ए० तक पढ़ाया था। जुगल भी अपने परिश्रम से ट्यूशन आदि करके कुछ रुपये कमा लेता था।

'पता नहीं कहां चला गया ?' पण्डित जी बड़बड़ाने लगे।

'क्या है पण्डित जी ?' बगल की पड़ोसिन ने पूछा।

'जुगल कहां गया, मालूम है मंगरू की माई ?'

'वे नाटक देखने गये हैं, पण्डित जी ! तुम उधर गये और वे उधर···।'

सर पीटकर पुरोहित चारपाई पर जाकर लेट रहे। बड़ी देर तक नींद नहीं आई और जब आई तो सवेरा होने पर ही खुली। उन्होंने देखा कि जुगल अपनी चारपाई पर बैठा समाचार पत्र पढ़ रहा है।

'अखबार कहां से लाये जुगल ?' पुरोहित ने पूछा।

'कल मेले में से खरीद लाया था, पिताजी !' जुगल ने स्पष्ट कह दिया।

'क्या लिखा है ?'

'नोआखाली में भीषण दंगा हो रहा है और उसकी प्रतिक्रिया बिहार में बहुत गहरी हुई है और पंजाब खलबला उठा है…।'

'और तुम कहते हो कि हिन्दू और मुसलमानों को एक हो जाना चाहिए…।' बोले पुरोहित— हमेशा से आपस में लड़ने वाले शत्रु कभी एक हो सकते हैं ?'

'यह तो पागलपन है, पिताजी !' जुगल ने कहा—'निरी धर्मान्धता है यह…।'

'धर्म तो मानव से भी ऊंचा है जुगल।'

'है, मगर कोई भी धर्म रक्तपात करने की आज्ञा नहीं देता, भाई-भाई का गला काटने को नहीं कहता। वैमनस्य, घृणा, दुर्व्यवहार, बलात्कार को प्रोत्साहन नहीं देता। धर्म के नाम पर अधर्म हो रहा है, पिताजी !'

उत्तर न दे सकने के कारण पुरोहित जी चुप ही रहे।

जुगल पुनः समाचार-पत्र पढ़ने लगा।

'कल रात नाटक देखने गये थे तुम ?' पुरोहित ने पूछा।

'जी।' अखबार में आंखें गड़ाये ही जुगल ने उत्तर दे दिया।

'मुझसे पूछा तक नहीं, क्यों ?'

'आप चले गये थे पिताजी।'

'थोड़ी देर तक रुक जाते, मैं आ जाता…।' पुरोहित ने कहा।

'तब मुझे देर हो जाती।'

'मुझसे पूछने का तुम्हारा कर्तव्य था या नहीं ?'

'था तो पिताजी ! मगर मुझे विश्वास था कि आप मुझे रोकेंगे नहीं।' समाचार-पत्र से सर उठाकर जुगल ने कहा।

'इस विश्वास का कारण ?'

'पिता और पुत्र का सम्बन्ध।'

'पिता और पुत्र का सम[illegible] अच्छी तरह समझता हूं, जुगल ! तुम मुझे और [illegible] मत लो… और कौन था तुम्हारे साथ ?'

'बेला...।' निर्भीकतापूर्वक कह दिया जुगल ने।

'बेला...।' आंखें सर पर चढ़ाकर देखा पुरोहित ने जुगल की ओर—'शायद उसी के लिए तुम नाटक देखने गये थे।'

'जी हां। उसने मुझसे हठ किया था।'

'परन्तु तुम उसके हठ से प्रभावित क्यों हुए?' पुरोहित ने पूछा।

'बचपन से साथ खेले हैं हम दोनों पिताजी! बचपन की तरह अब भी साथ नाटक देखने की इच्छा हुई और चले गये।'

'चुप रहो।' गरज पड़े पुरोहित—'मर्यादा की सीमा तुम भूल बैठे हो—अपने कुल का सम्मान तुम एक दिन ले डूबोगे। तुम ब्राह्मण के बेटे हो, अछूतों और म्लेक्षों के साथ तुम्हारा सम्पर्क उचित नहीं। अपने-आपको अभी से सम्भालना तुम्हारे लिए उपयुक्त होगा जुगल!' फिर थोड़ा रुककर बोले—'समाचार-पत्र रख दो। जमींदार ठाकुर के यहां तुम्हारी नौकरी ठीक कर आया हूं...अभी जाकर उनसे मिल लो।'

'मगर मैं नौकरी नहीं करूंगा...पिताजी!'

उसके स्वर की गम्भीरता का अनुभव कर पुरोहित चौंक उठे। पूछा उन्होंने—'क्यों?'

'नौकरी आत्मा का हनन कर देती है...'

'और बेकारी आत्मा को ऊंचा उठा देती है—क्यों?' पुरोहित क्रोधित होते जा रहे थे।

'नहीं—बेकारी और नौकरी दोनों मानव के लिए अभिशाप हैं.. गुलामी को मैं हेय समझता हूं...नौकरी मुझसे नहीं हो सकती।'

'तुम्हें करनी पड़ेगी, जुगल! तुम मेरी आज्ञा टाल नहीं सकते, यह जानता हूं मैं...और यह भी जानता हूं कि नंगा और भूखा कोई नहीं रह सकता...पेट के लिए नौकरी करना आत्मा का हनन नहीं, आत्मा की तुष्टि है।'

'नंगों और भूखों का एक इतिहास है, पिताजी! समाज की कटुता ही नग्नता और क्षुधा की जन्मदात्री है। अपनी सुविधा एवं स्वार्थ-पूर्ति के लिए ही सशक्त मानव ने दूसरों को अशक्त, साधनहीन एवं तिरस्कृत बना दिया है। समाज की बागडोर प्रारम्भ ही से स्वार्थियों के हाथों में रही है। उन्होंने

जिसे जिधर चाहा, उसे उधर मोड़ दिया। अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए अनेकानेक नियम बना लिए और दलितों पर मनमाना अत्याचार किया, दबे हुए असहाय प्राणी और दबते गये।'

'मैं कुछ नहीं सुनना चाहता, जुगल ! इस समय तुम्हें मेरी आज्ञानुसार चलना ही होगा...' बोले पुरोहित—'फिर मेरे न रहने पर जो मन में आये, वह करना...ऊपर से तुम्हें रोकने नहीं आऊंगा मैं।'

कुछ बोलते-बोलते जुगल रुक गया, पिता के स्वर में पानी की-सी तरलता का आभास पाकर।

कर्तव्य और मोह का बन्धन उसे चारों ओर से जकड़े हुए था। वह कुछ समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे, क्या न करे ?

उन्नीस-बीस वर्ष का वह युवक दिल में असंख्य द्वन्द्व लिए तूफान का सामना कर सकता था। चुपचाप उठा वह !

नित्य कर्म से निवृत्त हो चुका था। पैर में मामूली-सी चप्पल डाल कर, वह ठाकुर की हवेली की ओर चल पड़ा।

समाचार-पत्र उसके हाथ में था। सोचता जा रहा था वह—

आज यह मानव जैसे पेट की ज्वाला से व्याकुल हो उठा है। एक मुट्ठी अन्न से पेट भरता नहीं—और इसलिए भूख एवं प्यास के वशीभूत होकर उसने लम्बी-लम्बी छुरियां अपने हाथों में ले ली हैं—

और अपने ही भाइयों के कलेजे से वह रक्त के फव्वारे और मास के लोथड़े निकाल कर खा-पी रहा है।

जुगल को इतिहास में वर्णित आदिवासियों की सभ्यता का स्मरण हो आया...क्या आज का मानव पुनः उसी युग में पहुंच गया है ? क्या सभ्यता, संस्कृति, विज्ञान आदि केवल उसके बाहरी शरीर को ही छूकर रह गये हैं ? क्या उसके हृदय में केवल रक्त की प्यास है—केवल मांस की क्षुधा है ?

एक ही हाड़-मांस के बने हुए मानव, रूढ़िवादिता में फंसकर असहाय हो गये हैं। हिन्दू और मुसलमान एक शरीर के दो अंग हैं, पर आपस में लड़ते हैं, झगड़ते हैं—दोनों एक-दूसरे के परम शत्रु हैं।

कोई पूछे इन अन्धों से कि गरीब आपस में लड़कर कौन-राज्य पा जायेंगे…? राज्य तो करेंगे वे लोग जो विषाक्त भाषणों से भोली जनता को धर्मान्धता की ओर उन्मुख करते हैं।

जनता तो ज्यों की त्यों रह जायेगी। एक पग भी आगे नहीं बढ़ा पायेगी। आखिरी दम तक सिसकती, खून-पसीना एक करती रहेगी।

जुगल गांधीवादी नहीं, समाजवादी नहीं, फासिस्टवादी नहीं, वह तो यथार्थवादी है। उसकी बुद्धि में जो तर्क ठीक उतरता है, वही उसके लिए मान्य है। आंख मूंदकर किसी का अनुसरण करने वाला नहीं है वह।

अहिंसा पर उसका विश्वास नहीं, संगठन की चरम सीमा पर पहुंचकर हिमालय के शिखर पर पहुंचने की वह इच्छा रखता है।

जांत-पांत से मतलब नहीं, फिर भी हिन्दुओं में विषमता देखकर वह विचलित हो उठता है।

वर्षों से अहिंसा के नाम पर हमारे नेता हमें कायरता का जो मन्त्र देते आये हैं, उसे तथ्यहीन समझता है वह।

बापू की तरह शाम-सबेरे ईश्वर की प्रार्थना करना वह व्यर्थ समझता है। उसका कर्म में विश्वास है, ईश्वर में नहीं। कर्मशील स्वयं अपना मार्ग बना लेगा। ईश्वर तो कुछ न कर सकने वालों के लिए एक ढाल है। महात्माओं को ही उसका नाम लेना शोभनीय है। रात-दिन व्यसन में लीन रहने वाले मानव को उसकी कोई आवश्यकता नहीं।

खद्दर के कपड़े उसे नहीं भाते! जानता है वह कि इसी वस्त्र की आड़ में कितने भेड़िये स्वार्थ-सिद्ध कर रहे हैं। कितने ही अवसरवादी कांग्रेस के पवित्र नाम पर धब्बा लगा रहे हैं।

जिनको पहले खाने का ठिकाना नहीं था, रहने को मकान नहीं था, परन्तु जबान में भाषण देने की शक्ति थी, कलम में कुछ व्यक्त कर सकने की क्षमता थी—वे इधर-उधर भटकते-भटकते कांग्रेस की शरण में आये—चार गज खद्दर पहनकर, दो-चार बार जेल की हवा खाकर पक्के कांग्रेसी बन गये। मगर इन अवसरवादियों के दिल का जहर दूर नहीं हुआ।

आज शासनसूत्र हाथ में आते ही दर-दर के ये अवसरवादी भिखारी, घूसखोरों को प्रोत्साहन दे रहे हैं और यही भ्रष्टाचार निवारक कमेटी के सदस्य भी हैं···बेचारी जानता पिस रही है। पीने का पानी तक बिकने लगा, मिट्टी का मोल भी बढ़ चला।

इन अवसरवादियों की करतूतों से उन नेताओं का भी सर नीचा हो गया, जिन्होंने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सतत साधना, अभूतपूर्व त्याग एवं अविस्मरणीय बलिदान देकर मातृभूमि को स्वतन्त्रता दिलाई···वे त्यागी आज उन कुर्सीधारियों के मुखापेक्षी हो गये हैं जो सेठों को मालोमाल बनाकर स्वयं मालदार बन बैठे हैं।

यह सब जानता है जुगल ! तभी तो उसके अन्तर का द्वन्द्व, उसके हृदय का विद्रोह, ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ना चाहता है। चरखा कातना वह नहीं चाहता।

इस युग में जबकि समय का इतना अभाव और वस्तुओं का मूल्य इतना अधिक है, वह मशीनों को तरजीह देना चाहता है। भद्दे प्रयोगों में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहता वह। यन्त्रों में ही उन्नति चाहता है, चाहता है कि स्वयं उसका देश उन्हीं यन्त्रों का उत्पादन करे, उन्हें बनाए और उनसे काम ले।

यन्त्रों की बहुलता से हाथ की कला तो नष्ट अवश्य होगी, परन्तु आज सिसकता भारत राहत की सांस ले सकेगा। उसका अभाव दूर हो, उसे सस्ती चीजें मिलें—यही उसकी पूर्ति है, इसी में उसे सन्तोष होगा।

एक कला नष्ट होती है तो दूसरी पनपती है। संसार के अन्य देश यन्त्रों की मदद से कहां जा पहुंचे हैं, यह देखकर जुगल को आश्चर्य होता है। और जब वह अपने देश में रोटी के टुकड़ों के लिए सिसकते-मरते किसान-मजदूरों को देखता है, तो उसकी आंख भर आती है।

क्या यही हमारी सभ्यता है ? क्या यही हमारा उत्थान है ?

क्या यही हमारी गुलामी का अन्त, और हमारी आजादी है ?

समाज-कल्याण की व्यवस्था उसे पसन्द है। जमींदारों को हटाकर, वह उन्हें कृषक के रूप में देखना चाहता है। मिल-मालिक से मिलें छीनकर वह मजदूरों में उसके कल-पुर्जे बांट देने का अभिलाषी है।

उसका यह स्वप्न कब पूरा होता है, इसकी वह प्रतीक्षा कर रहा है।

जमींदार के घर की ओर बढ़ा जा रहा है, हृदय में केवल यह आशा लिए कि वह ठाकुर का नौकरी करते-करते किसानों के निकटतम सम्पर्क में आ सकेगा। उनका दुख-दर्द सुन सकेगा।

उनके कन्धों से कन्धा भिड़ाकर उन्हें आकाश तक ले उड़ेगा। और जब ऊपर से, ये दीन-हीन किसान नीचे की ओर देखेंगे तो उन्हें यह दुनिया कितनी तुच्छ दिखाई देगी।

अचैतन्य जुगल को ठोकर लगी। विचार-धारा में व्याघात पहुंचा।

देखा—पैर की एक अंगुली से लाल रक्त की धारा बह निकली है। चप्पल रंग उठी है। एक पेड़ के नीचे वह बैठ गया। पैर से खून पोंछकर समाचार-पत्र पढ़ने लगा।

अब वह इसे पूरा पढ़कर ही ठाकुर के घर जायेगा।

और ठाकुर…! सबेरे-सबेरे उठकर दातुन कर रहे थे। वे देर से सोकर उठने के आदी थे।

तभी दिखाई पड़ी बेला। ठाकुर के मन की सोई कलियां खिल उठीं। दातुन फेंक दिया, सजग होकर मचिया पर बैठ गये। मूंछों पर हाथ फेरने लगे—जैसे उन अधपकी मूंछों में ही उनका सारा सौंदर्य निहित हो। तब तक बेला आ गई। सर की टोकरी उतारकर नीचे रख दी।

'वाह बेला रानी ! आज तो अमरूद बेचने निकली हो—' बोले ठाकुर—'कैसे दिया ?'

'पैसे-पैसे…! लोगे ?'

'दे दो जितना चाहो और मांग लो जो कुछ मांगना हो, सब तुम्हारा ही तो है।'

'अच्छा जी ! मैं तुमसे मांगने नहीं आई हूं, यह लो अपना पांच रुपये का नोट जो तुमने कल भेजा था। मैं इसकी भूखी

नहीं।'

बेला ने नोट ठाकुर के सामने फेंक दिया। उस अल्हड़ बालिका का तेवर देखकर ठाकुर दंग रह गये। बोले—'अरे यह क्या करती हो, बेला रानी! रख लो, इसे रख लो! कोई देख लेगा तो…'

'देखने-दिखाने से मैं नहीं डरती, ठाकुर…! डरो तुम… मैंने तो जुगल भैया से साफ-साफ कह दिया कि ठाकुर ने यह नोट दिया है।'

'तुमने जुगल से कह दिया?' सहमे स्वर में बोले ठाकुर।

'हां…' बेला बोली—'उन्होंने कहा, इसे ले जाकर ठाकुर को लौटा देना—मैंने लौटा दिया।'

ठाकुर दांत पीसकर रह गये मन-ही-मन।

जुगल पर उन्हें क्रोध आया। सोचने लगे, जब वह यहां नौकरी करने लगेगा तब समझूंगा उससे।

'तो, तुम मुझे यों ही ठुकराती रहोगी, बेला रानी?

'मैं क्यों ठुकराऊंगी तुम्हें? तुम तो बड़े अच्छे हो, रोज मुझसे फल लेते हो…बोलो कितना दूं?'

'यह चूड़ियां बड़ी अच्छी लग रही हैं, बेला! कहां पा गईं इन्हें…? किसने दिया?'

'जुगल भैया ने दिया है…और कौन देगा?' बेला बोली। उसकी सलरता पर ठाकुर मुग्ध होकर रह गए।

'देखो जी! मुझे देर हो रही है—बोलो, कितने दूं अमरूद…?'

'दे दो एक आने का।' ठाकुर ने कहा।

'बस आज इतना ही लोगे, ठाकुर?' बेला अमरूद गिनने लगी, गिनकर बोली—'पैसे लाओ…।'

'यह नोट उठा लो, बेला रानी…!'

'नोट-फोट तो मैं नहीं उठाती, समझे ठाकुर! धीरे से इकन्नी लाओ…यह नोट जुगल भैया को दे देना…वह देखो, इस तरफ ही आ रहे हैं।'

ठाकुर ने जुगल को आते देखा तो इकन्नी निकालकर बेला को दे दी। वह लेकर चलती बनी। थोड़ी दूर जाकर उसने जुगल का रास्ता रोक लिया।

'कहां जा रहे हो, जुगल भैया···?'

'जा अपना काम कर, जैसे मेरे सिवा तेरा कोई है ही नहीं···दिन भर जुगल भैया, जुगल भैया रटती रहती है···' मधुर झिड़की देते हुए बोला जुगल।

'तुम तो बहुत बिगड़े-दिल हो जी! चिचिल फाटे हो न, इसीलिए···नहीं तो मैं भी कुछ कह देती···इधर कहां जा रहे हो?'

'ठाकुर के यहां नौकरी करूंगा अब बेला! तेरी क्या राय है?' जुगल ने पूछा।

'मेरी राय पर चलोगे तुम?' हलकी मादक हंसी बिखेर-कर बोली बेला—'मेरी राय मानो तो चलो, हम तुम साथ-साथ केला बेचा करें···'

'मैं भी तेरे साथ खटीक बन जाऊं, क्यों? चल हट, रास्ता छोड़···'

उसे बगल हटाकर जुगल चलने लगा।

'चल दिए जुगल भैया···? कब मिलोगे फिर···?'

'शाम को रशीद के घर से होता हुआ तेरी तरफ आऊंगा।'

ठाकुर अब तक खड़े-खड़े बेला से जुगल को बातें करते हुए देख रहे थे, परन्तु दूरी अधिक होने के कारण कुछ सुन नहीं सके थे।

'आओ जुगल! अच्छे तो हो?' ठाकुर ने जुगल को सामने देखकर कहा।

'आपकी कृपा है, ठाकुर साहब!'

'आओ चौपाल में चलें।'

दोनों आकर चौपाल की गद्दी पर बैठ गए।

'पिताजी ने मुझे आपके पास भेजा है, ठाकुर साहब!'

'हां, हां, पुरोहितजी कल मेरे पास आये थे। कहते थे कि जुगल को अपने यहां रख लो। मैंने भी हां कर दिया। सोचा कोई पढ़ा-लिखा आदमी रहेगा, तो मेरे लिए बड़ी सुविधा होगी, तुम्हें तो कोई ऐतराज नहीं, जुगल?'

'जी नहीं! मैं आपका नौकर होने ही तो आया हूं।'

'देखो जुगल! नौकर और मालिक का रिश्ता तो हमारा-तुम्हारा रहेगा नहीं। तुम तो अपने घर के आदमी हो। और

हमारे पुरोहित जी के लड़के हो।'

'जहां तक कर्तव्य का प्रश्न है ठाकुर साहब, वहां अपनत्व-प्रदर्शन बन्धन है···' बोला जुगल।

'मगर कर्तव्य और अपनत्व में कौन बड़ा है, जुगल ?'

'कर्तव्य···!' जुगल ने कहा—'अपत्व भावना मात्र है···'

'कर्तव्य करना तुम्हारा काम है और अपनत्व प्रर्दशित करना मेरा···' बोले ठाकुर—'हम दोनों अपने कार्यों में त्रुटि न होने देंगे···'

'ठीक है···तो मुझे क्या करना होगा ?'

'अभी क्या जल्दी पड़ी है···रुको, जरा-सा शर्बत पीओ, तब मतलब की बातें होंगी।'

ठाकुर के मुंह से शर्बत का नाम निकलते ही दरवाजे पर खड़ा हुआ लठैत तुरन्त शर्बत लेने ड्योढ़ी के भीतर चला गया।

'बेला से क्या बातें कर रहे थे, जुगल ?' ठाकुर ने पूछा।

'कुछ नहीं···यों ही···'

'फिर भी कुछ सुनूं तो···'

ठाकुर का अनर्गल हठ देखकर जुगल को कुछ बुरा लगा।

'बेला पूछ रही थी कि आज हवेली की ओर कैसे जा रहे हो ?'

'तो तुमने क्या कहा ?'

'मैंने नौकरी की बात साफ-साफ बता दी···'

'कह दिया उससे ?' ठाकुर बोले—'मालूम होता है तुम बेला से कुछ छिपाते नहीं, क्यों जुगल ?'

'नहीं···। छिपाने की कोई बात ही नहीं थी···'

'सुना है कि तुम उसके लिए शहर से चूड़ियां लाये थे···'

'आपको कैसे मालूम ?'

'अभी-अभी बेला की कलाइयों में देखी थीं मैंने···गांव में वैसी चूड़ियां कहीं मिल नहीं सकतीं···पूछने पर बेला ने स्वयं बता दिया···'

'कह दिया तो क्या हुआ···! छिपाने की बात तो थी नहीं।'

'क्या पुरोहित जानते हैं इस बात को ?'

'नहीं···!' जुगल को ठाकुर की यह छानबीन बुरी लग

रही थी।

'यदि जान जायं तो ?'

'तो क्या होगा ?'

'वे धर्मनिष्ट आदमी, अछूत से तुम्हारी इतनी प्रीति देखकर क्या बिगड़ेंगे नहीं ?'

'बिगड़ेंगे क्यों ? मैंने कोई खराब काम तो किया नहीं··· बेला ने मुझसे चूड़ियां मंगवायी थीं और मैंने लाकर दे दीं···'

'क्या उनके पैसे भी बेला ने दिये थे ?'

'नहीं···!'

'पुरोहितजी कथा बांच-बांच कर पैसे जुटाते हैं और तुम उन्हें उड़ाते फिरते हो जुगल ! क्या पण्डितजी इसे सहन कर सकेंगे ?'

'पिता और पुत्र की बातों में आपकी दिलचस्पी उचित नहीं, ठाकुर साहब।'

'क्यों नहीं···!' बोले ठाकुर—'तुम ब्राह्मण के लड़के हो ! तुम्हें अपनी मर्यादा, अपनी वंश-परम्परा, अपनी उच्चता नहीं भूल जानी चाहिए, समाज के उत्थान का उत्तरदायित्व तुम्हारी जाति पर है और तुम्हें समाज को ऊपर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए।'

'दिन को समाज के उत्थान की डींग मारना और रात को घृणित से घृणित कर्म करना मेरी आदत नहीं ठाकुर साहब···! मैं सब-कुछ दिन के उजाले में करना चाहता हूं, चाहे वह बुरा काम हो या भला···और जिस कार्य को समाज बुरा कहता है, वह मेरे तर्क में बुरा नहीं ठहरता तो उसे गोपनीय रखना स्वयं को धोखा देना है···समाज के कितने कर्णधार आज पवित्र हैं, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं···'

अपने ऊपर यह अप्रत्याशित आक्रमण उन्हें असह्य था, फिर भी उन्होंने चुप रह जाना ही इस समय श्रेयस्कर समझा।

उन्हें लगा, जैसे कल का जुगल आज कितना वाचाल हो गया है। कल का छोकरा आज कैसी बढ़-बढ़के बातें कर रहा है ? कल का गरीब, आज धनवान को ठोकरें मारकर आसमान छूना चाहता है ? कल का अशक्त मानव, आज हिमालय पर विजय पाने का अभिलाषी है।'

चुपचाप बैठे हुए ठाकुर क्रोध से भीतर-भीतर कुढ़ते रहे। तब तक लठैत ने दो गिलास शर्बत लाकर सामने रख दिया।

'लो जुगल, शर्बत पीओ !' ठाकुर ने कहा।

और जुगल बिना न-नुकर किये गिलास उठाकर पीने लगा। अच्छी दही और देहाती शक्कर का वह शर्बत उसे बहुत ही स्वादिष्ट लगा। उसे आश्चर्य हो रहा था कि रूखा-सूखा भोजन पाने वाली उसकी जीभ को स्वाद का इतना प्रगाढ़ अनुभव कैसे हुआ !

पीकर उसने गिलास नीचे रख दिया।

'पान खाओगे, जुगल ?…' ठाकुर ने पूछा।

'जी नहीं ! मैं पान नहीं खाता…' जुगल ने कहा—'आप मुझे मेरा काम बताइए…'

'रामसरन !' ठाकुर ने लठैत से कहा—'इन्हें मुन्शीजी के पास ले जाओ।'

जुगल लठैत के साथ बाहर आया। हवेली की एक बाहरी कोठरी में ठाकुर के वर्तमान कारिन्दा मुन्शीजी बैठे थे।

जुगल को देख उन्होंने चश्मा भाल पर टिका कर, उसे गद्दी पर बैठने का इशारा किया।

जुगल ने मुंशीजी को दूर-दूर से देखा था—पास से देखने का आज पहला ही अवसर था। मुन्शीजी की धूर्तता एवं चालबाजी के विषय में गांववालों से बहुत-कुछ सुन चुका था वह।

पचास की उम्र के हाड़-मांस वाले मुन्शीजी, देखने में बहुत सीधे और काम में बड़े काबिल थे। उनकी कलम सैकड़ों का गला काट चुकी थी। सौ का हजार और पचास का पांच सौ बनाना उनके बायें हाथ का खेल था। गांव वाले जितना उनकी सूरत से नहीं डरते थे, उतना उनकी कलम से भय खाते थे, और इसी भय से मुन्शी को अच्छी-खासी आमदनी थी।

अब जुगल को भी अपना साझीदार देखकर उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगा। बोले वे—'कल ठाकुर साहब मुझसे तुम्हारे विषय में कह रहे थे। तुम पुरोहित जी के लड़के हो न ?'

'जी हां !'

'वे तो अक्सर यहां आया करते हैं…मुझसे देर तक बातें किया करते हैं…तुम तो कभी दिखाई नहीं पड़े इधर…'

'मैं अब तक पढ़ता रहा···' कहा जुगल ने।
'कहां तक पढ़े हो ?'
'बी० ए०···'
'अच्छा !' खिड़की की तरह आंखें खोलकर देखा मुन्शीजी ने जुगल की ओर।
सोचने लगे—सीधा-साधा-सा दीखने वाला यह युवक कितनी उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुका है। उसके आगे शायद उनका दांव-पेंच नहीं चलेगा। उन्होंने उसे अपनी ओर मिलाना ही उचित समझा।
'आओ—बहीखाता तुम्हें दिखाऊं !'
कहकर मुन्शीजी खाता उलटने लगे। जुगल ध्यान से देखने लगा।
'देखो, यह मंगरू अहीर के खेत की खतौनी है। तालाब वाले खेत के बगल में इस साल उसने जौ बोया था···'
'मगर मुन्शीजी !' जुगल ने बीच में ही उन्हें टोक दिया—'तालाब वाले खेत में तो मंगरू अहीर ने अमरूद का बगीचा लगाया है, फिर जौ कैसे बोया गया···?'
'अरे भाई ! तुम अभी मासूम हो। दरअसल उसमें जौ नहीं बोया गया था···यह तो महज एक जमींदारी चाल है··· अगर कभी झगड़ा उठ खड़ा हुआ तो इसी लिखने के बल पर उसका खेत बेदखल कराया जा सकता है और वह बगीचा भी अपना हो जाएगा···'
'हूं···' एक गर्म सांस निकल गई जुगल के मुख से।
'यह देखो— दमड़ी पासी की खतौनी है—चार साल का लगान बाकी है उसके ऊपर।'
'मगर दमड़ी तो बहुत खरा आसामी है, मुन्शीजी !··· इतने साल का लगान दिया क्यों नहीं ?'
'भोले आदमी ! उसने लगान दिया है। मगर मैंने दर्ज नहीं किया—आसामियों का सर कूटने के लिए कोई-न-कोई हथियार तो अपने पास होना चाहिए···'
चुपचाप सुनता रहा जुगल। उसकी घृणा बढ़ती जा रही थी।
मुन्शीजी ने दूसरी बही उठाई।

'यह लेहना-बही है···' बोले वे—'यह देखो—'सम्पत चमार ने पचीस रुपये लिए थे, जो आज साढ़े सत्ताईस सौ हो रहे हैं···'

'कैसे ?'

'सादे कागज पर उसके अंगूठे का निशान ले लिया और बाद में पचीस की जगह पचीस सौ लिख दिया गया···केवल दो शून्य बढ़ाने की तो बात थी···ये शून्य भी कितने कारी होते हैं, जुगल !···बायें रख दो तो कुछ नहीं, परन्तु दायें रख दो गजब ढा देते हैं।'

कहकर मुन्शीजी हो-हो कर जोर से हंसने लगे।

बड़ी देर तक हंसते रहने के बाद बोले—'और बाकी ढाई सौ, पांच महीने का सूद हुआ, समझे महाराज···!'

जुगल को मुन्शीजी की हंसी में पिशाच का-सा अट्टहास सुनाई पड़ा। उसकी उंगलियां उस पिशाच का गला टीपने के लिए छटपटा उठीं, पर ज्ञान-तन्तु लौट आये और दांत पीसकर रह गया वह।

'देखो ! तुम नौजवान हो—पढ़े-लिखे हो, मुझसे भी ज्यादा कमा लोगे तुम···बस, जरा रोब-दाब की जरूरत है। इतने सिकुड़े-सिकुड़े क्यों बैठे हो ? ठीक से बैठो, जरा तन कर···' मुन्शीजी ने कहा।

'मैं अच्छी तरह से बैठा हूं। मुझे कोई कष्ट नहीं। आप आगे कहिए···' बोला जुगल।

'देखो यह है मेरी कलम···!' मुन्शीजी ने नरकट की कलम उठाकर जुगल को दिखाई—'यही मेरी तलवार है···यह वह तलवार नहीं जो गले पर रखा और गला अलग··· यह वह तलवार है, जो रेत-रेतकर, तड़पा-तड़पाकर, सांसत के साथ जान मारती है—तुम्हारी कलम में भी ताकत हो और मगज में कूवत हो तो, तुम भी बेताज के सिकन्दर बन सकते हो···'

'मैं बनने की कोशिश करूंगा, अगर आपकी कृपा रही तो !' अत्यधिक घृणा के आवेग को उदरस्थ कर जुगल ने कह दिया।

'बन जाओगे, बन जाओगे तुम···' जुगल के अनुमोदन से मुन्शीजी का उत्साह बढ़ चला—'तुम देखते रहना, दो साल के

अन्दर ही मैं तुम्हें दस-बीस बीघे की माफी दिला दूंगा। खाओ और मौज करो। मनमाना लूटो, खून करो, कत्ल करो, कोई कुछ नहीं बोलेगा। यह गांव है। समझ लो कि यहां अपना राज है।'

रुक गये मुन्शीजी तो जुगल बोला—'रुकिए मत, कहते चलिए।'

'जब तुम्हें जरूरत पड़े, बेगार में सौ-पचास मजदूर मिल सकते हैं···' कहने लगे मुन्शीजी—'तुम उनसे महीना-पन्द्रह, दिन मुफ्त में काम ले सकते हो। एक पैसा भी नहीं देना पड़ेगा। समझे···! एक पैसा भी न लगे और तुम महल खड़ा कर लो मुफ्त में ···कितना अच्छा खेल फर्रुखाबादी है···? है न!'

'जी हां···'

'घर पीछे तुम्हें पाव भर घी, धरा भर तरकारी, चार पसेरी अनाज और बहुत-सा अल्लम-गल्लम हर महीने मिला करेगा और इनका दूना मुझे। आनन्द ही आनन्द समझो! हरखू गोंड़ ने चार साल पहले···' कहते गये मुन्शीजी—'सौ रुपये लिए थे। वे इस समय सूद समेत अठारह सौ हो गए हैं। उस दिन से वह मेरे यहां बेगार में हलवाही कर रहा है। करे न तो क्या करे? कहां जाय बचकर···? और उसकी छोकरी छलिया को जानते हो न, यही पन्द्रह साल की होगी। गोरी-गोरी-सी बहुत सुन्दर! मेरे पास मुफ्त में ही बर्तन-पानी करती है, साग-तरकारी वसूल कर दे जाती है, और···और···।'

कुछ रुककर धीरे से बोले मुन्शीजी—'और मेरे साथ रात में···समझे···! समझे कि नहीं सोती भी है—तुम चाहो, तो तुम भी···तुम भी···यानि तुम तो अभी जवान हो···' एकाएक रुक गये मुन्शीजी।

उन्होंने देखा कि जुगल की आंखें अंगारों की तरह लाल हैं···लगा उन्हें, जैसे उनसे अब चिनगारियां छिटक कर उन्हें भस्म कर देंगी।

'अरे···' घबराकर बोले वे—'तुम्हारी आंखें, तुम्हारी आंखें तो अंगारों जैसी लाल हो रही हैं, जुगल!'

'बात यह है···' जुगल ने तुरन्त अपने को संयत कर लिया—'कि मुझे आश्चर्य हो रहा है, मुन्शीजी!'

'वह तो होगा ही···होगा ही···अभी बच्चे हो न! दुनियादारी की बातें क्या जानो···? तभी तो घबरा उठे एकदम···! देखा न, कितना मजा है···? इस कोठरी में बैठे-बैठे सब काम होता है···यह गद्दी इस्पात की बनी है, कुछ भी करो, बच जाओगे—साफ बच जाओगे, जूं तक नहीं रेंगेगी किसी के कानों पर···एक बहुत ही मजेदार किस्सा है···तुम्हें जरूर पसन्द आयेगा, सुनोगे ?'

'सुनाइये···' बोला जुगल।

'वह कहानी मेरे सिवा केवल ठाकुर और लठैत ही जानते हैं—और कोई नहीं जानता···'

'कहिये···'

'देखो किसी से कहना मत···'

'आप भी कहां की बातें करते हैं, मुन्शीजी ? भला मुझे क्या पड़ी है कि गुप्त बातें लोगों से कहता फिरूं ? इसमें तो अपना ही नुकसान है।'

'सो तो है ही···' मुन्शीजी बोले—'तुम्हें मेरे साथ काम करना है न ? इसीलिए तुम्हें सारी भेद की बातें पहले से ही बता देना चाहता हूं ताकि बाद को तुम्हें आसानी रहे···'

'ठीक कहते हैं, आप। मगर, वह कहानी तो सुनाइये।'

'सुनो-सुनो कान खोलकर सुनो। तालाब के पास जो ऊंचा-सा खेत है, देखा है न तुमने ···?'

'जी हां, देख चुका हूं—' जुगल ने कहा।

'बीस साल पहले जानते हो वहां क्या था ?' मुन्शीजी ने पूछा।

'क्या था ? मैं तो नहीं जानता।'

'जान ही कैसे सकते हो—! तुम तो उस समय बित्ता भर के थे ही—न बोल सकते थे, न चल सकते थे। केवल घुटनों के बल रेंगते थे। उस समय तुम्हारी मां जिन्दा थीं···हां ! तो उस जगह एक कच्चा मकान था···बुद्धू नोनिया उसमें रहता था। बड़ा हेकड़ीबाज आदमी था। शरीर से गामा जैसा लगता था। वह था और उसकी लड़की किसुनी थी। केवल यही दोनों उस मकान में रहते थे। किसी से दब के नहीं रहता था। वह मुझसे तो क्या, ठाकुर से भी ऐंठकर बातें किया करता था···मगर

एक दिन आ ही गया मेरे पंजे में और देखली उसने मेरी कलम की ताकत—'

'किस प्रकार—?' जुगल ने उत्सुकता में भर कर पूछा।

'उसे दो सौ की बड़ी जरूरत आ पड़ी—' बोले मुन्शीजी—'सो मुझसे आकर कहने लगा कि मुन्शीजी ठाकुर से दो सौ रुपये दिला दो। मैंने सादे कागज पर अंगूठा लगवाना चाहा तो वह बेईमान राजी ही न हुआ। आखिर उर्दू में दो सौ की जगह दो हजार लिखकर अंगूठा निशान ले लिया—यह उर्दू जबान भी कमाल की चीज है, जुगल?'

'जी हां।'

'साल भर बाद ठाकुर ने उसे तबाह कर डाला। उसकी जगह-जमीन सब बेदखल कर ली। बुद्धू इसी सदमे में मर गया। उसकी बेटी किसुनी जवानी के कगार पर पहुंच चुकी थी। जमींदार साहब उसकी जवानी पर लट्टू हो गये—सो एक दिन ठाकुर ने उसके घर को कुदाल से खुदवा कर खेत में परिणत कर दिया—और अकेली पड़ गई किसुनी को हवेली में पकड़ लाये—फिर—फिर वही हुआ जो होना था—'

'बताइए भी!'

'फिर तो वह छोकरी रात भर में ठाकुर के अतिरिक्त, मुझे लेकर सात-आठ लठैतों के पाले पड़ी। रात भर में वह चीं बोलकर रह गई। सुबह उसकी लाश चुपके से जमीन में गाड़ दी गई···कुछ ही लोग जान सके, मगर कौन बोलने वाला था···?'

सुनते-सुनते जुगल की विद्रोहाग्नि सजग होकर ज्वालायें फेंकने लगी। जुगल को लगा जैसे वहां अधिक देर तक ठहरेगा तो अपने को सम्भाल न सकेगा। वह उठकर तेजी से दरवाजे की ओर लपका। मुन्शीजी चिल्लाते रहे—'सुनो जुगल! कहां जाते हो?'

'भूख बड़ी जोर की लगी है, मुन्शीजी···! शाम को आऊंगा···' कहता हुआ जुगल बाहर निकल गया।

उफ्! आज उसने क्या-क्या सुना? क्या यह सब सत्य है? क्या इतना अत्याचार एक मानव दूसरे मानव पर कर सकता है···? तो फिर इन्सान को शैतान होने में देर ही क्या है···?

अपने स्वार्थ के लिए उसने दूसरों का गला घोंटना सीख लिया है···अपनी वासना-तृप्ति के लिए उसने असहायों की अस्मत के साथ खिलवाड़ करना अपना ध्येय बना लिया है···अपनी क्षुधा-तृप्ति के लिए उसने भेड़-बकरों की कौन कहे, मानव का रक्त पिया है, इन्सान का मांस नोंचा है।

ऐसा नर-पिशाच मानव इतिहास के किस युग में हुआ था ? सोचने लगा जुगल तो उसे लगा कि उसका ऐतिहासिक ज्ञान अधूरा है। वह कुछ नहीं जानता।

जब वह बीती बातें भी नहीं जानता, तो वर्तमान और भविष्य जानने का घमन्ड क्यों करता है ?

घर पहुंचा। पुरोहित दरवाजे पर खड़े थे।

जुगल को देखकर पूछा उन्होंने—'लौट आये बेटा ? काम समझ चुके सब ?'

'जी हां···'

'यह क्या···? तुम्हारा चेहरा इतना लाल क्यों है ? आंखें बड़ी भयानक लग रही हैं, तुम्हारी···? क्या बात है, जुगल ?'

'कुछ नहीं पिताजी···कुछ नहीं···' बोला जुगल—'धूप में आने से ऐसा हुआ है···'

'अच्छा चलो—भोजन कर लो···'

'भोजन नहीं करूंगा, पिताजी !'

'क्यों···?'

'इच्छा नहीं है···!' मानसिक उत्तेजना से आक्रांत जुगल बहाना कर गया।

'क्यों इच्छा नहीं है ? कुछ बताओ भी तो···' पुरोहित ने पूछा।

'सिर में दर्द है, पिताजी···!' जुगल ने पीछा छुड़ाना चाहा।

'सिर में दर्द है···! हरे राम ! यह कैसे हुआ, जुगल···? अच्छा चलो चारपाई पर लेट रहो···मैं अभी आया—'

जुगल भीतर जाकर चारपाई पर लेट रहा।

पुरोहितजी धूप में दौड़े-दौड़े बनिए की छोटी-सी दूकान पर आये। चार पैसे का लौंग खरीदा और फिर हांफते हुए घर लौटे।

घर आकर उन्होंने सिलबट्टे से लौंग पीसा और उसे छोटी-सी कटोरी में गर्मकर जुगल के पास आकर बोले—'लौंग लाया हूं, बेटा ! इसे सर पर लेप करने से पीड़ा दूर हो जायेगी…' पुरोहित ने कहा।

जुगल पिता का ममत्व देख पिघल कर बह चला। वह अपने भोले पिता को अपने दर्द का मर्म कैसे समझाये ? कैसे बताए कि उसका हृदय अत्यन्त अव्यवस्थित हो उठा है इस समय।

जुगल जानता है कि पुरोहित के निष्कपट हृदय में अपने बेटे के लिए अगाध प्यार भरा है। मां के मर जाने पर मृत आत्मा की धरोहर समझकर उन्होंने जुगल को पाला-पोसा है।

पिता के ममत्व-भार से दबाकर कभी-कभी वह विचलित हो उठता है—उसकी समझ में ही नहीं आता कि वह अपने विद्रोह को दबाकर, अपनी अन्तरात्मा का खून कर, किस प्रकार पिता की आज्ञा माने !

'लगा दीजिये पिताजी…।' धीरे से कहा जुगल ने।

असीम तन्मयता के साथ पुरोहित ने उसके मस्तक पर लौंग का लेप चढ़ाया और तब लौट गए। उन्हें सन्तोष हो गया था।

जुगल ने भी चारपाई पर चुपचाप लेटकर निद्रा आने के लिए आंखें बन्द कर लीं। थोड़ी ही देर में उसे नींद आ गई।

दो घण्टे तक वह सोता रहा। इसके बाद नींद खुली तो वह पुनः उन्हीं दुर्दमनीय विचारों में निमग्न हो गया।

सोचने लगा वह—मानव में शोषण की प्रवृत्ति कब से आई ?

आदि युग में जबकि मानव असभ्य कहा जाता था, जंगल में जानवरों का शिकार करता था, उसके चमड़े से वस्त्र का काम लेता था, तब तो इतना अन्तर, इतना वैमनस्य मानव में नहीं था।

पूंजी के लिए तब इतने झगड़े नहीं होते थे।

फिर अमीरी और गरीबी की यह सृष्टि किस युग की देन है ?

क्या हमारी आज की सभ्यता ही इसकी जन्मदात्री है ?

पेड़ के कोटरों में रहने वाले आदि युग के उस मानव को किसी वस्तु का अभाव न था। न तो उसके पास कोई पूंजी थी, न घर-मकान ही थे, जिसकी रक्षा के लिए वह चिन्तित होता। रोज शिकार करना, रोज खाना, यही उसकी दिनचर्या थी।

सभ्यता ने थोड़ी-सी करवट बदली और वृक्षों पर का मानव जमीन पर आकर रहने लगा। छोटे-छोटे घर बना लिए उसने। खेती भी करने लगा।

खाने से ज्यादा अनाज पैदा होने लगा, तो मन में संचय करने की प्रवृत्ति जागी और उसने पूंजी एकत्र करनी आरम्भ कर दी। दूसरे लोग अभाव में रहे, परन्तु संचय के लिए इच्छुक वह मानव पिघला नहीं। हृदय में भाव उठा—अपने परिश्रम से कमाया हुआ अन्न वह दूसरों को क्यों दे? और दे तो मुक्त क्यों दे?

पूंजीवाद का जन्म यहीं से हुआ।

धीरे-धीरे व्यापार बढ़ाने की प्रवृत्ति हुई। उसने अपने संचित अन्न में से थोड़ा-थोड़ा दूसरों को देकर उनसे काम लेना प्रारम्भ किया, वे मजदूर कहलाये। वे मालिक के लिए जी-तोड़ परिश्रम कर खेतों में काम करते और सन्ध्या को थोड़ा-सा अन्न पाकर सन्तोष कर लेते थे।

उस साल की पैदावार लेकर मालिक फूल उठा। वह अब था अमीर और दूसरे गरीब। सभ्यता ने इन्सान को चालाकी सिखा दी।

कुछ वर्ष बीते। अमीरों-गरीबों की सृष्टि हो चली थी। एक मालिक था, तो बहुतेरे मजदूर—एक शासक था, तो अनेक शासित—शोषण धीरे-धीरे बढ़ चला। संचय का लोभ बढ़ता गया। छल और कपट भी मानव ने सीख लिया। इस तरह हजारों वर्ष बीत गये।

एक दिन का निरीह मानव, बीसवीं सदी में विज्ञान का गुरु कहा जाने लगा। रेलगाड़ी, हवाई जहाज, जलयान, कपड़े की मिलें आदि कितनी ही वस्तुएं उसने बनाईं और इन सबने धन-हीनों के शोषण में सहायता दी।

मजदूरों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती गई। अमीरों की ही दुनिया में से जमींदारों का जन्म हुआ और इनके शोषण

से संसार के अधिकांश मानव पिस-पिस कर रह गए।

'सो चुके बेटा!' पुरोहित आकर बोले—'सर की पीड़ा कैसी है?'

विचारों के प्रवाह में व्याघात हुआ। किसी ने जैसे जुगल को आकाश से जमीन पर ला पटका।

बोला वह—'अब तो पीड़ा नहीं है, पिताजी···!'

'सूरज डूब रहा है, थोड़ा उठकर टहल आओ, तबियत हरी हो जायेगी···न हो तो हवेली तक ही चले जाओ···'

'अच्छा पिताजी!' कह दिया जुगल ने। पुरोहित चले गये।

अब तक जुगल ने कुछ खाया नहीं था। चेहरा सूख चला था, फिर भी वह भोजन करना नहीं चाहता था। उठकर उसने हाथ-मुंह धोया। गले में कुर्त्ता और पैर में चप्पल डालकर बाहर निकल पड़ा।

हवेली की ओर चला जा रहा था वह। परन्तु निकट पहुंच कर उसकी घृणा जाग्रत हो उठी और वह घूम पड़ा। रशीद के दरवाजे पर ही आकर वह रुका। वहां पहुंचते ही उसकी तबियत अपने आप हरी हो गई।

'भाभी···! ओ भाभी!' उसने पुकारा।

अन्दर से आवाज आई—'आती हूं भाई! कौन है?'

जमीला लपकती हुई बाहर आई तो देखा जुगल खड़ा है।

'तुम हो···?' जमीला ने कहा—'अपने घर से ही पुकार लेते, यहां आकर पुकारने की तकलीफ क्यों की तुमने?'

'भूल हो गई, भाभी!'

'अन्दर क्यों नहीं चले आये···? किसी ने रोक रखा था क्या? मेरी रोटी तवे पर जल गयी होगी···।'

'सीधे भीतर चला आता तो बाहर से मुर्गे की तरह बांग कौन देता भाभी?'

'अच्छा आओ भी, या बाहर ही खड़े रहोगे?'

दोनों अन्दर आये।

'जाकर उनके कमरे में बैठो···मैं अभी आई···'

'रशीद भैया कहां हैं?' जुगल ने पूछा।

'बड़ी देर से कहीं गये हैं—अब आते ही होंगे।' कहकर

जमीला घर के अन्दर चली गई।

जुगल रशीद के कमरे में आकर चारपाई पर बैठ रहा।

'लो भाई! मीठी रोटी बनाई है, खाओ थोड़ी-सी।' जमीला ने अन्दर आकर कहा।

'खाऊंगा क्यों नहीं भाभी!' जुगल ने कहा—'दो न... बड़े भाग्य से भाग जागे हैं आज...'

हंसती हुई जमीला ने हाथ की तश्तरी जुगल के आगे कर दी।

निस्संकोच भाव से जुगल मीठी रोटियां खाने लगा।

'पानी लाओ भाभी! मैं आज बहुत भूखा हूं, थोड़ी रोटियां भी लेती आना...'

'भाई! सब तुम्हीं खतम कर दोगे तो वे क्या खायेंगे?'

'मैं क्या जानूं, यह सोचना तुम्हारा काम है...' जुगल ने कहा—'तुम सीधे से रोटी लाओ, नहीं तो मैं भीतर जाकर सब चौका-बर्तन साफ कर दूंगा।'

'अभी लाई...चुप बैठे रहो, जानती हूं कि न पाकर तुम खुराफात करोगे।'

जमीला ने थोड़ी ही देर में, पानी का गिलास और दो छोटी-छोटी रोटियां और ला रखीं।

खा-पीकर जुगल कुछ चैतन्य हुआ। बोला—'अब आराम मिला...मारे भूख के आंखों में तारे छिटक रहे थे, भाभी!'

'क्यों...? घर पर नहीं खाया था क्या!' पूछा जमीला ने।

'नहीं, दोपहर को तबियत ठीक नहीं थी...अच्छा, तो मैं चलूं, बेला ने बुलाया है...'

'हां भाई। बेला रानी बुलायें और तुम न जाओ? भला यह कभी हो सकता है!' हंसने लगी जमीला।

और जुगल बाहर निकलकर बेला के छोटे-से बगीचे की ओर बढ़ चला, क्योंकि वह जानता था कि बेला इस समय वहीं होगी।

बेला ने देखा तो वह उसकी ओर दौड़ पड़ी। पास आकर जैसे उससे लिपट-सी गई। खुशी थामे से न थमी।

'आ गए जुगल भैया!'

'आ तो गया···' जुगल ने कहा—'मगर तू मुझे दूर से ही देखकर डायन जैसी क्यों दौड़ पड़ती है ?'

'हटो जी ! मुझे डायन-फायन मत बनाओ, नहीं मैं बिगड़ पड़ूंगी, हां···! चलो, तुम्हें पके अमरूद खिलाऊंगी चख-चखकर ऐसे मीठ-मीठे कि जनम भर याद करोगे, आओ न···!'

और हाथ पकड़ बेला घसीट ले चली जुगल को।

बगीचे में एक पेड़ के नीचे, घास पर उसने जुगल को बैठा दिया और दौड़कर तीन-चार बड़े-बड़े अमरूद तोड़ लाई।

एक अमरूद उसने दांतों से काटा, फिर उसे जुगल की ओर बढ़ाकर बोली—'लो जुगल भैया, बड़ा ही मीठा है यह।'

'क्यों रे, अपना जूठा खिलायेगी ?'

'बड़े नवाब हो न तुम···! अभी कल तक छीन कर खाते थे और आज बिचिल फार्ट बन गए तो नखरा करने लगे···सीधे से खाते चलो—समझे !'

जुगल को खाना ही पड़ा। उन दोनों के बीच जात-पात का भेदभाव नहीं था—बचपन के साथियों में भेदभाव कैसा ?

'ले तू भी खा बेला !' कहकर जुगल ने अपना जूठा अमरूद बेला के मुह में भर दिया।

'जुगल भैया ? एक बात कहूं···?'.

'कह न···!'

'तुम बड़े अच्छे हो, जुगल भैया ! तुम्हारे बिना मेरा जी नहीं लगता, न जाने क्यों···?' कहकर बेला अपने-आपमें ही शरमाकर चुप हो गई।

३

गांव में—जहां मदिरा छलकती है, ठर्रे की बोतलें उलटती हैं, गाली-गलौज का बाजार गर्म रहता है, उसे कहते हैं होली !

दिन भर के अथक परिश्रम से थके हुए ग्रामीण, जिन्हें पीने की आदत है, सन्ध्या को वहां एकत्र होते हैं छटांक या पौवाभर पीकर मतवाले बनते हैं और आपस में तोर-मोर करते हुए अपनी-अपनी घरवालियों से लड़ने घर की ओर चल देते हैं।

जिन्हें दिन भर की कमाई जुए में हार जाने की आदत है, वे यहीं होली में रुककर कौड़ियों पर दांव लगाते हैं। हार गए तो घर जाकर, दो-चार घूंट पानी पीकर भूखे ही सो रहते हैं। स्त्री तथा बच्चों की कोई परवाह नहीं—अपने व्यसन की धुन है उन्हें।

शाम हो गई है···होली में बड़ी चहल-पहल है। खूब शोर हो रहा है। बड़ी-सी लालटेन के सामने दस-बारह बोतलें रखे हुए शिवपूजन कलवार बैठा है। थोड़े-से छोटे-बड़े कुलहड़, पास ही छितनी में उल्टे-सीधे पड़े हैं।

'कहो शिवपूजन चाचा ! बिकरी-बट्टा कैसा है आज···?' एक ने आकर पूछा।

'क्या बताऊं यार पलटू ? अब तो गांव वाले जैसे पीना ही छोड़ बैठे हैं···' शिवपूजन ने कहा—'देखते नहीं थे, पर साल यहां जाड़े में कितनी भीड़ जुटती थी···? और आज देखो, यही दस-पांच आदमी भला कितना पी सकेंगे ··? कैसे पेट भरेगा, तुम्हीं बताओ ?'

'अरे पेट तो रामजी सबका भरते हैं, चाचा ! तुम्हारा खाली थोड़े ही रह जायेगा···'

'दिन बड़े बुरे नजर आ रहे हैं, पलटू ! सुना नहीं, शहर की सारी होलियां बन्द कर दी गई हैं—कहीं एक बूंद नहीं पा सकते शराब की तुम···!'

'ऐसा क्यों, चाचा ?' आश्चर्य से बोला पलटू—'भला ऐसा क्यों हो गया ?'

'ये कांग्रेस वाले बहुत बदमाशी कर रहे हैं, भाई ! कहते हैं, आदमी पीने से अन्धा हो जाता है···' शिवपूजन ने कहा।

'भला उनसे कोई पूछे कि तुम तो पीते नहीं, फिर तुम कैसे अन्धे हो गए ?'

'क्या वे अन्धे हैं, चाचा···?'

'अरे पूछ मत रे—! इतना घूस खा रहे हैं, गरीबों को पीस रहे हैं तो अन्धे नहीं तो और क्या हैं ? हाथ में ताकत आ गई है तो सभी दुराचार करने पर उतर आये हैं। छोटों की बात क्या जानूं मैं, मगर बड़े-बड़े कांग्रेसी क्या सच्चे रास्ते पर हैं, आज-कल···! पूछ मत भैया ! इतना जुलम तो अंग्रेजी सरकार भी नहीं करती थी···'

'तो तुम्हारी हौली भी कुछ दिनों में बन्द हो जावेगी, चाचा ?' पलटू ने पूछा।

'यहां कौन बोलता है ? यह तो गांव है—ठाकुर का राज है। यहां तो खुद ठाकुर पीते हैं, फिर कौन बोल सकता है···? सरकारी शराब नहीं मिलेगी, न मिले···ठर्रा तो मिलेगा ही।'

'ठीक कहते हो, चाचा !'

'लोगे कुछ आज ? या यों ही गप्पें लड़ाने आये हो···?'

'लूंगा क्यों नहीं !'

'गांठ में पैसे हैं ?'

'हैं क्यों नहीं···! दे दो आधा पाव।' पलटू ने कहा।

'बस, आधा पाव ही···? कमा-कमाकर पैसे जुटा रहा है क्या पलटू ?'

'अरे चाचा की बात···! जुटा के क्या होगा ? यह लो, पास में बारह आने हैं, आधा पाव दे दो।'

'ले भाई ! आधा पाव ही सही—' कहकर शिवपूजन ने कुल्हड़ भरा।

बारह आने में आधा पाव का कुल्हड़ खरीदकर पलटू एक कोने में जा बैठा। कोने में एक आदमी और बैठा था। पलटू को देखकर बोला—'आओ पलटू ! बहुत दिनों पर दिखाई पड़े तुम ?'

'मैं तो रोज आता था, दीनू भैया ! अलबत्ता तुम्हीं नहीं दीख पड़ते थे कभी···क्या हौली का रास्ता भूल गए थे—?'

'अरे नहीं···' दीनू ने कहा—'इधर कुछ सूल-सराजाम ही नहीं होता था—करता क्या !'

पलटू बैठ गया। कुल्हड़ मुंह से लगाकर खाली कर दिया उसने।

'तुमने पीया, दीनू भैया ?' उसने दीनू से पूछा।

'हां, मैं एक पौवा पी चुका हूं…'

'आठ है…आठ…! नहीं, नौ है नौ…'

'नहीं, दस हैं…'

'नहीं, नौ है…'

कोठरी के दूसरे कोने में बैठे हुए कुछ जुआरी चिल्ला रहे थे। कौड़ियां फेंकी जा रही थीं। दो-दो, चार-चार आने के दांव चल रहे थे।

शोर सुनकर पलटू और दीनू का भी ध्यान भंग हुआ—'चलो दीनू भैया ! एकाध दांव हम भी देख लें—' पलटू ने कहा।

'चल तो फिर, भागे सो भंगी।' दीनू उठता हुआ बोला।

कौड़ियां खड़खड़ाने की आवाज सुनकर इन्हें भी जोश आ गया।

शिवपूजन का बड़ा लड़का नाल की सन्दूक सामने रखकर बैठा हुआ था और जीते हुए जुआरियों से चौथाई वसूल कर उसमें डालता जा रहा था।

'एक चवन्नी मेरी भी…' चिल्लाया पलटू।

'एक चवन्नी मेरी भी…' दीनू भी तेज आवाज में बोला।

कौड़ियां फेंकी गईं। दोनों हारे—मगर उस हार से उन्हें दुःख नहीं हुआ, वरन् दिमाग का पारा और चढ़ गया। मदिरा की मादकता धीरे-धीरे तीव्र होती जा रही थी।

'अबकी अठन्नी लो…' पलटू ने कहा।

'मेरी भी…।' दीनू बोला।

खड़-खड़, खड़-खड़—छुप्प…! कौड़ियां फेंक दी गईं।

'सात है…' पलटू चिल्लाया।

'चुप बे ! आठ है…' दीनू भी गरजा, आंखें लाल-पीली करके।

'ओ दीनू के बच्चे ! आंख किसको दिखाता है ?' पलटू बोला।

और देखते-देखते उन दोनों शराबियों में उठा-पटक होने

लगी।

'दो-चार आदमियों ने बीच-बचाव कर उन्हें शान्त किया। गर्द झाड़ते हुए दोनों उठ खड़े हुए।

'चल पलटू ! चल…' दीनू झूमता हुआ बोला—'यहां वाले बड़े बेईमान हैं…आपस में लड़ने भी नहीं देते।'

'हां भैया ! चलो…' लड़खड़ाते पैरों से दोनों बाहर आये और घर की ओर बढ़ चले।

'चोट तो नहीं आई, दीनू भैया—?' रास्ते में पलटू ने पूछा।

'मैंने इतनी जोर से पटका था—चोट तो तुझे आनी चाहिए लल्लू के पट्ठे…' दीनू ने ताव में आकर कहा।

'मुझे क्यों चोट आती बे—?' पलटू भी गर्म हो उठा—'चोट आये तेरे बाप को…'

'और तेरे बाप को नहीं ? चोट्टा, चमार, चमरगिद्ध कहीं का…।'

'क्यों रे बेईमान, बदमाश, बनबिलाव…मुझे गाली दे रहा है…ले अच्छा…!' कसकर पलटू ने एक झापड़ जड़ दिया दीनू के गाल पर।

झापड़ खाकर भी दीनू उत्तेजित नहीं हुआ।

चलते-चलते रुक गया बोला—'जा रे जा, मैं तेरे साथ नहीं जाता…।'

'चलो न दीनू भैया !' बहुत नम्र बनकर बोला पलटू।

'तू इतनी जोर से तमाचा मारता है कि दिन को तरई नजर आने लगती है।'

'इस वक्त दिन नहीं है, दीनू भैया ! रात है…!'

'ओह ! रात है…।' दीनू बड़बड़ाकर बोला—'तब तो पलटू ! चल जल्दी घर चलें—मेहरिया ताकती होगी। डर है, कहीं झाड़ू लेकर मारने न दौड़ पड़े…।'

'तुम जाओ, दीनू भैया ! मेरा घर आ गया।'

'एं ! आ गया ? न कोस, न दो कोस…! इतनी जल्दी कैसे आ गया तेरा घर, पलटू !' बड़बड़ाता हुआ दीनू आगे बढ़ गया।

पलटू घर के दरवाजे पर आया तो तीन-चार आदमियों

की छाया देखकर चौंक पड़ा। अंधेरा था और नशा भी, इसीलिये वह उन्हें पहचान न सका।

'कौन है ?' उसने पुकारा।

'मैं हूं, पलटू···रामसरन !' ठाकुर के लठैत ने कहा।

'ओह ! कैसे आये रामसरन भैया···?' पलटू वहीं बैठता हुआ बोला—'और कौन है ? क्या ठाकुर ने भेजा है, भैया ?'

'अरे नहीं पलटू ! हम ऐसे ही तुमसे भेंट करने चले आये··· खा-पी चुके या नहीं ?'

'खा-पी चुका हूं···जरा होली पर चला गया था। जानते तो हो कि दिन की थकान कितनी दुखदायी होती है···।'

'ठीक है ठीक है···।' कहते हुए रामसरन ने सरजू को कुछ इशारा किया।

चुपके से पलटू की नजर बचाता हुआ सरजू घर में घुस गया।

घर के भीतर पलटू की जवान बहन सुखिया थी।

पलटू को फंसाये रखने के ख्याल से रामसरन ने बातों का सिलसिला जारी कर दिया। खेती-क्यारी, काम-धन्धा—मतलब सब विषय की बातें होने लगीं।

पन्द्रह मिनट बाद धीरे से सरजू घर से बाहर निकला। चुपके से आकर अपनी जगह पर बैठ गया और पलटू से बातें करने लगा।

अब मौका देखकर रामसरन भी भीतर जा घुसा।

रामसरन लौटा तो बुल्ला भी गया।

और थोड़ी ही देर में लौट आया वह।

'चलें पलटू···!' तब रामसरन बोला—'तुम्हें बहुत देर तक बातों में फंसाये रखा···।'

'चलो भैया ! मैं भी अब सोऊंगा···।' कहकर पलटू ओसारे में ही कथरी बिछाकर पड़ रहा।

ठाकुर के तीनों लठैत बातें करते हुए चल पड़े।

'कैसा मजा रहा, सरजू ?' रामसरन ने कहा।

'कुछ पूछो मत यार ! पूरा उल्लू है वह पलटू ! सुखिया पहले राजी ही न होती थी—बहुत डराया-धमकाया, तब कहीं तैयार हुई।' सरजू बोला।

'अब किधर चलने का इरादा है···?' बुल्ला ने पूछा।

'चलो जरा दीनू के घर होते चलें। ठाकुर के लिए भी तो कुछ चाहिये···।' रामसरन ने कहा।

दीनू शराब के नशे में बुत्त अ ने ओसारे में सोया था।

रामसरन ने पुकारा तो बोला नहीं कुछ। रामसरन समझ गया कि वह पूरी तरह बेहोश है।

'तुम धीरे से भीतर चले जाओ···।' रामसरन सरजू से बोला—'इसकी छोकरी को राजी कर लाओ। न राजी हो, तो पिछवाड़े से घसीट ले जाना उस अमराई में···तब तक हम भी आ जायेंगे और हवेली में ले चलेंगे उसे···।' कहकर सरजू आगे बढ़ा। भिड़काया हुआ दरवाजा धीरे से धकेल कर भीतर घुस गया।

दीनू की लड़की रमकलिया खटोले पर सोई थी, जाग रही थी अभी। गरीब की लड़की थी और शरीर पर जवानी का भार था, फिर नींद आती तो कैसे आती···? सरजू को देखकर वह चिल्लाई नहीं—भयभीत जरूर हुई। चिल्लाई इसलिए नहीं कि वह चिल्लाने का अन्तिम परिणाम जानती थी।

खटोले पर से उठकर खड़ी हो गई वह। सरजू ने पास आकर उसकी कलाई पकड़ ली, बोला—'चल हवेली में।'

'क्यों···?'

'ठाकुर की आंखों पर तुम चढ़ गई हो, इसलिये।'

'मैं नहीं जाती···।' रमकलिया ने कहा।

'घसीट ले चलूंगा। जरा भी चिल्लाई तो तेरे बाप की गर्दन टीप देगा रामसरन—बाहर बैठा है वह।'

कहकर सरजू ने रमकलिया के हलके शरीर को गोद में उठा लिया और पिछवाड़े के दरवाजे से बाहर निकलकर अमराई में आ रहा।

थोड़ी देर बाद रामसरन और बुल्ला भी आ गये।

तीनों रमकलिया को लिये हुए हवेली में आ पहुंचे।

ठाकुर ने धीरे से दरवाजा खोलकर पूछा—'लाये किसी को···?'

'रमकलिया है सरकार!' रामसरन ने कहा।

'भीतर लाओ।' ठाकुर ने आज्ञा दी।

और वह कांपती हुई असहाय युवती भीतर धकेल दी गई। ठाकुर ने दरवाजा बन्द कर लिया।

उस समय रात के ग्यारह बज रहे थे।

ठाकुर वासना-तृप्ति में आकण्ठ डूबा था और उधर उसके गांव के मुसलमान विद्रोह के लिये एक दृढ़ मोर्चा तैयार कर रहे थे।

यद्यपि ठाकुर का व्यवहार मुसलमानों के प्रति इतना बुरा नहीं था जितना हिन्दुओं के प्रति, फिर भी देश के कोने-कोने में जो भयंकर अत्याचार एवं रक्तपात हो रहा था, उसकी छूत से वहां के मुसलमान कैसे बचते?

उनमें भी मजहबी जुनून कुछ कम न था। जुम्मन के घर की एक एकान्त कोठरी में गांव के सभी मुसलमान एकत्र थे। दिल में जहर और मुंह में आग की ज्वाला जज्ब किये शहर से इसहाक मियां भी आये थे।

इसहाक मियां शहर के मुस्लिम-लीग वजीरेआजम थे और जुम्मन के नजदीकी रिश्तेदार भी। वे काठ के तख्त पर आसीन थे—और सभी जमीन पर बैठे थे।

'सब लोग आ गये हैं···?' इसहाक ने पूछा।

'सभी आ गये हैं किब्ला! मगर वह नाकारा रशीद नहीं आया है···।' जुम्मन ने कहा।

'उसे समझाया नहीं···?'

'समझाया था, सुनकर मुंह बिचका दिया उसने। वह हमारी जमात पर काला धब्बा है! काफिरों का सबसे बड़ा हिमायती है। अपने को खुदा समझता है वह···।'

'खैर! उससे समझ लिया जायेगा···।' इसहाक बोला—'यह समझ लो तुम लोग, कि शुरू में तुम्हारे कितने ही दुश्मन पैदा होंगे, मगर तुम्हें सबको शिकस्त देनी है।'

'हमारा हर नौजवान आपके इशारे पर कुर्बान होगा, किब्ला!'

'ठीक है···।' इसहाक कहने लगा—'तुम लोग गांव के बाशिन्दा हो, सदियों से जोरो जुल्म सहते आये हो। अपना मजहब, अपनी तहजीब, अपना अखलाक—सब-कुछ भूल गये हो तुम! अब वह वक्त नजदीक है जब हमारी पाक रियासत की

नींव, काफिरों के खून और लोथड़ों पर डाली जायेगी। तुम्हें तैयार होना है, हाथ में हथियार पकड़ना है···दिल में बगावत की, खूरेजी की आग जलानी है···।'

'······' सब सुन रहे थे शान्त होकर।

'काफिरों का बच्चा-बच्चा तुम्हारा दुश्मन है···तुम्हें इन्हें नेस्तोनाबूद करने की कसम खानी पड़ेगी—इनकी औरतों को जबरदस्ती अपने घर में डाल लेना होगा···इनके जर, जमीं, जायदाद सब पर अपना कब्जा करना होगा। हमारे बुजुर्ग यहां के बादशाह थे, लेकिन हम गिरते-गिरते अब उनके पैरों की जूती बन गये हैं। हमारी ताकत हमारे जजबात कुचल दिए गए···हमें इन सबका बदला लेना है, तैयार हो तुम लोग···?'

'इजाजत की देर है···हम लोग गांव के काफिरों का सफाया कर देंगे···।'

'बहुत खूब!' इसहाक प्रसन्न होकर बोला—'अभी वक्त का इन्तजार करो···अपनी ताकत मजबूत करो···वक्त आने पर तुम्हें हमले की इजाजत मिल जायेगी···तुम जुम्मन मियां को यहां का रहनुमा समझो—हम सारी बात इनको समझा देंगे।'

'मगर किब्ला! हमें हथियार···।'

'मिलेगा, घबराओ मत!' इसहाक कहने लगा—'शहर के कप्तान हमारी जमात के हैं और पोशीदा तौर पर हमारी भरपूर मदद कर रहे हैं। तुम्हें मकान जलाने के लिए पैट्रोल, खून करने के लिए छुरे, भाले, बल्लम वगैरह दिये जायेंगे···कारतूस के साथ दो-तीन बन्दूकें और हथगोले भी मिलेंगे···सारा सामान जल्द जुम्मन मियां के पास पहुंच जायेगा, मगर याद रखो—किसी को कानों-कान खबर न हो···।'

'आप इत्मीनान रखें—जमीन के अन्दर ये चीजें रखी जायेंगी···।' जुम्मन ने कहा।

'ठीक है, हमारी मदद मुल्क के बड़े-बड़े नवाब, अमीर और ओहदेदार कर रहे हैं···फतह पाओगे तो मालामाल होकर रहोगे—शहीद होगे, तो तुम्हारे खानदान को वसीयत मिलेगी···अच्छा तो अब जलसा बरखास्त करना चाहिये, मुझे नींद लग रही है।'

सब उठ खड़े हुए और एक-एक करके चुपचाप चले गये।

भोले-भाले ग्रामीण मुसलमानों के हृदय, उस जहरीली तकरीर से सराबोर हो रहे थे। सभी स्वर्ग का स्वप्न देखने लगे। धर्मोन्माद में सभी पागल जैसे हो रहे थे···और उन्हें सब्ज बाग दिखलाने वाले नरपशु यह देखकर प्रसन्न थे कि उनका चलाया हुआ जहर-भरा तीर, भोले मुसलमानों को लग चुका है···अब उनकी धन-लिप्सा, रक्त पीने की प्यास शीघ्र ही परितृप्त होगी।

वैमनस्य एवं भेद-भाव का बीज बो दिया गया था। सूखी घास पर चिनगारी डाल दी गई थी, लपटें निकलनी बाकी थीं। शताब्दियों से हिन्दुओं के साथ भाई चारा रखने वाले मुसलमान, आज अपने को गैर समझने लगे थे। उन्हें दिखाई देने लगा था कि उनके शरीर का रक्त, काफिरों के रक्त से कितना अलग—कितना भिन्न है!

और कितना उष्ण एवं कितना संहारक!

▭ ▭

आज सवेरे ही, जब ठाकुर चौपाल के बाहर, मचिया पर बैठे हुए दातुन कर रहे थे, केले बेचती हुई बेला उधर से ।

ठाकुर समझते थे कि वह उनके पास अवश्य आयेगी। बेला ने उधर देखा भी नहीं। हवेली के सामने से चलती आगे बढ़ गई। ठाकुर ने पुकारा भी, परन्तु उसने जैसे सुना ो नहीं।

अपनी उपेक्षा देखकर ठाकुर का क्रोध भीतर ही भीतर क उठा, परन्तु बाहर निकलने के पूर्व ही ठंडा पड़ गया।

जुगल के भय से वे कुछ कर सकने में असमर्थ थे। वे जानते कि जुगल वह चिगारी है, जो अब भड़के, तब भड़के।

नहीं तो क्या मजाल था कि बेला उनकी उपेक्षा कर चली ाती।

वे सरे-शाम उस घमण्डी छोकरी को लठैत द्वारा पकड़वा गवाते और तब उसकी सारी शेखी हवेली की दीवारों के घुट-घुटकर मर जाती। परन्तु ठाकुर को केवल जुगल का था।

जुगल नवयुवक था, पढ़ा-लिखा था, बेला का साथी था—ऐसी अवस्था में बेला को छेड़ना ज्वालामुखी के मुख पर हाथ रखना था।

दांत पीसकर रह गये ठाकुर। रामसरन लठैत पास ही खड़ा ठाकुर का दांत पीसना देख रहा था। वह पास आया।

बोला—'सरकार हुक्म हो तो आज शाम को···।'

'अभी नहीं, अभी नहीं···।' ठाकुर उसे चुप रहने का संकेत कर बोले—'बेला का ध्यान छोड़ो अभी···समय आने दो तो देखा जायेगा···मुंशीजी आये या नहीं?'

'आये हैं, सरकार! सुबह से ही आकर बहीखाता देख रहे हैं।'

'उन्हें यहां आने का मेरा हुक्म सुनाओ···।' कहकर उठे ठाकुर और चौपाल में आकर गद्दी पर बैठ गये।

रामसरन ने मुंशीजी को ठाकुर का हुक्म जाकर सुना दिया।

नाक पर चश्मा चढ़ाये मुंशीजी तुरन्त दौड़े हुए आये। झुककर अभिवादन किया उन्होंने।

'बड़कू खटीक पर कितने रुपये आते हैं, मुंशीजी?' ठाकुर ने पूछा।

'सरकार! तीन साल का लगान बाकी है···।' मुंशीजी तुरन्त बोले—'सत्रह रुपये नौ आने निकलते हैं···।'

'उसे अभी बुलाकर वसूल करो, न दे तो उसके बगीचे से अमरूद, केले और पपीते तोड़कर कुड़की कर लो। उन्हें बेचकर अपना रुपया खड़ा कर लो···।' ठाकुर ने कड़े स्वर में कहा।

'जो हुक्म सरकार!' मुंशीजी ने कहा।

बूढ़ा मुंशी इस आज्ञा के पीछे छिपी हुई भावना को ताड़ गया। वह अपनी कोठरी में आया। दो लठैतों को की पकड़ लाने की आज्ञा दी।

लठैत दौड़ पड़े। बड़कू हाथ जोड़े उपस्थित हुआ।

'का हुक्म मुंशीजी?' उसने दीनता भरे स्वर में पूछा।

'तीन साल का लगान बाकी है, बड़कू···! अभी चुकता करो।'

'लगान तो हर साल चुकता करता आया हूं, मुंशी सर

कार...! मैं गरीब आदमी हूं...तुम्हारे कलम की मार बरदाश्त नहीं कर सकूंगा, माई-बाप !'

'चुप रह बेईमान कहीं का !' मुंशीजी बिगड़ पड़े—'सीधे से सत्रह रुपये नौ आने लाता है या नहीं !'

'कहां से लाऊं बड़े मुंशी ! मुझे माफी दो, सरकार ! कागज और कलम से मेरी किस्मत न बिगाड़ो बाबू ! बिना मारे मर जाऊंगा राजा...! दुहाई है सरकार !'

'रामसरन ! यह मुझे बेईमान बताता है...इसकी अकल ठीक कर दो...।' मुंशी ने आज्ञा दी।

और हट्टे-कट्टे रामसरन ने बड़कू पर—बेला के बाप पर, लात-घूंसे बरसाना शुरू कर दिया।

निर्दोष बड़कू चिल्लाता रहा, चीखता रहा। परन्तु गांव के जमींदार-राज्य में उसकी तूती की आवाज कौन सुनता ?

एक घूंसा जबड़े पर जो बैठा, तो बूढ़े बड़कू के दो दांत टूट गये—मुंह खून से रंग गया।

'बस करो...।' मुंशीजी ने कहा—'दो लठैतों को भेजकर इसके बगीचे के सभी फल तोड़ लाओ...समझे रामसरन !'

'समझ गया सरकार !' बोला वह।

'ऐसा न करो, मेरे बाप ! मेरे को मत मारो...हम भूखों मर जायेंगे।' बड़कू गिड़गिड़ाकर बोला।

'तो एक काम करेगा...बोल ?' मुंशीजी ने कहा।

'करूंगा सरकार ! जो कहोगे करूंगा...बेगारी चाहो तो ले लो...एकाध टोकरी फल चाहो तो दे जाऊं घर पर, मगर मेरी रोजी न छीनो बाबू...!'

'मुझे कुछ नहीं चाहिये।'

'तो किसे चाहिये ?'

'ठाकुर को !' मुंशीजी ने कहा।

'तो उन्हीं को भेज दूंगा, मुंशी सरकार ! ठाकुर राजा के लिये मैं क्या ना-नुकर करूंगा...?' बड़कू ने कहा।

'आज शाम को एक टोकरी फल बेला के हाथ हवेली में भेज देना...।' मुख पर क्रूरतापूर्ण मुस्कराहट लाकर मुंशीजी। बड़कू जानता था कि भोली बेला के साथ, आ... फल भेजने का क्या परिणाम होगा ? वह कांप उठा। अपने

ऊपर वज्रपात होने का कारण वह समझ गया। बोला—'सब कुछ कर लो, सरकार ! मगर गरीब की इज्जत पर छुरी न चलाओ। तुम्हारे पास धन है, बल है···तुम हजारों की इज्जत बरबाद कर सकते हो, मगर मेरी एक वही इज्जत है, राजा ! उसे न लूटो···भीख मांगता हूं, मुंशी बाबू···!'

'यह ऐसे नहीं मानेगा, रामसरन ! इसे ले जाओ···दो लठैतों को इसके घर भेज दो···और तुम सरजू को लेकर जल्दी आओ।'

'सरजू को किसलिये बुला रहे हैं मुंशीजी ?

'जुगल के साथ रामपुर गांव में वसूली के लिए जाना है।' मुंशीजी ने कहा।

रामसरन बड़कू को घसीट कर बाहर ले चला।

थोड़ी देर बाद लौट आया। बोला—'कल्लू और बुल्ला को भेज दिया है बड़कू के साथ, मैं और सरजू रामपुर चलने के लिए एकदम तैयार हैं···।'

'मगर जुगल अभी तक आया नहीं···।' मुंशीजी ने कहा—'आज वही वसूली के लिए जायेगा। मैं तो काम में फंसा हूं, देखना लात-घूंसा बरसाने में फर्क न पड़े और वसूली खूब हो। लगान कम वसूल हो तो कोई बात नहीं, पर अपनी गांठ पूरी भरनी चाहिए, मेरा हिस्सा लाना न भूलना।'

'भला यह भी कहीं भूलने की बात है, सरकार···!'

'जुगल अभी नया है, सो तुम्हीं को सब काम सम्हालना है···।'

'आप बेफिकर रहें···।' कहकर रामसरन चला गया।

उसी समय जुगल आ गया।

मुंशीजी को देखकर उसके हृदय की घृणा जागृत हो उठी।

'आ गये, जुगल···! बड़ी देर कर दी भाई। जमींदारी का काम तड़के-तड़के ही होता है···। दिन चढ़ आने पर तो सब खेत-क्यारी में जा लगते हैं, फिर वसूली क्या होगी ?' मुंशीजी ने कहा और नाक पर लटका हुआ चश्मा उतार कर उन्होंने जुगल को एक बार देखा, फिर चश्मे को यथास्थान लगा लिया।

जुगल आकर तख्ते पर मुंशीजी से सटकर बैठ गया।

'क्या करना है मुझे ?' उसने पूछा।

'रामसरन और सरजू को लेकर रामपुर चले जाओ तुम...।' मुंशीजी ने कहा—'पास ही तो है, मुश्किल से पाव कोस होगा। यह लो बही, पर जितना रुपया मिले, उसकी रसीद किसी को भी मत देना...एक अलग कागज पर लिख लेना।'

'मगर रसीद तो देना ही पड़ेगा, मुंशीजी !' जुगल बोला।

'अरे नहीं भाई ! कोई तुमसे रसीद मांगेगा नहीं। हमारे यहां रसीद देने का नियम नहीं है। और देखो—वसूल-तहसील में संगदिली से काम लिया जाता है। पानी जैसे बहना नहीं होता, पत्थर जैसा कड़ा होना पड़ता है।'

'मैं समझ गया...सब-कुछ समझ गया मुंशीजी।'

कहकर जुगल बाहर आया। सरजू और रामसरन तैयार बैठे थे। बोले—'चलो...।'

आगे-आगे बही बगल में दबाये जुगल चला और पीछे-पीछे कन्धों पर लाठियां लटकाये रामसरन और सरजू चले।

रामपुर अधिक दूर नहीं था। शीघ्र ही पहुंच गये वे लोग।

गांव से अलग, एक मिट्टी का कमरा बना हुआ था जो किला कहलाता था। वसूली के लिये आये हुए जमींदार के कारिन्दे वहीं ठहरते थे और गांव के किसान वहां बुलाकर डराये-धमकाये जाते थे।

रामसरन ने ताला खोलकर जुगल को भीतर बैठाया और सरजू को लेकर किसानों को बुलाने चल पड़ा। थोड़ी ही देर में पचास-साठ कृषक वहां एकत्र हो गये। बूढ़े क्रूर मुंशी के स्थान पर सरल आकृति वाले युवक को बैठा देखकर, वे आपस में कानाफूसी करने लगे।

'कारिन्दा साहब अभी नये आये हैं...।' एक ने फुसफुसा कर कहा।

'देखने में तो बड़े अच्छे और सीधे लगते हैं...।' दूसरे ने कहा।

'अरे नहीं, आगे देखना...यह मुंशीजी का भी बाप निकलेगा...पहले-पहल जो भी आता है, वह सीधा ही दिखाई पड़ता है, मगर खून मुंह लग जाने पर वही भेड़िया बन जाता है...।' तीसरा बोला।

जुगल बही के पन्ने उलट रहा था।

'भरोसे किसका नाम है···?' उसने सिर उठाकर पूछा।

'मेरा सरकार···!' एक बूढ़ा किसान उठा। उसके हाथ में एक गठरी थी, जिसे लाकर उसने जुगल के तख्त पर रख दिया।

'यह क्या है···?' जुगल ने बूढ़े को देखते हुए प्रश्न किया।

'धरा भर आलू हैं सरकार!' बूढ़े ने कहा।

'यह क्यों लाये हो···?' कठोर स्वर में जुगल ने पूछा।

'आपके लिए हैं, सरकार···! दुहाई है, ज्यादा नहीं दे सकता, बाबू!' बूढ़ा गिड़गिड़ाता हुआ बोला।

रामसरन और सरजू हाथ में लट्ठ लिये खड़े थे। जुगल का रंग-ढंग उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था।

'उठा लो इस गठरी को···।' जुगल ने रोष भरे स्वर में कहा—'रुपये लाए हो?'

'लाया हूं, सरकार···!' बूढ़ा अपनी गांठ खोलने लगा—'ज्यादा जुटा नहीं सका···पांच हैं, बाकी फिर दे दूंगा, मालिक!'

जुगल ने बूढ़े से पांच रुपया लेकर बही पर चढ़ा लिया, यद्यपि मुंशीजी ने बही पर लिखने को मना किया था।

बूढ़ा आलू की गठरी चौकी पर छोड़कर जाने लगा।

'इसे लेते जाओ, भरोसे!'

'रख लो सरकार, गरीब की भेंट कबूल करो···।' भरोसे बोला।

'शर्म नहीं आती तुम्हें···!' जुगल कठोर स्वर में बोला—'अपनी गाढ़ी कमाई की पैदावार तुम मुफ्त में लुटाते-फिरते हो! भूखों मर जाओगे इस तरह, समझे···! ले जाओ इस गठरी को?'

बूढ़ा गठरी उठाकर एक ओर जा बैठा। रामसरन दांत पीसकर रह गया। सबके सामने जुगल को क्या कहता वह!

'बेचन किसका नाम है?' जुगल ने पूछा।'

'मैं हाजिर हूं, बाबू!' दूसरा किसान उठकर बोला।

जुगल के तख्त के सामने आकर उसने माथा झुकाया और उसके आगे चार रुपये रख दिये।

'बस चार ही···?' जुगल ने कहा—'तुम्हारे यहां तो बीस

बाकी हैं।'

'इन्तजाम नहीं कर सका, सरकार···ये रुपये आपके लिये हैं। इन्हें रख लो, मुझे माफी दो बाबू ! लगान जुटाकर जल्द दे दूंगा।'

सुनकर क्रोध से कांप उठा जुगल।

पिसते-पिसते ये कृषक इतने पिस गये हैं कि बिना मांगे घूस निकाल फेंकते हैं। शोषण ने इनकी शक्ति, इनका मस्तिष्क—सब-कुछ विकृत कर दिया है।

क्रोध में भरकर जुगल ने वे रुपये उस कृषक के ऊपर उठा कर फेंके। बेचारा किसान कांप कर, थरथरा कर रह गया।

'रुपये दिखाकर तुम मुझे कमीनेपन पर उतारना चाहते हो···।' गरजकर बोला जुगल—'इसी तरह तो तुम लोग विनाश के समीप आ पहुंचे हो···अपना रक्त-मांस बेचकर तुम दूसरों का घर भरना जानते हो—स्वयं तड़पोगे, बैल की तरह खेतों में जुते रहकर काम करोगे; पीठ पर जमींदारों के कोड़े सहोगे···और कुछ नहीं होगा तुम लोगों से।'

जुगल का क्रोध देखकर सब किसान उठ खड़े हुए, भयभीत होकर। उनके हृदय में जुगल के लिए श्रद्धा का भाव उमड़ पड़ा था।

सोचने लगे किसान कि उनके नये कारिन्दा साहब कितने नेक—कितने रहमदिल हैं !

मानवता और सहृदयता के प्रतीक उस युवक के आगे गरीब कृषक नतमस्तक हो खड़े रहे और जुगल कहता रहा—

'तुम्हारे संगठन का रेशा-रेशा टूट चला है, तुम इन्सान से पशु बना दिये गये हो, इसका तुम्हें कुछ भी ध्यान नहीं···अपनी डफली अपना राग अलापते हो तुम लोग। तुममें संगठन नहीं। संगठन के इसी अभाव ने ही तुम्हें दर-दर का भिखारी बना दिया है, तुम्हारे परिश्रम पर सेठ महाजन बड़ी-बड़ी कोठियों के मालिक बन बैठे हैं, तुम्हें असंगठित जानकर बड़ी-बड़ी तोंद वाले महाजन तुम पर जुल्म करते हैं, तुम्हारी गाढ़ी कमाई से पैदा किये हुए अन्न का भाव अपनी इच्छानुसार घटाते-बढ़ाते हैं और तुम अपनी पैदावार मिट्टी के मोल लुटाकर भेड़-बकरियों की तरह जुगाली किया करते हो···।'

'रुपये में दो सेर बिकने वाला अनाज, तुम महाजनों को दस सेर का देते हो और लगान देने के लिए, पेट भरने के लिए रोते-सिसकते हो···तुम अपने-आपको भूल गए हो। संसार में तुम्हारा अस्तित्व कितना महत्वपूर्ण है यह तुम नहीं जानते।'

'सरकार ! हम क्या करें ?' किसी बूढ़े ने पूछा।

'इसी तरह मरते रहो, और क्या···! जमीन तुम्हारी, फिर भी उस पर जमींदार का हक है। तुम उसे जोतते हो, बोते हो, मिट्टी के एक-एक टुकड़े को अपना पसीना बहाकर सींचते हो···फिर भी क्या उस जमीन को अपना कह सकते हो···? जमींदार जब चाहे तुम्हें ठोकर मारकर बेदखल कर सकता है···तुम अन्नदाता हो, लोगों को जीवित रखने के लिए अनाज पैदा करते हो, फिर भी भूखों मरते हो··· और कुछ न करने वाले सेठ महाजन और जमींदार, तुम्हारी कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं—तुम्हारे बच्चे सर्दी से ठिठुरते रहते हैं और उनके बच्चे लिहाफ के अन्दर दूध के कुल्ले करते हैं··· यह अनाचार तुम दिन-रात देखते हो मगर सर नहीं उठा सकते, विद्रोह नहीं कर सकते, अपने को लूटने वाले डाकुओं का कलेजा नहीं चीर सकते···कितने कातर हो तुम !'

'लगान देने के लिए तुम अपना अनाज सेठों के हाथ बेच देते हो—सोना देकर कागज के नोट पाकर तुम इतरा पड़ते हो। यह नहीं देखते कि तुम्हारी कितनी बड़ी जायदाद मिट्टी के मोल बिक गई है···सौ रुपये का माल दस रुपये में चला गया और वे दस रुपये भी लगान-स्वरूप जमींदार के हाथों में जा पड़े। मेहनत की तुमने और तुम्हें एक पैसा भी नहीं मिला। तुम ज्यों के त्यों रह गये··· शोषकों ने तुम्हारा रक्त चूस लिया और गाढ़े समय के लिए तुम्हारे पास कुछ भी न बचा। ब्याह-शादी के समय तुम्हें उधार लेना पड़ा। दस की जगह हजार महाजन ने ऐंठ लिया, कितनी दयनीय दशा है तुम्हारी ! अपने को समझो। अपने को पहचानो। अपने परिश्रम का मूल्यांकन करो। अपने को नीचे दायरे से ऊपर उठाओ··· संगठित होकर अनाज का भाव स्वयं निर्धारित करो···कीड़े-मकोड़ों की तरह अपनी जान मत दो···कुत्तों की तरह पूंजीपतियों का पैर गत चाटो।'

'आप हमारे मालिक हैं सरकार, आप ही रास्ता बतायें।

'बताऊं···?' जुगल ने कहा—'मगर तुम किसी को सरकार मत कहो···साम्यवाद के इस युग में अपने को इतना हेय मत समझो···जाओ, तुम्हें देर हो रही है, फिर कभी रास्ता बताऊंगा।'

हृदय में अपार हर्ष एवं उत्थान की भावना लिए, युगों के दलित वे कृषक जैसे अनमोल निधि पाकर घर की ओर चल पड़े।

जुगल करुणा की उन साकार मूर्तियों को जाते देखता रहा, उसे सन्तोष था कि उसने आज अपने मन की बात इन्हें सुना दी है और उनके अन्तर में विद्रोह का बीजारोपण कर दिया है। रामसरन तथा सरजू, दोनों लठैत अत्यन्त क्रोधित हो रहे थे भीतर ही भीतर। उनका वश चलता तो वे जुगल का सर तोड़ डालते अपनी लाठियों से।

और दिन जब वे बूढ़े मुंशीजी के साथ आते थे तो दस-बीस रुपये का सामान उन्हें मिल जाता था। ऊपर से दो-चार रुपये नकद, पर इस जुगल ने तो सारी आमदनी पर ही पानी फेर दिया।

'चलो, चला जाय···।' जुगल ने कहा।

'कुछ वसूल तो हुआ ही नहीं, पण्डितजी! सरकार क्या कहेंगे···?' रामसरन बोला।

जुगल उबलकर पड़ा—

'जब पास में है ही नहीं तो क्या मरकर व रुपये देंगे—चलो, ठाकुर को उत्तर दे लूंगा मैं···यह तुम्हारे सोचने की बात नहीं।'

लठैत और भी क्रोधित हो उठे, पर उसके सामने एक न चल सकी। चुपचाप उन्होंने किले का दरवाजा बन्द किया और जुगल के पीछे-पीछे चलने लगे।

मुन्शीजी अभी तक अपनी कोठरी में बैठे थे, यह आशा लगाये कि जुगल जो उनके रंग में पूरा रंग चुका है और पढ़ा-लिखा भी है, कम से कम दूनी रकम तो जरूर लाता होगा और उसमें से आधा तो उनका होगा ही।

'आ गये···?' मुन्शीजी ने जुगल की आवभगत करनी

आरम्भ कर दी, ताकि उनका हिस्सा भरपूर लगे। न अधिक तो आधा ही सही। कुछ न बोलकर जुगल ने उनके आगे बही रख दी—रख क्या दी, पटक दी और बाहर की ओर जाने लगा।

ढंग बुरे देखकर मुन्शीजी घबराये। पूछा—'कहां चले जुगल ?'

'अभी घर से होकर आ रहा हूं···।' कहता हुआ जुगल बाहर निकल गया। मुन्शीजी सोचने लगे कि यह छोकरा तो उनसे भी बढ़कर निकला। सारी जमा अकेले ही हड़प जाना चाहता है। इसलिए आते ही घर चला गया कि सारी रकम घर रख आये और थोड़ी-सी लाकर उन्हें दिखा दे।

मगर मुन्शीजी उसके चकमे में आने वाले हैं नहीं।

रामसरन को उन्होंने उसके साथ घास छीलने के लिए थोड़े भेजा था। जो कुछ मिला होगा, उसे पूरा-पूरा मालूम होगा।

'रामसरन···!' उन्होंने पुकारा।

'आया मुन्शीजी···!' रामसरन बाहर से बोला और तुरन्त भीतर दौड़ आया, मुन्शीजी से जुगल की शिकायत करने के लिए वह बेताब हो रहा था।

'कितना मिला, रामसरन··?' मुन्शीजी ने पूछा।

'सौ रुपये नगद, मुन्शीजी और···।' रामसरन ने व्यंग्य भरे स्वर में कहा—'और एक मन आलू, दो मन कटहल, तीन मन जौ, चार मन चना, पाच मन···।'

'बस-बस···।' मुन्शीजी हर्ष से उछल कर बोले—'बस करो···समझ गया—मैं तो जानता ही था कि जुगल पढ़ा-लिखा है, एक के बदले चार तो जरूर लायेगा···मेरा सोचना ठीक ही निकला !'

'अरे सरकार···!' रामसरन रूखे स्वर में बोला—'ठेंगा भी नहीं मिला है···।'

'क्या कहा··· ठेंगा।' मुन्शी जैसे पहाड़ पर चढ़ते-चढ़ते नीचे लुढ़क पड़े।

'एक धेला भी नहीं मिला, एक छदाम भी नहीं···।'

'क्या कहते हो रामसरन तुम···?' तैश में आकर बोले मुन्शीजी—'मुझे चरका मत दो। मैं कलम घिसते-घिसते बूढ़ा

हो चला। जानता हूं, जुगल ने तुम्हें भी पट्टी पढ़ा दी है···सारा माल-मता तुम लोग मार लेना चाहते हो···।'

'कुछ मिला हो तब न···! जवानी कसम! कुछ नहीं मिला सरकार!' स्वयं पर अपराध गिरता देख, नम्र बनकर बोला रामसरन।

मुन्शीजी एकाएक अत्यन्त गम्भीर हो गये। वे जानते थे कि रामसरन जब जवानी की कसम खाता है तो झूठ नहीं बोलता।

चुप रहकर बड़ी देर तक सोचते रहे। फिर पूछा मुन्शीजी ने—'क्या-क्या हुआ···सब मुझे खुलासा बताओ?'

'कुछ नहीं हो सका, मुन्शी राजा! इस जुगल ने सब गुड़-गोबर कर दिया।'

'क्या किया उसने? जल्दी बताओ।'

'किसानों को डाकेजनी सिखला रहा था—कह रहा था कि जमीन तुम्हारी है, तुम सेठों और जमींदारों को कुछ भी न दो।'

'मतलब···?'

'यही कि लगान और सूद वगैरह!'

'उसकी ऐसी की तैसी! वह कौन होता है किसानों को रोकने वाला?' मुन्शीजी कहते-कहते तख्त पर उकड़ू बैठ गये।

नाक पर से चश्मा उन्होंने उतारकर हाथ में ले लिया था, ताकि तैश में आ जाने पर वह छिटक कर नीचे न जा गिरे।

'असली लगान वसूल हुआ या नहीं?' उन्होंने पूछा।

'सिर्फ पांच रुपये।' रामसरन ने कहा।

'वह उल्लू का पट्ठा वहां न्योता खाने गया था···उसने मांगा क्यों नहीं? और तुम लोग खड़े-खड़े क्या करते रहे?'

'हम लोग खड़े-खड़े मुंह ताकते रहे सरकार!'

'किसका मुंह···? अपना?'

'नहीं जुगल पण्डित का।'

'और जुगल का मुंह क्या कर रहा था? क्या जुगाली कर रहा था?'

'नहीं, सरकार, आग उगल रहा था···।' रामसरन ने कहा।

'आग उगल रहा था?' क्रोध में आकर मुन्शीजी ने सामने

की सन्दूक पर धम्म से एक मुक्का मारा और बोले—'उस आग को मैं एक फूंक में बुझा दूंगा। तुम मुझे अभी बताओ, रामसरन! वह क्या कह रहा था, क्या बक-बक कर रहा था···?'

'वे किसानों को ठाकुर से लड़ने के लिए उभार रहे थे··· कह रहे थे कि अपना रक्त-मांस बेचकर तुम दूसरों का घर भरना जानते हो—स्वयं तड़पोगे, जमींदार के कोड़े सहोगे, बैल की तरह खेतों में काम करोगे।'

'ऐसा कहा उसने! यह जुगल तो रजाई में का सांप निकला। किसानों के कान भर रहा था! कल का छोकरा, आज मालिक और प्रजा में विद्रोह की आग भर देना चाहता है। अच्छा, आगे कहो।'

'कहते थे कि जमींदारी उखाड़ फेंको, सेठों के हाथ अनाज मत बेचो। जमीन तुम्हारी है···इसका एक-एक ढेला तुम्हारे खून से सींचा हुआ है।'

'उनके नहीं तो क्या उसके बाप के खून से सींचा हुआ है···? बाप रे बाप! पुरोहित देखने में उजली गाय जैसे और उनका बेटा काला नाग! मैं उसके दांत तोड़ दूंगा रामसरन, तुम घबराओ मत।'

'हमें तो सरकार बस, आप ही का सहारा है।'

'देख लिया न, आजकल के पढ़े-लिखे लौंडों को···? इन सारे स्कूल और कालेजों को तो दिन में ही आग लगा देनी चाहिए···इनमें पढ़ाई क्या होती, छोकरों को जबान की तलवार चलाना सिखाया जाता है।'

'मुझको भी बुरा-भला कहा था सरकार···!' रामसरन ने कहा।

'उसकी क्या मजाल है कि तुम्हें आंख दिखाये···? उसने तुमको क्या बुरा-भला कहा···क्या तुम उसके बाप के नौकर हो···?'

'तभी तो सरकार···! तभी तो डांट-डाटकर चुप करा दिया, नहीं तो मारे डण्डों के एक से दस वसूल कर लाता···।'

'वह तुम पर क्यों बिगड़ा?'

'मैंने कहा कि वसूली तो कुछ हुई ही नहीं, ठाकुर राजा बिगड़ेंगे। बस, इसी पर आंखें लाल-पीली कर लीं···।' कहकर

रामसरन ने घूरकर मुन्शीजी को अपनी आंखों का भाव दिखाया।

तड़पकर बोले मुन्शीजी—'ठहरो, रामसरन ! जरा ठहरो, मुझे बहुत जोरों से तैश आ रहा है.....हां ! जरा फिर तो दिखाओ कैसे किया था लाल ?' रामसरन ने पुनः घूरकर मुन्शीजी को देखा।

'अच्छा मैं समझ गया, सब समझ गया...हां तो केवल आंखें ही लाल-पीली करके दिखाया था या उसने कुछ कहा भी था ?'

'बहुत-कुछ कहा था सरकार ! बिगड़े थे—काट खाने को दौड़ पड़े...एकदम कुत्ते की तरह ! जी हां, ठीक कुत्ते की तरह भौंकने लगे—पास मे पैसा नहीं है तो क्या किसान मरकर लगान देंगे ?'

'बस करो रामसरन...! ठाकुर हैं ?'

'जी हां, चौपाल में बैठे हैं...।' रामसरन ने कहा।

'अभी चलता हूं...कहूंगा कि यह तो पण्डित का बेटा नहीं किसी...जाने दो गाली निकलती है मुंह से...।'

मुन्शीजी ने हाथ में पकड़ा हुआ चश्मा नाक पर रख लिया और उसमें लगी हुई डोर को खींचकर कान से बांध लिया।

'चलो रामसरन, तुम भी चलो साथ ! रहोगे तो मुझे सम्भालोगे.... कहीं तैश में आकर मुझे मिर्गी का दौरा न आ जाये...।'

'आपका यह रोग कभी छूटेगा नहीं मुन्शी जी ..?'

'मिर्गी का रोग जान के साथ ही जाता है, रामसरन...! मगर अभी मेरी जान जायेगी नहीं, समझे ! बदन कांप रहा है, शायद मिर्गी आने वाली है...।'

'मैं सम्भाल लूंगा सरकार !' बोला रामसरन।

'देखो रामसरन ! ज्योंही मुझे मिर्गी का दौरा हो, तुम अपने पैर का जूता निकालकर मेरी नाक पर रगड़ने लगना...।'

'ऐसा रगड़ूंगा सरकार कि उसकी गमक सीधी कलेजे तक उतर जायेगी...आप निसाखातिर रहें।'

'मुझे ले चलो ठाकुर के पास।'

मुन्शीजी को पकड़कर रामसरन उन्हें ठाकुर के पास ले चला।

ठाकुर गद्दी पर बैठे थे। मुन्शीजी को देखकर बोले—'यह क्या मुन्शीजी···? यह क्या रामसरन?'

'कुछ नहीं सरकार! मुन्शीजी को मिर्गी आ रही है···।' रामसरन ने कहा—'ये आपसे कुछ कहना चाहते हैं।'

मुन्शी आकर ठाकुर के सामने बैठ गए।

बोले—'सरकार यह जुगल तो पूरा नमक-हराम निकला।'

'क्या कहते हो मुन्शीजी! वह तो बी० ए० पास है···।' ठाकुर आश्चर्य में भरकर बोले।

'तभी तो सरकार! वह आपकी जड़ खोदने पर उतर आया है। आज वसूली के लिए उसे रामपुर भेजा था—सो वहां से एक पैसा भी नहीं मिला···।'

'क्या बकते हो···!' ठाकुर का क्रोध एकबारगी उबल पड़ा—'किसानों की इतनी जुर्रत कि वे लगान न दें···।'

'किसानों का क्या कसूर राजा···?' मुन्शी ने कहा—'सारी खुराफात तो इस जुगल की है। वह किसानों को आपके खिलाफ उभार रहा था···कहता था जमीन तुम्हारी है, ठाकुर को लगान मत दो, यह करो, वह करो···।'

कहते कहते मुन्शीजी जमीन पर लेट गये। रामसरन उन पर झुक गया। पैर से जूता निकालकर उनकी नाक पर रगड़ने लगा। बेचारे मुन्शीजी का शरीर पत्ते की तरह कांप रहा था और मरते सांप की तरह ऐंठ रहा था।

वे सांप ही थे—ऐसे सांप, जिसके काटने की कोई दवा नहीं।

'यह क्या कर रहे हो, रामसरन?' ठाकुर ने पूछा।

'यह मिर्गी का दौरा है सरकार! बिना जूते के इन्हें होश नहीं आयेगा···यही दवा है इसकी! न जोग न टोटका, बस सीधा जूता रख दे नाक पर और मर्गी गायब!'

'इन्हें इनकी कोठरी में ले जाओ।' ठाकुर ने आज्ञा दी।

धड़ पकड़कर रामसरन ने मुन्शीजी को उठाया और चौपाल से बाहर चला गया।

ठाकुर उठकर चौपाल में टहलने लगे। जुगल की गतिविधि

ने उन्हें भयभीत कर दिया था। लग रहा था, जैसे उस विद्रोही जुगल के मुखमण्डल पर राहू का उदय हो रहा हो।

जाने कब तक ठाकुर का सुख-चैन निगल ले ! जाने कब किसानों में बगावत का मन्त्र फूंककर उन्हें खून करने पर उतारू कर दे ! जाने कब किसानों के विद्रोही हाथ उनका गला टीप दें, हवेली पर अधिकार जमा लें, मुफ्त में लूट लें।

सोचते-सोचते उनके शरीर का रोआं-रोआं प्रकम्पित होकर खड़ा हो गया।

वे टहलते रहे—सोचते रहे—सोचते रहे—टहलते रहे।

इस विनाशकारी सांप के बच्चे को केंचुल छोड़ने के पहले ही लाठी से मार डालना है, ताकि भय जाता रहे।

'सरजू !' ठाकुर ने लठैत को पुकारा।

'आया सरकार···!' सरजू दौड़ा आया।

'जुगल कहां है···?' ठाकुर ने पूछा।

'अभी-अभी घर से आये हैं, सरकार···! मुन्शीजी के कमरे में हैं···।' सरजू ने कहा।

'उसे बुलाओ—अभी बुलाओ···।' ठाकुर ने क्रोधावेश में आज्ञा दी।

सरजू जाकर जुगल को बुला लाया।

जुगल—निर्भीक जुगल दृढ़तापूर्वक उनके सामने आ खड़ा हुआ। वह जानता था कि ठाकुर ने उसे क्यों बुलाया है···? वह ठाकुर की प्रत्येक बात का उत्तर देने को प्रस्तुत था।

'यह मैं क्या सुन रहा हूं, जुगल पण्डित ?' ठाकुर क्रुद्ध स्वर में बोले—'आज रामपुर से कुछ वसूल क्यों नहीं हुआ ?'

'किसानों के पास रुपये नहीं थे—वे आपको लगान कहां से देते ?'

'यह तुम जवाब दे रहे हो···या किसानों की इतनी हिम्मत बढ़ गई है कि उन्होंने यह बात कही···?'

'यह मेरा जवाब है, न कि उनका···।' जुगल ने कहा—'यह उनकी दयनीय परिस्थिति की तस्वीर है··· जुल्म शक्तिशालियों पर किया जाता है, तड़पते और मरते हुए लोगों पर नहीं, पैसे-पैसे के लिये मुहताज गरीबों पर नहीं !'

'जुगल पण्डित···!' गरजकर बोले ठाकुर—'तुम्हें मालूम है कि तुम किससे बातें कर रहे हो ? मेरी शान पर कीचड़ मत उछालो तुम···? मैं अभी तुमको नौकरी से बरखास्त करता हूं····।'

'मैं ऐसी नौकरी पर लात मारता हूं, ठाकुर साहब ! थोड़े-से रुपयों के लिये अपनी आत्मा आपके पास गिरवी नहीं रख सकता।'

और क्रोध से पैर पटकता हुआ जुगल बाहर निकल गया। ठाकुर खड़े देखते रह गये।

४

बेला का छोटा-सा बगीचा आज उजाड़ हो गया है।

अमरूद और केले के पेड़ तो ज्यों के त्यों खड़े हैं, परन्तु उनका सारा फल ठाकुर के लठैतों ने चुन-चुन कर तोड़ लिया है।

बेला के हृदय पर जैसे वज्रपात हो गया था।

अब उसका पेट किस प्रकार भरेगा, यह चिन्ता उसे खाने लगी।

बड़कू तो अपना सारा धन लुटाकर जैसे पागल हो गया है और चुपचाप वेदना से पीड़ित होकर तीसरे पहर से ही चारपाई पर लेटा है। बुखार चढ़ आया है जोरों का—और बेला अमरूद के एक पेड़ के नीचे मिट्टी के ढूहे पर बैठी चिन्ता में निमग्न है।

ठाकुर का उसने क्या बिगाड़ा था जो उसने उसका सर्वस्व उजाड़ दिया। उनके पास इतने पैसे हैं कि वे गांव भर के गरीबों को बैठाकर खिला सकते हैं, फिर उन्होंने मुझ गरीब की रोजी क्यों छीन ली?

यही समझ में नहीं आ रहा है बेला को। कल की अबोध बालिका, आज सयानी होकर भी अबोध ही बनी है। नहीं जानती वह कि उसके अल्हड़ शरीर में यौवन का खून छलकने लगा है, गोरे-गोरे शरीर पर जवानी की मादकता छिटक उठी है।

वह तो अपने को अभी जान ही नहीं पाई है। कभी शीशे में अपना मुख भी नहीं देख सकी है वह, कि कुछ समझे...तब की बेला की कली अब खिलकर फूल बन गई है और उसकी पंखड़ियों से मादक सुगन्ध प्रसारित हो रही है, इससे अनजान है वह!

तो कैसे समझे वह कि उसके ही कारण ठाकुर ने इतने बड़े षड्यन्त्र की रचना की है। उसका यौवन और सौन्दर्य ही इस विपत्ति के लिए उत्तरदायी है।

पेड़ के नीचे बैठी हुई वह अमरूद के पतले तने से आ लिपटी—जैसे सब-कुछ लुटाकर खड़े हुए उस पेड़ से उसकी

…सहानुभूति हो गई है।

'बेला…!' किसी ने पुकारा। बेला प्रसन्न होकर उठ बैठी। पुकारने वाले का स्वर वह अच्छी तरह पहचानती थी। बोली—'मैं यहां हूं, जुगल भैया…! इधर, अमरूद के नीचे…।'

जुगल उसके पास लपकता हुआ आया। बेला उठ खड़ी हुई। जुगल ने उसका हाथ पकड़ लिया और झकझोर दिया जोरों से।

'इतने अन्धेरे में छिपकर बैठी है…खोजते-खोजते परेशान हो गया मैं।' बोला वह।

अपनत्व का स्पर्श पाकर, बेला की डूबती-डूबती व्यथा ऊपर आकर तैरने लगी। हिचकियां लेने लगी वह। गालों पर आंखों का पानी बह चला।

'यह क्या रे…? रोती क्यों है…? बात क्या है?' जुगल ने पूछा।

'मैं—मेरा बगीचा जुगल भैया!' कहते-कहते बेला दीवानी-सी जुगल की सपाट छाती पर लुढ़क पड़ी। जुगल ने उसे सम्भाल लिया। बोला—'रो क्यों रही है तू…? हुआ क्या है?'

जुगल उसका सिर सहलाने लगा।

'बगीचे के पेड़ों को देखो, जुगल भैया…!' सिसकियां लेती हुई बोली बेला।

'देख लिया…सब तो ज्यों का त्यों है।'

'मगर फलों को तो देखो, एक भी नहीं बचा है…सब…'

'क्या हो गये सब…? बता न…?'

'ठाकुर ने तुड़वा मंगवाये, जुगल भैया!' बेला ने कहा।

'क्यों…?' जुगल ने पूछा।

'मैं क्या जानूं…? बापू भी रो-पीटकर बुखार में बेसुध पड़े हैं…।'

जुगल आश्चर्यपूर्ण मुद्रा में सोचने लगा। सहसा ही 'हूं' की गम्भीर आवाज मुख से निकली…शायद उस अनुभवी युवक ने इसका कारण जान लिया था, अनुमान लगा लिया था।

'ठाकुर के पर निकल रहे है, बेला…!' बोला वह—चुप

हो जा तू ''मरने से पहले चींटी के भी पर निकलते हैं'''चल ! जरा बड़कू काका को देख लूं।'

बड़कू चारपाई पर कथरी ओढ़े पड़ा था। जूड़ी-बुखार अगम शीत एवं कंपन लेकर आया था।

'बड़कू काका !' जुगल ने पुकारा।

'कौन ''? जुगल पण्डित'''?' बड़कू ने मुंह खोलकर कहा—'आओ बचवा'''! यही जरा बुखार है। तुलसी की पत्ती और काली मिर्च पीसकर पी लिया है। सवेरे तक ठीक हो जायेगा।'

जुगल ने आगे बढ़कर बड़कू की नाड़ी देखी। बदन तप रहा था, जैसे आग ! बोला वह—'शीत से बचे रहना काका ! नहीं तो निमोनिया हो जायेगा'''और कुछ खाना भी मत !'

'अरे बचवा ! निमोना-फिमोना बड़े आदमियों को होता है—हमें तो मौत भी नहीं पूछती''' देखो न, ठाकुर ने हमें तबाही में डाल दिया है।'

'मैं सुन चुका हूं सब ! तुम चुप रहो, बड़कू काका'''! बेला को लेकर मैं जा रहा हूं, इसके हाथ थोड़ी-सी कुनैन भेज दूंगा, उसे खा लेना।'

'अरे इतनी तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं, बचवा !' बड़कू बोला—'मर ही जाने दो मुझे, छुट्टी तो मिल जायेगी इस नरक की जिन्दगी से !'

'कैसी बातें करते हो बापू तुम !' कहकर रोने लगी बेला।

'चल बेला, मेरे साथ चल !' कहा जुगल ने और झोंपड़ी के बाहर निकल पड़ा। बेला ने भी उसका अनुसरण किया।

घर पहुंचकर जुगल ने देखा कि उसके पिता छोटी-सी लालटेन को आगे रखकर रामायण की पोथी बांच रहे है।

'आ गये जुगल ?'

इतने में ही उनकी दृष्टि बेला पर पड़ी।

भौंहें तनकर रह गईं। बोल न सके कुछ।

'पालागी पण्डित काका !' बेला ने अभिवादन किया।

पुरोहित मन-ही-मन कुछ भुनभुनाकर रह गये। खुलकर आशीर्वाद भी न दे सके।

'आ बेला।' जुगल ने कहा—'भीतर आ !'

'इसे भीतर क्यों ले जा रहे हो ?' पुरोहित ने रूखे स्वर में पूछा। एक अछूत बाला का ब्राह्मण के पवित्र घर में प्रवेश करना, वे कब सहन कर सकते थे !

'पिताजी !' जुगल बोला—'इसके बाप को बुखार चढ़ आया है···थोड़ी-कुनैन देनी है।'

'तो इसे बाहर खड़ी रहने दो और लाकर दे दो।'

'बहुत अच्छा···।' बोला जुगल—'तू यहीं खड़ी रह बेला ! मैं अभी आया···।' कहता हुआ जुगल घर के भीतर चला गया।

कुनैन की दो टिकियां लेकर वह थोड़ी ही देर में बाहर आ गया।

बेला के हाथों पर रखकर बोला—'इन्हें अभी जाकर दे देना, थोड़ा दूध मिल जाये तो पिला देना। खाना हर्गिज मत देना।'

बेला कुछ बोली नहीं। हाथ में कुनैन की टिकियां लिए हुए घर की ओर चल पड़ी। सोचती जा रही थी वह, एक दूसरी ही बात—पुरोहित ने उसे अपने घर में घुसने क्यों नहीं दिया ?

जुगल भैया तो उसके घर में बराबर आते-जाते रहते हैं, तो वह क्यों जुगल के घर में आ-जा नहीं सकती ?

क्या उसमें और जुगल में कोई अन्तर है ?

या उसके घर और जुगल के घर में फर्क है ?

यही हो सकता है। उसका घर सदा कूड़ाखाना बना रहता है और जुगल का घर लिपा-पुता साफ रहता है—शायद इसीलिए पण्डित काका उसे अपने घर में घुसने नहीं देते।

मगर···! मगर अपने कुएं पर भी तो वे उसे चढने नहीं देते।

'तो वह अछूत है।' उसने मन को संतोष दिया पर पण्डित अपने को इतना ऊंचा क्यों समझते हैं ? कुछ भी बेला की समझ में नहीं आ रहा था—और वह धीरे-धीरे घर की ओर बढ़ी जा रही थी। मस्तिष्क में विचारों का अनवरत उथल-पुथल हो रहा था।

उधर बेला को कुनैन की टिकियां देकर, जुगल पुरोहित के पास आ बैठा। पुरोहित ने रामायण बन्द कर दी और आंखें

तरेर कर जुगल की ओर देखा।

'अब तक बेला के पास ही था क्या ?' उन्होंने पूछा।

'हां पिताजी !'

'क्या कर रहे थे वहां ?'

'बेला के बाप को बुखार हो आया है न !'

''वह तो मैं सुन चुका।' पुरोहित तीव्र स्वर में बोले—'तुम कर क्या रहे थे ?'

'बड़कू काका को देखने चला गया था, पिताजी !'

'और कोई देखने वाला न था उसे ?'

'विपत्ति में एक-दूसरे की सहायता करना धर्म है पिताजी, जुगल ने साहस संवरण कर कह दिया।

'अपने धर्म की बात मैं खूब जानता हूं··· तुम तो विधर्मी हो गये हो, तुम क्या जानो यह सब बातें !'

'विधर्मी कैसे हूं, पिताजी ?'

'ब्राह्मण के बेटे होकर अछूतों की सेवा करते हो—क्या यही तुम्हारा धर्म है ?'

'यह सब धर्मों से श्रेष्ठ—मानव-धर्म है, पिताजी !'

'एक तुम्हीं तो मानव हो इस गांव में···और सब पशु हैं, गधे हैं।' कहते-कहते पुरोहित कांपने लगे।

'आप तो व्यर्थ ही क्रोधित हो जाते हैं।' जुगल ने कहा—'जिसकी कोई सहायता करने वाला न हो, उसी की तो सहायता की जाती है···आज ठाकुर ने बड़कू के बगीचे के सारे फल तुड़वा लिए।'

'क्यों···?'

'पता नहीं।' जुगल बोला—'कोई खार रहा होगा··· बेचारे की रोजी चली गई।'

'मगर तुम ठाकुर के इतने विरुद्ध क्यों रहते हो, जुगल ? ठाकुर से तुम्हारी कोई शत्रुता नहीं, कोई वैमनस्य नहीं। वह तो तुम्हारी भलाई ही करते हैं।'

'दुनिया में केवल अपनी ही भलाई ही नहीं देखी जाती, पिताजी ! लाखों-करोड़ों दीन-दुखिया हैं। जो उनकी भलाई करे, वही भला है।'

'तो ठाकुर कहां किसका गला काटते हैं ?'

'आप सीधे हैं, पिताजी !' जुगल ने कहा—'कहां क्या हो रहा है, यह तो आप जानते ही नहीं···तभी ठाकुर का पक्ष लेते हैं।'

'तुम क्या जानते हो ?' पुरोहित ने पूछा।

'मैं एक ही दिन में ठाकुर की सारी कारस्तानी जान गया हूं।' जुगल ने उत्तर दिया—'गरीबों को दस उधार देकर सौ वसूल करते हैं। न देने पर जमीन-जायदाद से बेदखल कर लेते हैं। लोगों की बहू-बेटियों की इज्जत उतारते हैं। किसानों की सारी कमाई ठाकुर के ही पेट में तो जाती है।'

'यह कभी नहीं हो सकता, जुगल ! ठाकुर इतने निकृष्ट कभी नहीं हो सकते।' पुरोहित बोले।

'बड़कू खटीक पर जो कोप किया है उन्होंने, उसका कारण जानते हैं आप ?'

'नहीं !' पुरोहित बोले। इस 'नहीं' में आगे सुनने की उत्सुकता थी।

'बेला को वे चाहते हैं।' जुगल ने वास्तविकता की ओर संकेत किया।

'बेला को सभी चाहते हैं। मगर वह अछूत है, उसे सर पर तो बैठाया नहीं जा सकता।'

'आप समझे नहीं, पिताजी !'

'चुप रहो जुगल, तुम ! ठाकुर इतना आगे नहीं बढ़ सकते।'

'यह सच है, पिताजी ! इससे भी अधिक नीच हैं वे। मुन्शी जी ने मुझे सब बताया है। वासना का खिलवाड़ प्रतिदिन हवेली में हुआ करता है। उनकी नौकरी मैं छोड़ आया हूं।'

'तुम तो अपने मन के हो गए हो, जो मन आये करो—तुम्हें रोक ही कौन सकता है। हरे राम, हरे राम।'

कहकर पुरोहित फिर रामायण खोलकर पढ़ने लगे—

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

जुगल वहां से हटकर अपनी चारपाई पर आ बैठा।

सोचने लगा वह—तुलसीदास भी ब्राह्मण थे और उनमें ब्राह्मण का 'अहं' कूट-कूटकर भरा हुआ था। उनके कवित्व की

को सराहना की जाय वह थोड़ी है, परन्तु उनके विचार, परिष्कृत समाज के लिए अभिशाप-स्वरूप हैं।

वे रूढ़िवादी कवि थे। वर्गभेद, छूआछूत की भावनायें उन्हें छोड़ न सकी थीं। प्रगतिवाद के वे शत्रु थे।

वह कवि ही कैसा, जिसमें उत्थान की भावना न हो।

आज हमें धार्मिक प्रेरणा नहीं विद्रोह की भावना चाहिये। धर्म के लिए कोई स्थान नहीं हमारे बीच। मानवता के परे धर्म का अस्तित्व ही क्या, मूल्य ही क्या!

वह विद्रोही युवक बड़ी देर तक, मन ही-मन तुलसीदास की आलोचना करता रहा। उसकी दृष्टि में ऐसे रूढ़िवादी कवि, जनता के घोर शत्रु हैं। साहित्य तो वह है जो इन्सान को प्रगतिशील बनाये—वह साहित्य क्या, जो जनता-जनार्दन की आंखें बन्द कर, उसे कुएं में धकेल दे।

जुगल को लगा, जैसे तुलसीदास ने अपनी कवित्व-शक्ति का सदुपयोग नहीं किया। राम की भक्ति में पागल बन गए और भूल बैठे कि हर आदमी उनके जैसा तपस्वी नहीं हो सकता।

और जब उतना त्याग, उतनी तपस्या नहीं आ सकती मानव में तो केवल राम का नाम लेकर वह तर नहीं सकता। अन्धों की यह ढाल जुगल को पसन्द नहीं। वह शक्ति का उपासक है।

अंग-अंग में वह शक्ति का सन्तुलन देखना चाहता है—वह दिखाना चाहता है कि शक्ति ही इन्सान की प्रेरणा को सफलता प्रदान करती है। अशक्त व्यक्तियों को इस संसार में जीने का कोई अधिकार नहीं।

राम का गुण गाने वाले, राम के परम भक्त तुलसीदास भूल गए कि उनके राम ने पतिता अहिल्या का उद्धार किया, बाली जैसे परस्त्रीगामी को चरणरज देकर सुमार्ग पर चलने का उपदेश दिया, विभीषण जैसे राक्षस-कुलोत्पन्न को गले से लगाया। उनके राम नीचों, पतितों एवं पापियों का उद्धार करने वाले थे—और उन्हीं राम के परम भक्त सन्त तुलसीदास, नीचों से दूर रहने का उपदेश देते हैं, उन्हें ताड़ना के अधिकारी बताते हैं।

जवानी में नारी का पैर चूमने वाले तुलसीदास लिखते हैं—

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

आज की दुनिया, आज का समाज लुके-छिपे प्रेम को घृणा की दृष्टि से देखता है—परन्तु तुलसीदास के राम उद्यान में सीता को देखकर अपनी सुध-बुध भूल बैठे थे। तभी तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा था—

तासु बिलोकि अलौकिक शोभा।
परम पुनीत मोर मन लोभा ॥

वही राम ! जिनकी पत्नी सीता ने पति के चरणों का अनुसरण कर जंगल-जंगल भटकना स्वीकार किया था—कितने दुःख सहे थे—कितनी यातनायें झेली थीं—एक मामूली धोबी की कही बातों में आकर, उन्होंने उस साध्वी सीता का परित्याग कर दिया। प्रजा की सेवा का भाव उनके सामने था। परन्तु पति का कर्तव्य शायद वे भूल गए थे।

'जुगल···! सो गए क्या?' पुरोहित ने पास आकर पुकारा।

चिन्तनशील विद्रोही युवक की विचारधारा भंग हो गई।

उठकर बोला—'आप भी तो सोये नहीं, पिताजी !'

'तूने खाया नहीं था, इसलिए जाग रहा था···चल उठ भोजन कर ले।'

पिता के पीछे-पीछे जुगल चौके में आया।

'जरा उधर ही रहो—तुमने बेला को छुआ है।'

जुगल तनिक पीछे हटकर बैठ गया। पुरोहित भोजन परोसने लगे।

थाली अपने सामने खींच जुगल खाने लगा।

पुरोहित दूसरी थाली परोसकर खाने लगे।

पिता और पुत्र जब भोजन कर चुके तो अपनी-अपनी चारपाई पर जा लेटे। थोड़ी देर तक हरे राम, राम राम हरे हरे जपने के बाद पुरोहित तो सो गए, परन्तु हृदय में अगणित विचार लिए जुगल आधी रात तक जागता रहा। फिर सोया—तो खूब सोया।

दिन चढ़ आने पर सूरज की एक तिरछी किरण, जब उसके शरीर पर लोट-पोट कर उसे जगाने लगी, तब वह उठा। पुरोहित बहुत पहले ही उठ चुके थे और स्नान-ध्यान कर मिर्जई पहन रहे थे।

'कहीं जा रहे हैं क्या पिताजी ?' जुगल ने पूछा।

'हां, तनिक हवेली तक जाऊंगा।' कहकर पुरोहित चमरौधा जूता पहनने लगे—'तुम तब तक स्नान आदि कर लो··· मैं थोड़ी देर में आता हूं।'

बाहर निकल पुरोहित टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी पर चल पड़े। रास्ते में आते-जाते ग्रामीण उनसे पालागी करते रहे और वे उन्हें दीर्घायु होने का आशीर्वाद देते हुए चलते रहे।

दीनू का घर सामने ही था। वह खटोले पर बैठा हुआ, नारियल के हुक्के पर चिलम चढ़ाकर तमाखू पी रहा था।

पण्डितजी को आते देखा उसने तो उठ खड़ा हुआ। उनके सामने आकर जोर से बोला—'पालागी महाराज !

'जीते रहो दीनू !' पुरोहित ने कहा—'कहो, अच्छे तो हो जजमान ?'

'दया है पण्डितजी ! आज कैसे दिखाई पड़ गए सबेरे-सबेरे ? ठाकुर के यहां का बुलावा है क्या ?'

'बुलावा तो नहीं है।' पुरोहित बोले—'कुछ अपने ही काम से जा रहा था, कहो काम-धन्धे का क्या हाल है ?'

'धन्धे की मत पूछो, पण्डितजी। मर-मरकर कमा रहा हूं, फिर भी खाने को नहीं मिलता···महाजन का पेट सूद से भरता नहीं···ऊपर से ठाकुर के बीस रुपये निकलते हैं। इस साल नहीं दिया गया तो परसाल बीस के दो सौ हो जायेंगे, महाराज।' दीनू ने अपना दुखड़ा रोते हुए कहा।

'दुख न करो, जजमान ! गंवई-गिरांव की बात ठहरी—किसी तरह गुजर-बसर करना ही पड़ेगा।' पुरोहित ऐसे बोले जैसे जले घाव पर मरहम लगाना चाहते हों।

'अरे पण्डित जी !' दीनू ने कहा, 'गंवाई-गिरांव है तभी तो इतनी तंगिश और लूट-खसोट है। शहर का मामिला होता तो पुलिस के डर से ये महाजन और ठाकुर भी कुत्ते की तरह कांपते। यहां तो सुराज हो गया है, चाहे जो कुछ करें।'

'शहर में, गांव में, दोनों जगह सुराज हो गया है अब, दीनू।'

'शहर के और गांव के सुराज में बहुत फरक है, महाराज ! वहां इतनी लूट-खसोट नहीं है। शेर और बकरी एक घाट पर

पानी पी रहे हैं···यहां तो बकरियों को मारकर खा जाने वाले शेर हैं, कोई उन्हें कोड़े लगाने वाला नहीं···'

'बिटिया तो तुम्हारी मजे में है न, दीनू !' पूछा पुरोहित ने।

'रमकलिया की बात पूछते हो, पण्डित—!' दीनू बोला—'वह भी इस गांव में रहते-रहते ऊब गयी है। आज कहती थी कि मुझे घर भेज दो···'

'कहां ब्याही है वह !'

'यहीं सरपतवा में तो···सयानी बिटिया का अपन घर ही रहना अच्छा है पण्डितजी। मगर सोचता हूं उसके चले जाने पर एक लोटा पानी कौन देगा? अकेले सारी झंझट मुझसे उठायी भी तो नहीं जाती, महराज ! ले-देकर यही रमकलिया तो है।'

'इस साल खेत में क्या-क्या बोया है तुमने ?'

'एक कट्ठा गोभी है और यही सात-आठ बिस्से आलू हैं, पण्डितजी। भगवान ने दिया, तो रिन-उधार कट जायेगा···न दिया तो भाग में किटकिट तो बदा ही है।'

'राम-राम कहो, दीनू भगत ! बेड़ा पार हो जायेगा।'

'राम का ही तो आसरा है, पण्डितजी ! सोचा था एकाध पसेरी पंजरा बनाकर एक दिन सतनरायण बाबा की कथा ही सुन लूं—दुःख-दरापत तो दूर हो जायेगा···मगर, न नौ मन तेल जुटिहै न गौना जइहै—वाला हाल है मेरा।

'खैर ! फिर कभी सुन लेना कथा···हृदय में भक्ति रहेगी, तो मंशा पूरी होगी ही···समझे न जजमान ! दुःख तो हमेशा रहता नहीं न !'

'हम तो पचास बरस से गांव वालों को दुःख में ही देख रहे हैं, पण्डितजी ! तब के जो छोकरे थे, आज बूढ़े बन बैठे हैं। तब धूल-माटी में खेलते थे और अब कमाने-खाने के पीछे रोते हैं, यह भी कोई सुख है !'

'अच्छा चलूं भगत। देर हो जायेगी तो ठाकुर चौपाल से उठ जायेंगे।' पुरोहित ने कहा।

'अच्छा, पालागी महाराज !'

'चिरंजीव !' कहकर पुरोहित पुनः चलने लगे।

'पण्डित काका !' पीछे से आवाज आई।

पण्डित ने सर घुमाकर देखा, तो बेला थी।

'क्या है रे ?' पण्डित ने पूछा।

'जुगल भैया कहां हैं, पण्डित काका ?'

'क्या काम है उससे ?'

'बापू का जर अभी नहीं उतरा—जाने कैसी पुड़िया दी थी !' बेला ने कहा।

'नहीं उतरा तो जुगल क्या करेगा ? वह वैद्य-डाक्टर थोड़े ही है।'

'वैद्य नहीं तो क्या हुआ ? कोई रास्ता तो बतायेंगे।'

'जा भाग ! मैं नहीं जानता, कहां है जुगल।'

'अच्छा जी ! तुम तो पण्डित काका बात-बात में फुलझड़ी जैसे छूटने लगते हो—मैं घर चलकर जुगल भैया को खोज लूंगी…'

'जाकर खोजती क्यों नहीं ? कौन मना करता है।' भुन-भुनाते हुए पुरोहित आगे बढ चले।

बेला जुगल के घर चली।

पुरोहित को बेला और जुगल का यह पवित्र स्नेह बुरा लगता था। ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए पण्डित को अछूतों के प्रति सहानुभूति तो थी, परन्तु वे उन्हें अस्पृश्य ही समझते थे।

हवेली आ गई थी। रामसरन लठैत दरवाजे पर लठ लिए खड़ा था। पण्डित को देखकर बोला—'पालागी पण्डितजी !'

पुरोहित ने आशीर्वाद दिया और बोले—'ठाकुर चौपाल में हैं ?'

'हैं पण्डितजी ! सरकार भीतर ही हैं…थोड़ी-सी सुर्ती खिलाइये न महाराज !' रामसरन ने कहा।

'सुर्ती तो बनी नहीं है—अच्छा ठहरो बनाता हूं।'

'मचिया पर बैठिये, पण्डितजी !' रामसरन ने मचिया पास लाकर रख दी। पुरोहित मचिया पर बैठ गए। मिर्जई की जेब से सातखानों वाला बटुआ निकाला और उसमें से सरौता निकाल सुपारी कतरने लगे।

थोड़ी-सी सुपारी कतरकर उसमें कत्था और चूना मिलाया, फिर सुर्ती कुपुटने लगे। कुपुट कर उसमें थोड़ा चूना डाल गदोरी

पर रखकर, दूसरे हाथ के अंगूठे से मलने लगे। बड़ी देर तक मलते रहे।

'कल तो मुन्शी जी को मिरगी आ गई थी, महाराज !' रामसरन ने कहा।

'अच्छा !' आश्चर्य हुआ पण्डित को—'कब अच्छे हुए ?'

'दो घंटे में ! मिरगी का दौरा और बिजली का चमकना दोनों एक तरह के हैं, पण्डितजी ! अब तो अच्छे हैं मुन्शी। सबेरे से ही आकर कमरे में बैठे हैं और बही खाता उलट रहे हैं।'

पुरोहित सुर्ती मल चुके थे—थपोड़ी से दो-तीन बार जोरों से ठोंक कर हाथ रामसरन की ओर बढ़ा दिया उन्होंने।

सुर्ती और सुपारी लेकर रामसरन ने मुंह में रखा। पुरोहित ने भी वह चैतन्य चूरन मुंह में डाला, फिर बोले—

'कल जुगल आया था—कैसा काम किया उसने ?' जुगल का नाम सुनकर रामसरन को बुरा तो अवश्य लगा, परन्तु पुरोहित के सामने उसने कुछ कहना उचित न समझा।

केवल इतना कहा—'उनकी तो बात ही विचित्र है, पण्डितजी !'

'वह क्या ?'

'वसूली-तहसीली का काम उनसे हो नहीं सकता।'

'क्यों ?'

'वे तो पूरे गऊ हैं···वसूली के लिए लोहे का कलेजा चाहिए महाराज। जब तक आसामियों को गाली न दो, मारो नहीं, बकबक न करो तब तक पैसा उतरने का नहीं !'

'ठीक कहते हो तुम। अच्छा ठाकुर से मिल लूं ?'

आशीर्वाद देकर पुरोहित ने चौपाल में प्रवेश किया।

ठाकुर अकेले गद्दी पर बैठे हुए कुछ सोच रहे थे।

पुरोहित को देखकर बोले—'आइये पण्डितजी, पालागी ! किधर से भूल पड़े ?'

'आयुष्मान जजमान, ऐसे ही चला आया।'

कहकर पुरोहित भी गद्दी पर जा बैठे।

'कैसे कष्ट किया पण्डित जी ?' ठाकुर ने पूछा।

'सुना है जुगल ने कल काम ठीक से नहीं किया। मैंने सोचा

चलकर अपने राजा को मैं ही समझा आऊं।'

पण्डितजी ! जुगल मेरा काम नहीं कर सकेगा, यह निश्चय है।' ठाकुर ने रूखे स्वर में कहा।

'वह अभी नादान है, ठाकुर ! समझने में कुछ देर लगेगी ही। उसकी बुद्धि ही कितनी है !' पुरोहित बोले।

'उसे नादान कहते हो, पुरोहितजी !'

'नादान तो है ही वह, जजमान !'

'आप उसके पिता हैं, आप उसे नादान समझ सकते हैं। हमारे लिए तो वह मौत से भी डरावना है, पण्डितजी !' ठाकुर ने कहा।

'मौत से भी डरावना...? क्या कहते हो राजा ?'

'मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूं, पण्डितजी ..! शहर में रहकर वह पूरा छलछन्द सीख आया है।'

'कैसा छलछन्द, जजमान ?'

'पूछो मत, पण्डितजी ..!' ठाकुर बोले—'तुम्हारे घर राहू का जन्म हुआ है। वह तुम्हारा बेटा नहीं, आफत का पुतला है। तूफान है 'आंधी है !'

क्रोध को जबरदस्ती गले के नीचे उतार कर वे स्वाभाविक स्वर में बोले—'उसे सिखाओ-पढ़ाओ ठाकुर !'

'वह क्या सीखेगा ..? पढ़ा-लिखा तो वह स्वयं ही है। रामपुर भेजा था उसे—सो वहां जाकर किसानों को हमारे विरुद्ध भड़का आया है। कह आया है कि ठाकुर का नाम-निशान मिटा दो, उन्हें लगान मत दो, जमीन तुम्हारी है, तुम्हीं बताओ पंडितजी ! जमीन भी भला किसान के बाप की हुई है कभी ?'

'ऐसा उसने कभी नहीं कहा होगा, ठाकुर !'

'कहा कैसे नहीं ? रामसरन झूठ नहीं बोल सकता। वह दस बरस से मेरे यहां जमींदारी का काम कर रहा है। देखने में तो जुगल पीपल के नये पत्ते जैसा है, परन्तु भीतर से बबूल का कांटा है वह पण्डितजी !

'मैं उसका बाप हूं, ठाकुर !' पुरोहित ने बहुत ही दीन स्वर में कहा—'परन्तु लगता है जैसे बाईस साल में उसे जितना मैं न समझ सका, उतना तुम एक दिन में समझ गये हो।'

'चाहे जो कहो पंडितजी ! वह जुगल तुम्हारी आंख में धूल

झोंक रहा है—उसे अभी से सम्हालो तो सम्हल जायेगा—नहीं तो हाथ से बे हाथ ही समझो !'

'मैं उसे किस प्रकार सम्हालू, ठाकुर ? जब तुम्हीं उसे संभाल नहीं सके। तुम तो ठाकुर हो··· साम, दाम, दण्ड आदि तुम्हारे हथियार हैं—मैं ब्राह्मण हूं—दया और अहिंसा के सिवा हमारे पास क्या रखा है ?'

'जुगल भी तो ब्राह्मण है, पंडितजी ! तुम्हारा ही बेटा तो है वह। मगर नाममात्र को भी ब्राह्मणत्व उसमें नहीं है··· हिन्दू समाज का स्तम्भ वह नहीं बन सकता, महाराज···! मुसलमान के घर वह खाता-पीता है, अछूतों के साथ वह खेलता-कूदता है। बाईस साल के सयाने लड़के में जरा भी अक्लमन्दी नहीं मिली मुझे।'

'मैं उसे बहुत-कुछ कहता हूं, ठाकुर ! मगर क्या करूं, मानता ही नहीं। बड़कू खटीक की लड़की बेला भी उसके पीछे पड़ी रहती है।'

'वही तो सब अनर्थों की जड है, पण्डितजी ! जवान लड़की और सयाने लड़के का लुके-छिपे मिलना क्या शोभा देता है ? मुझे सब पता है, मगर सोचता हूं कि आपसे कहकर आपके भजन-भाव में व्यर्थ विघ्न क्यों डालूं ?···मगर अब देखता हूं कि बिना कहे काम नहीं चलेगा।'

'कह चलो जजमान !'

'बेला और जुगल के मिलने की ओर से चाहे तुम भले ही आंखें बन्द कर लो, महाराज मगर समाज तो इतना अन्धा नहीं वह सब कुछ देखता है···जुगल बेला के साथ रात चढ़े तक तालाब के किनारे क्या करता है ? सोचा है कभी तुमने ?'

'इधर-उधर की बातें करते होंगे दोनों, और क्या ?'

'मगर लोगों की नजर बचाकर सुनसान जगह में इस तरह का मिलन क्यों ?···किसलिए ? आजकल के छोकरे अपनी इज्जत, अपना धर्म नहीं देखते, पण्डितजी ! हर गोरी-चिट्टी छोकरी पर उनका दिल आ-जाता है, पैर फिसल पड़ते हैं, खुलकर खेलते हैं आजकल के नौजवान ! मां-बाप की इज्जत धूल में मिला देते हैं।'

'·······' पण्डितजी चुपचाप सुनते रहे।

'अभी उस दिन रामसरन कह रहा था कि जुगल ने तालाब के किनारे बेला को गोद में बैठाकर चूड़ियां पहनाई थीं ...और उसे अपनी पीठ पर चढ़ाकर जामुन तोड़ने को कहा था।'

'ऐसा ?' पुरोहितजी आश्चर्य में डूबे जा रहे थे।

'कुलबेरा के फूल की मालायें गूंथकर पहनाई थीं उसने।' ठाकुर अग्नि-शिखा में घृत की आहुति देते गये।

'अभी कल, उसके बगीचे में वह उसे कलेजे से लगाकर उसके आंसू पोंछ रहा था। मुझे तो रत्ती-रत्ती खबर रहती है, पण्डितजी ! नहीं तो जमींदारी क्या खाक करूंगा ?'

'आगे कहो ठाकुर।'

'रामसरन ने उसे बेला का मुंह चूमते हुए भी देखा है।' ठाकुर अपना प्रभाव जमाने के लिए अब झूठ पर उतर आये थे।

'क्या कहते हो ठाकुर ?' तेज आवाज में बोले पुरोहित।

'सुनते जाइये पण्डितजी। जुगल और बेल। बड़ी देर तक एक ही खटोले पर, अन्धेरे में सोये पड़े थे।'

'किस जगह ?' पुरोहित ने पूछा।

'उसी सुनसान बगीचे में।' ठाकुर ने कहा।

'क्या कर रहे थे वे लोग ?'

'आप सब-कुछ पूछ लेना चाहते हैं, पण्डितजी ! कुछ अनुमान से भी काम लीजिये। अन्धेरी रात, सुनसान जगह, एक ही खटोला छोटा-सा और उस पर सोये हुए दो जवान प्राणी... और सो भी एक लड़का और दूसरी लड़की...ऐसी परिस्थिति में कौन-सी घटना घट सकती है, महाराज !...सोच लो !'

'हरे राम...! हरे राम...!' पुरोहित का हृदय असीम घृणा से भर उठा—'यह असम्भव है ठाकुर...! जुगल कितना भी नीच हो जाय, परन्तु वह इतना निकृष्ट कार्य नहीं कर सकता। मैं उसे अच्छी तरह से जानता हूं...सबसे बड़ी बात तो यह है ठाकुर, कि बेला जुगल को भैया कहा करती है। कैसे यह संभव हो सकता है ?'

'अरे ! यह कलयुगी सम्बोधन है, महाराज ! इसके फेर में मत पड़िये।' ठाकुर हंसकर बोले—'अगर तुम्हें अपनी

मर्यादा रखनी है तो जरा सख्ती से काम लो, सख्ती से…! समझ गये न ?'

'तुम्हारी बातें कैसे सत्य मान लूं, ठाकुर ?' पुरोहित ने कहा।

'तो अब तक जो कुछ मैंने कहा है वह सरासर झूठ है ?' ठाकुर अपनी अवज्ञा होते देख उत्तेजित हो उठे।

'मैं यह कैसे कह सकता हूं, ठाकुर! तुम पर झूठ बोलने का लांछन कैसे लगा सकता हूं ? जब तक अपनी आंखों से देख न लूं, तब तक कैसे विश्वास कर लूं ? मैं तो जैसे शिकंजे में फंस गया हूं। न तुम्हें ही झूठा कह सकता हूं और न जुगल को ही दोषी ठहरा सकता हूं। कान सुनी बातें कभी-कभी झूठ हो जाती हैं, ठाकुर! मगर आंख की देखी घटनायें तो हमेशा सत्य ही रहेंगी।'

'आंख से देखना चाहते हो तो वह भी कभी दिखा दूंगा, महाराज! कुछ दिन तक आप धीरज रखें। आपकी आंखें स्वयं ही देखकर निर्णय करेंगी।'

'तब निर्णय करने को रह ही क्या जायगा, ठाकुर!' पुरोहित बोले।

'शर्बत पीयोगे, पण्डितजी ? इच्छा हो तो मगाऊं ?'

'नहीं जजमान…! यह सब सुनकर भूख-प्यास सब भाग गई। सोचा था पढ़-लिखकर जुगल मेरा नाम उजागर करेगा और कमा-धमाकर मेरी सहायता करेगा, परन्तु लगता है जैसे वह सब स्वप्न मात्र था।'

'सपने कभी सत्य नहीं उतरते, पुरोहित जी …!'

इतने में ही मुंशीजी, नाक पर टुटहा चश्मा चढ़ाये और बदन पर भेंड़ के बालों का देशी कम्बल लपेटे भीतर आये।

'जुहार सरकार!' ठाकुर को लम्बा सलाम किया उन्होंने। और पुरोहित को देखकर बोले—'आह! पण्डित महाराज भी हैं क्या ? पालागी पण्डित जी, पालागी!'

'चिरंजीव मुन्शीजी!—कहो, अब तो तबियत ठीक है न ?'

'अब तो ठीक है, पण्डितजी! आपकी दया से कल जान बच गई। अब देखूं फिर कब मौत आती है ?'

'बुलाने से मौत नहीं आती, मुंशीजी ? बुलाने से तो सिर्फ कुत्ते आते हैं, क्यों पण्डितजी—?' ठाकुर ने हंसते हुए कहा।

'ठीक कहते हो, जजमान ! अच्छा तो चलूं···जुगल का ख्याल रखना ठाकुर। वह तुम्हारे आसरे रहेगा—भूल मत जाना।' पुरोहित बोले।

'वह ठीक से काम करे तो सरकार के यहां कलक्टर बन के रहेगा, पण्डितजी ! मगर अभी उसके सर पर भूत सवार है। किसी ओझा को दिखाओ तो काम बन जाय, नहीं तो उसकी शादी कर दो चट-पट।' मुंशीजी ने कहा।

'देखो भगवान करा दे तब न ?'

ठाकुर और मुंशीजी ने पालागी की और पुरोहित आशीर्वाद देकर चलते बने।

थोड़ी देर तक मुंशी और ठाकुर गद्दी पर चुपचाप बैठे रहे। फिर एकाएक मुंशीजी ने कहा—'दरवाजा बन्द कर दूं, सरकार !'

'क्यों ?'

'है एक बात।' मुंशीजी बोले।

'बन्द कर दो और खिड़की खोल दो।' ठाकुर ने कहा।

मुन्शीजी ने उठकर चौपाल का दरवाजा बन्द कर दिया और भीतर सांकल लगा दी, फिर छोटी-सी खिड़की खोलकर गद्दी पर आ बैठे। खिड़की की राह थोड़ा प्रकाश भीतर आ रहा था, जिससे उन दोनों क्रूर व्यक्तियों की आकृतियां स्पष्ट दिखाई पड़ रही थीं।

'बोलो मुन्शी ! क्या कहते हो ? कौन-सी बात है ?'

'सरकार ! बेला ऐसे चंग पर नहीं चढ़ सकती। जब तक उसके मां-बाप जिन्दा हैं, तब तक कुछ नहीं हो सकेगा। अकेले जुगल का डर होता तो कोई बात न थी।'

'तो क्या करने को कहते हो, मुन्शीजी ?'

'सरकार···! बड़कू और उसकी मेहरारू को खतम कर दिया जाय तो कैसा ?'

'अच्छा तो होगा···' ठाकुर ने कहा—'तब बेला अकेली पड़ जायगी, है न ?'

'हां ! और जुगल रात भर उसके पास रहेगा नहीं। फिर

तो अपना काम बना हुआ ही समझिये।' मुन्शी ने कहा।

'यह तो ठीक है, मगर वे दोनों मर कैसे सकते हैं ?'

'मौत को बुलाना तो अपने बायें हाथ का खेल है, सरकार !'

'कैसे मुन्शीजी ? वह कैसे ?' आश्चर्य में भरकर धीरे से बोले ठाकुर।

'जहर देकर।'

'आंय···!' ठाकुर की आंखें चौड़ी हो गयीं।

'जहर देकर यह काम चुटकी बजाते हो जाएगा।' मुन्शीजी की बड़ी आंखें चश्मे के भीतर से खूंखार शेर के नेत्रों की तरह चमकने लगीं।

'जहर···! जहर दोगे तुम ?' ठाकुर लड़खड़ाती जबान में बोले।

'हां सरकार !'

'मगर जहर मिलेगा कहां मुन्शीजी ?'

'मिल, जायगा, राजा ! जबानी जमा-खर्च थोड़े करता हूं मैं···मिलता न हो तो आपसे कहता कैसे सरकार ? मेरे एक रिश्तेदार शहर में वैद्य हैं···। उनके पास एक-सेएक जहर की पुड़ियां हैं··· चाहे तो एक मिनट में जान ले डालो, चाहे तो दो मिनट में गर्भपात कर लो, चाहे तीन मिनट में···।'

'ऐसा···' ठाकुर के मुख पर व्याप्त भय और आश्चर्य ने क्रूर प्रसन्नता का स्थान ग्रहण कर लिया—'तब तो ठीक है, मुन्शीजी ! दो पुड़ियों से दोनों का सफाया हो जायगा ?'

'हां सरकार···! बस, बेड़ा पार समझिये।' मुन्शीजी ने कहा—'मगर उन्हें जहर कैसे दिया जायगा, सरकार ?'

'इसकी फिक्र हमें नहीं करनी पड़ेगी।' ठाकुर निश्चिन्त होकर बोले—'रामसरन खुद समझदार है···वह सब-कुछ कर लेगा, मगर पीछे से भेद खुला तो ?'

'भेद कैसे खुलेगा,सरकार···?कोई जान भी नहीं सकेगा। गांव में अस्पताल और डाक्टर तो हैं नहीं—लोग यही समझेंगे कि अपनी मौत मर गये हैं।'

'जुगल का डर है मुझे—कहीं जान न जाय वह ?'

'उसकी चोटी तो अपने हाथ में है, सरकार !' मुन्शीजी

बोले।

'वह कैसे···?'

'गांव भर में शोर कर दिया जायगा कि जुगल ने ही उन दोनों को जहर दिया है···बस बेला से खटक जायेगी।'

'वाह मुन्शीजी, वाह ! हो तुम पूरे घाघ !' ठाकुर खुशी से हाथ मलने लगे—'तो जितनी जल्दी यह काम हो जाय उतना ही अच्छा है।'

'अभी हुआ जाता है सरकार !'

'वैद्य के यहां से पुड़िया कब ला रहे हो ?'

'कल से ही वह मेरे यहां मेहमानी में हैं, सरकार !' मुन्शीजी ने कहा—'उन्हें देखकर ही तो मेरे दिल में यह ख्याल पैदा हुआ।'

'उनसे तुमने बातचीत कर ली है क्या ?'

'भला इसमें मैं चूकने वाला हूं, सरकार ! एक की चार लगाकर उन्हें सारी बातें बताईं तो वे तैयार हो गये। उन्हें अपने साथ लाया भी हूं। मेरी गद्दी पर बैठे हैं—आज्ञा हो तो बुला लाऊं ! सरकार भी उनसे सारी बातें पूछ लें।'

'ठीक है, बुलाओ।' ठाकुर ने कहा।

'सरकार, वे दो पुड़ियों के लिए दो सौ मांग रहे हैं।' डरते-डरते मुन्शीजी ने कहा।

'रुपयों की कोई बात नहीं मुन्शी ! लो, अभी लेते जाओ।'

कहकर ठाकुर ने अपनी सन्दूक का ताला खोला और दस-दस के बीस नोट गिनकर मुन्शीजी की ओर बढ़ा दिये।

मुन्शीजी ने लपक कर उन नोटों को पकड़ लिया, इस डर से कि बाहर निकले हुए वे नोट कहीं फिर सन्दूक में न जा पड़ें।

'अभी आया सरकार !' और मुन्शीजी दरवाजा खोलकर बाहर चले गये।

थोड़ी ही देर में एक भद्दी आकृति वाले मनुष्य के साथ उन्होंने भीतर प्रवेश किया। ठाकुर ने देखा, उनके सामने पगड़ बांधे हुए एक देहाती खड़ा है। उसने ठाकुर का झुककर अभिवादन किया।

ठाकुर अभिवादन स्वीकार कर मुन्शीजी से बोले—

'यही हैं ?'

'हां सरकार! ये जान-बूझकर कंगाली पोशाक पहनते हैं—नहीं तो शहर में रहकर पुलिस के हाथों पकड़े जायं!' मुन्शीजी ने कहा।

'अच्छा—! आइये वैद्य जी, बैठिये! खड़े क्यों हैं?' ठाकुर ने उस पग्गड़धारी को गद्दी पर बैठने का इशारा किया।

वह ठाकुर के पास गद्दी पर बैठते हुए कुछ हिचकिचाया तो मुन्शीजी बोले—'सरकार किसी से कोई भेद-भाव नहीं रखते। आप इस पर बैठ जाइये और सरकार जो पूछें उसका जवाब दीजिये।'

वह आदमी सिमटता-सिकुड़ता एक कोने में बैठ गया।

'अपका नाम?' ठाकुर ने पूछा।

'मुझे मुन्शी नारायण श्रीवास्तव कहते हैं।' वैद्य बोला।

'आपसे मुन्शीजी ने कोई बात कही है?'

'जी हां। जो कुछ उन्होंने कहा है, सब ठीक है, मेरे पास एक-से-एक जहर हैं। आपको दो पुड़ियां चाहिए न! अभी लीजिए।'

कहकर वैद्य ने जेब से दो पुड़ियां निकाल कर ठाकुर के सामने गद्दी पर रख दीं।

'इसे कैसे दिया जायगा?' ठाकुर ने पुड़िया उठाते हुए कहा।

'किसी तरह पेट में पहुंच जाना चाहिए।' वैद्य ने कहा—'अब चलूंगा, मुन्शीजी! मुझे देर हो रही है।'

'हां-हां, सरकार का तो काम हो ही गया। जाइये, खुशी से जाइये। यह लीजिये, अपने रुपये।'

कहकर मुन्शीजी ने सभी नोट उसे पकड़ा दिये। उठता हुआ बोला वह—'चलूं ठाकुर साहब! जब कभी जरूरत पड़े, इन्हीं मुन्शीजी से मँगा लिया करें···मुझे आने-जाने की फुर्सत जरा कम रहती है।'

वैद्य अभिवादन करके बाहर निकला। मुन्शीजी भी उसके पीछे-पीछे चले। दोनों मुन्शीजी के कमरे में आकर बैठ गये।

'वाह सोहन···!' नकली वैद्य की पीठ ठोंककर बोले मुन्शीजी—'तूने अपना पार्ट खूब अदा किया। ठाकुर को जरा

भी शक नहीं हुआ।'

'ये लो अपने रुपये, मुन्शीजी। न मैं वैद्य, न हकीम। झूठ-मूठ मुझे वैद्य बना दिया तुमने।'

उसने सभी नोट मुन्शीजी के आगे रख दिये। मुन्शी ने उन्हें उठाकर जेब में रख लिया। दो रुपये उसे देने लगे तो वह खीजकर बोला—'बस, मुन्शीजी! सिर्फ दो रुपये?'

'तूने किया ही क्या है! दस मिनट के काम के लिए दो रुपये क्या कम हैं···ले जा।'

'तुम भी पूरे घाघ हो लाला···! वह जहर की पुड़िया जो तुमने मुझे दिया था, वह राख तो नहीं थी?' नकली वैद्य ने पूछ लिया।

'था तो जहर ही, मगर तुम न होते और ठाकुर को मालूम हो जाता कि वह जहर मैंने बनाया है, तो छदाम भी नहीं देता वह कंजूस की खोपड़ी। अच्छा, अब तुम जाओ। यहां कहीं रुकना मत। सीधे अपने गांव चले जाना।'

'राम-राम मुन्शीजी।'

'जै राम!'

जब सोहन चला गया तो मुन्शीजी नोटों से भरी हुई जेब टटोलने लगे कि कहीं खिसक तो नहीं पड़ा किसी तरफ। तभी हंसता हुआ रामसरन भीतर आया। बोला—'बड़ी जेब टटोल रहे हो, मुन्शी सरकार! बहुत भरी है क्या···?'

'भरी क्या है जी? कुछ जरूरी कागज-पत्तर हैं इसमें। यही देख रहा था कि खिसक गए तो लेने के देने पड़ जायेंगे।'

'इतना चरका मत दो, मुन्शी बाबू!'

'कैसा चरका, रामसरन?' मुन्शीजी बोले—'तुम तो फजूल शंका करते हो।'

'अरे सरकार!' रामसरन ने हंसकर कहा—'रामसरन ने भी आठ सौ चालीस तक पढ़ा है···मैं भी तुम्हारी जूती हूं बाबू! दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकोगे तो कैसे काम चलेगा?'

'मैं समझ नहीं रहा हूं कि तुम क्या बके जा रहे हो?'

'यही कि सरकार की जेब ज्यादा भरी है···थोड़ा-सा हलका कर दो। ऐसा न हो कि जेब फट जाय और एकदम ही

हलकी हो जाय।'

'अरे भाई, साफ साफ कहो न ?' मुन्शीजी ने खीजकर कहा।

'वही दो सौ में से सिर्फ पचास···। ज्यादा नहीं चाहिए मुझे। पेट फट जायगा, मालिक !'

रामसरन के मुख से दो सौ का नाम सुनते ही मुन्शीजी का पारा नार्मल से भी नीचे आ रहा।

'तुम सब जानते हो क्या, रामसरन ?' वे हताश स्वर में बोले।

'मैंने सब देखा सुना है, बाबू। रामसरन से कोई बात छिपी नहीं रह सकती। ठाकुर और हवेली की सभी बातें मुझे राई-रत्ती मालूम हैं···पुलिस में होता तो जासूसी करके दो-चार सौ महीने कमा लेता···तुम्हारी छाया में पड़ा हूं, तो पचास ही सही।'

'पचास तो बहुत ज्यादा हैं, रामसरन।'

'इससे कम नहीं लूंगा, सरकार !'

'दस ले लो···।'

'नहीं···'

'बीस···'

'नहीं···'

'अच्छा पचीस ले लो, इससे ज्यादा नहीं दे सकता।'

'पचास से एक कौड़ी कम नहीं लूंगा, मुन्शीजी ! ठाकुर राजा को खबर लग गई तो जान आफत में पड़ जायगी तुम्हारी !'

'देखो रामसरन ! तुम तो झगड़ा करने लगते हो···'

'तुम्हारा शरीर झगड़ा करने लायक नहीं है, सरकार ! एक बांस भी तो भरपूर नहीं सम्हाल सकोगे। हाड़ की ठठरी टूक-टूक होकर रह जायगी।' रामसरन हंसने लगा।

'अच्छा तो पचास ही सही।'

मुन्शीजी ने पांच नोट निकालकर रामसरन को दे दिये।

'दुहाई मुन्शी सरकार की ! अब मैं जी गया बाबू !' बोला रामसरन।

'अच्छा चलो, जरा ठाकुर से मिल लें।' उठते हुए मुन्शी

ने कहा।

चौपाल में आकर मुन्शीजी ने कहा—'रामसरन को बुला लाया हूं, सरकार! इसे सारी बातें समझा दीजिये।'

'रामसरन!' ठाकुर बोले—'तुम्हें एक कठिन काम करना है, आगा-पीछा तो नहीं देखोगे?'

'सरकार माई-बाप हैं। रामसरन ने कहा—'हुकुम हो तो सीधा आग में जाकर कूद पड़ूं, राजा···! यह देह आप ही की है, कहिये क्या करना है मुझ?'

'यह पुड़िया लो···' ठाकुर ने उसे पुड़िया देते हुए कहा।

'क्या करूं सरकार इन्हें···? खा लूं?' सब-कुछ जानते हुए भी रामसरन अनजान बनना खूब जानता था।

'जान देनी है क्या जो खा लोगे?' हंसकर बोले ठाकुर।

'जान देने को कहो, सरकार! तो वह भी मंजूर है।'

'अरे भाई, यह दूसरे के लिए है, समझे!' मुन्शीजी बोले—'तुम्हारी जान लेकर क्या करेंगे सरकार?'

'तो क्या यह जहर है, मुन्शी बाबू?'

'और नहीं तो क्या?'

'इसे किसको खिलाना है, सरकार—?' रामसरन ने पूछा।

'बड़कू खटीक और उसकी औरत को।' धीरे से मुन्शीजी ने कहा।

'समझ गया सरकार? मगर इन पुड़ियों की क्या जरूरत थी? हुकुम मिलने की देर थी, रात-बिरात गड़से से गला उतार देत। दोनों का···कोई जान भी न पाता।'

'जुगल को भूल गये क्या तुम? पढ़े-लिखे छोकरे जो न कर डालें वह थोड़ा···कहीं जाकर शहर में पुलिस को खबर कर दी तो गजब हो जायगा।'

'कहो तो सरकार! पहले जुगल को ही···' रामसरन अटकते हुए बोला।

'अरे नहीं···' ठाकुर ने कहा—'ब्राह्मण की हत्या! राम राम···!'

ठाकुर में रूढ़िवादी धार्मिकता की बू अभी विद्यमान थी, इसलिए जुगल की हत्या की बात सुनकर वे डर गये—भयभीत से हो उठे।

'खैर ! जुगल से पीछे समझ लिया जायगा।' मुन्शीजी ने कहा—'इस समय तो तुम्हें यही करना है।'

'मैं करूंगा सरकार !' बोला रामसरन।

'मगर देखो, किसी को खबर न हो।' ठाकुर ने कहा।

'आप निसाखातिर रहें, माई-बाप···! रामसरन वह काम नहीं करता, कि मक्खी को पंख फड़फड़ाने का मौका मिल जाय···ऐसा काम सधाऊंगा कि कलम भी कटकर रह जाय··· न कोई देख सकेगा, न सुन सकेगा और ये दोनों पुड़ियां उन दोनों के गले में उतर जाएंगी।'

'ठीक है···' ठाकुर ने कहा—'कुछ चाहिए तुम्हें ?'

'पचास रुपये तो बड़कू के बगीचे के फलों का दाम दे दीजिये, सरकार ! और दस रुपया मेरे लिए···यही कुल साठ रुपये।'

ठाकुर ने सन्दूक खोलकर साठ रुपये रामसरन को पकड़ा दिये।

'शाम तक काम बन जायगा, मालिक !' कहकर रामसरन बाहर चला गया। मुन्शीजी पीछे-पीछे गये, क्योंकि रुपयों में हिस्सा बंटाना आवश्यक था।

'कमरे में आना तो रामसरन !' बाहर आकर मुन्शीजी ने कहा।

'चलो—अभी आया सरकार !' रामसरन बोला।

मुन्शीजी आकर गद्दी पर बैठे ही थे कि रामसरन आ पहुंचा।

'क्या है बाबू ?' पूछा उसने।

'मेरा हिस्सा लाओ और क्या—?' मुन्शी ने कहा।

मुन्शीजी समझते थे कि साठ रुपयों में से तीस तो उनके हिस्से में आयेंगे ही—इस तरह उन्हें तीस मिल जायेंगे, केवल बीस रामसरन के पल्ले पड़ेगा।

परन्तु रामसरन कम चालाक नहीं था। बोला वह—'अभी लो सरकार ! अपना हिस्सा अभी ले लो—मुझे क्या करना है तुम्हारे हिस्से से—।'

कहकर उसने दस रुपये का एक नोट मुन्शीजी के आगे बढ़ा दिया।

'यह क्या···?' मुन्शीजी बिगड़कर बोले।

'इसमें से पांच तुम ले लो मुन्शीजी···। बाकी मुझे लौटा दो।'

'वाह जी वाह ! यह झांसा-पट्टी दूसरों को पढ़ाना, रामसरन···! सीधे-से आधे-आध निकालकर रख दो···' मुन्शीजी ने कहा।

'आधा ही तो दे रहा हूं—।'

'पांच रुपल्ली में ही आधा हो गया—? साठ का आधा ?'

'मगर साठ मुझे कहां मिले, सरकार !'

'तब किसको मिले ?'

'पचास तो बड़कू को देने हैं न—! नहीं दूंगा तो काम कैसे बनेगा—? बाकी दस में से आधा लेना हो तो ले लो। नहीं तो ठाकुर को ये रुपये लौटा दूंगा—कह दूंगा मुन्शीजी से यह काम करा लें।' रामसरन बोला।

'अरे भाई ! तुम तो नाहक तैश में आ जाते हो—अच्छा लाओ, पांच ही सही—' मुन्शीजी ने दस का नोट जेब में रखा और पांच रुपये निकालकर रामसरन को लौटा दिये।

'अब ठीक है सरकार ! मैं कोई बेईमानी नहीं करता। आपसे ही तो हमारी चलती है, मुन्शी बाबू ! धोखा देकर जाऊंगा कहां ! तुम्हारी कलम से कोई थोड़े ही बच सकता है।'

'रामसरन, आज रसूल-वसूल तो ज्यादा हुआ है, कुछ छनती-घुटनी चाहिए। क्या राय है तुम्हारी !'

'भला यह भी सरकार कोई कहने की बात है ! नेकी और वह भी पूछ-पूछकर।' रामसरन ने कहा।

'तो पक्की रही न—?'

'मैं कच्ची बात कब कहता हूं, सरकार।'

'तो क्या छनेगी—? भांग ?' मुन्शीजी ने कहा।

'तुम भी सरकार क्या मन की टोह लेते हो···! अरे मंगाना ही है, तो दो बोतल हौली से मंगाओ, छने खूब गहरे में। भंग-वंग में क्या रखा है ! बनारसी मस्तमौला तो बनना है नहीं अपने को···'

'अच्छा तो बोतल छानोगे तुम ?' मुन्शीजी ने पूछा।

'हां सरकार ! इसी का तो आसरा लगाये हूं ...' रामसरन बोला—'दो बोतल में सिर्फ दस रुपये ही तो लगेंगे।'

'और दोनों तुम्हीं पी जाओगे, क्यों ?'

'अजी नहीं बाबू ! वे दिन और थे जब करीम खां कबूतर उड़ाया करते थे।'

'क्या मतलब !'

'अब भरी जवानी की देह तो रही नहीं, सरकार ! एक बोतल पचाना ही मुश्किल है...तीस से ऊपर हो चला हूं। ऊपर से देखने में इतना मोटा-तगड़ा हूं, मगर भीतर जैसे रूई है, खून में जैसे गर्मी ही नहीं रह गई है, हां तो निकालो दस रुपये मुन्शीजी ?'

'लो भाई, तुम भी क्या समझोगे रामसरन...! लो ये रुपये, बन्द बोतल लाना। समझ गये न ?'

समझ गया सरकार ! रात-रात भर होली में पड़ा रहा हूं, क्या इतना भी नहीं समझ सकता ? साले खुली बोतल में पानी मिला देते हैं।'

रामसरन ने रुपये ले लिए और चल पड़ा। होली के भीतर खटोले पर शिवपूजन लेटा था। एक भी ग्राहक नहीं था। रात में गुलजार रहने वाली जगह इस समय वीरान जैसी पड़ी थी।

रामसरन को देखकर शिवपूजन अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

बोला—'आओ भाई रामसरन...! भला याद तो आई मेरी !'

'अरे नहीं साहूजी ? भला तुम्हें कभी भूल सकता हूं।' बैठता हुआ बोला रामसरन।

'बोलो कितना दूं—?' शिवपूजन ने पूछा।

'चाहिए तो दो बोतल साहू ?'

'सच्चा या कलमस...? बन्द या खुला ?'

'बन्द भी और कलमस भी...' रामसरन ने कहा—'ठाकुर को तो चाहिए नहीं। उसी मुन्शिया को चाहिए। पट्टी पढ़ा दो साले को।'

'वाह ! यह बात है !' शिवपूजन ने इलाहाबाद डिस्टिलरी की दो सन्तरे की बोतलें निकालीं।

बोला—'कलमस कर दूं न, रामसरन ! ठीक से बोलो !'

'अरे हां साहू। मुझे थोड़ी-सी पिलाकर बाकी कलमस कर दो···' रामसरन ने कहा।

शिवपूजन ने बोतलों के कार्क पर लगा हुआ कागज थोड़ा-सा उखाड़ दिया। कार्क दिखाई पड़ने लगा। इसके बाद उसने एक पिचकारी निकाली। पिचकारी के मुंह पर एक बड़ी-सी छेदवाली सुई लगी हुई थी, जैसी डाक्टरों के सिरिन्ज में लगी होती है। पिचकारी काफी बड़ी थी। शिवपूजन ने पिचकारी की वह सुई बोतल के कार्क में घुसेड़ दी। सुई पार हो गई। फिर बोतल जरा-सा तिरछा करके पिचकारी में शराब भरने लगा। पिचकारी पूरी भर गई बोतल में केवल एक छटांक रह गयी।

'बस करूं रामसरन ! या और निकालूं ?' उसने पूछा।

'बस करो साहू, इतना ठीक है।' बोला रामसरन।

शिवपूजन ने सुई कार्क से बाहर निकाल ली।

और पिचकारी की शराब एक खाली बोतल में भर दी, फिर पिचकारी में पानी भरकर उसने सुई पुनः कार्क के भीतर डाली और सारा पानी बोतल में डाल दिया।

भर गई लबालब बोतल पहले की तरह। केवल लाल रंग में जरा-सा फीकापन आ गया था, परन्तु उसे कोई देखकर पहचान नहीं सकता था कि यह नकली शराब है या इसमें मिलावट की गई है।

'रंग तो फीका पड़ गया साहू···!' रामसरन ने कहा।

'अरे भाई, कोई जान न सकेगा।' बोला शिवपूजन।

'थोड़ा-सा रंग गाढ़ा कर दो साहू।'

'वह भी सही···'

कहकर शिवपूजन ने एक कटोरी में तूल का रंग घोला और उसे पिचकारी में भरकर बोतल के भीतर डाल दिया। बोतल का रंग पुनः ज्यों का त्यों हो गया।

'अब तो ठीक है न, रामसरन ?'

'बस ठीक है साहू।'

'पहले से अब और चढ़ता रंग हो गया है, जमादार···है न ?'

'अब मुंशीजी का बाप भी नहीं पहचान सकता।'

शिवपूजन ने थोड़ा-सा गोंद लगाकर, कार्क पर का उखड़ा हुआ कागज फिर से चिपका दिया। बोतल ज्यों की त्यों बन्द हो गई।

भारी से भारी पियक्कड़ भी इस भेद को नहीं समझ सकता था।

इसी तरह दूसरी बोतल में भी पानी और रंग मिलाया गया—'लो भाई रामसरन !' बोतल बढ़ाते हुए शिवपूजन ने कहा।

'तुम भी खूब हो साहू ! दिनदहाड़े डाका डाल देते हो।'

'इसी अकल के बल पर तो हौली चल रही है, जमादार ! चार पैसे भी इकट्ठे कर लिए हैं। अबकी बैसाख में बेटे का गौना लाऊंगा।'

'खूब लाओ गौना साहू, खूब लाओ ! अन्धों को मूड़ने में तुम माहिर हो।'

'अरे भैया !' शिवपूजन बोला—'ये गांव वाले अन्धे ही तो हैं। आधा पानी, आधी शराब पीकर मतवाले बन जाते हैं—यही तो अपना रोजगार है, नहीं तो कौन पूछे !'

'मुझे तो पिलाया नहीं, साहू ! मैं पानी मिली शराब तो पीता नहीं…'

'तुम्हें एकदम असली पिलाऊंगा, जमादार ! यह कुल्हड़ लेकर उस पीपे में से जितनी चाहे ले लो…।' शिवपूजन ने कहा।

'मुझी को पट्टी पढ़ाने लगे, साहू।' रामसरन डपटकर बोला—'वह पीपे का पानी किसी दूसरे को पिलाना, समझे !'

शिवपूजन खिसियानी हंसी हसकर बोला—

'तुम भी पूरे घाघ हो, रामसरन… ! अच्छा लो, एक नई चीज मंगाई है—एक नम्बर की ! सुबह ही तो खोला था इसे, मैंने थोड़ा-सा पीकर रख दिया था।'

लाल शर्बत से भरी हुई एक बोतल उठाई शिवपूजन ने। रामसरन ने कार्क खोलकर सूंघा उसे—कहने लगा—'बड़ी तेज लगती है साहू।'

'अरे मालिक ! तुम्हें दे दिया, नहीं तो किसी को छूने भी नहीं देता…'

'कहां से मंगाया है इसे ?'

'बम्बई से···लो मुहर देख लो। चमचमा रही है चांदी की तरह। एक ही बोतल आई है, रिक्शा नम्बर वन है।'

'बम्बई से मंगाया है, साहू···।' रामसरन को आश्चर्य हो रहा था।

'कह तो दिया कि हां···तुम तो विश्वास ही नहीं करते भाई ! मुहर क्यों नहीं पढ़ लेते तुम ?'

'मैं तो लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर हूं, साहू ! क्या जानूं कि ये काले-काले, अक्षर हैं या काली चींटी की कतार···!'

'तो मेरा कहना मान लो फिर !' शिवपूजन ने कहा।

'मान लिया···बम्बई से आई है तो वहीं बनी भी होगी।'

'नहीं मरदे ! यह तो अंग्रेजी वाइन है, एकदम बिलायती। सीधे जहाज पर चढ़कर हिन्दुस्तान में चली आई—बम्बई में उतरी तो एजेन्ट ने हमारे पास भेज दिया—'

'एक ही बोतल आई विलायत से ?' रामसरन ने पूछा।

'और क्या हजार बोतलें आती हैं—? यह रिक्शा नम्बर वन जो है न, साल भर में एक बोतल ही तो बन पाती है··· इसका दाम सुनोगे तो दम तोड़ दोगे।'

'कितने की है···?' रामसरन ने पूछा।

'खर्च ले-देकर साढ़े इक्यासी में पड़ी है।' शिवपूजन ने कहा—'करोगे विश्वास···! बीस गण्डे और डेढ़ रुपये में। सिर्फ यही एक बोतल जहाज पर चढ़कर आई है।'

'तब तो सचमुच कमाल की होगी, साहू !'

'हाय कंगन को आरसी क्या···? लो थोड़ी-सी चखकर देख लो···एक छटांक से ज्यादा नहीं दूंगा।'

'एक छटांक ही सही—!' कहकर रामसरन ने कुल्हड़ साहू के आगे बढ़ा दिया।

बोतल का कार्क खोलकर शिवपूजन ने कुल्हड़ भर दिया। रामसरन ने एक घूंट पीया तो उसका दिमाग भन्ना गया।

बोला—'बाप रे ! शराब है या जहर···!'

'बस आंख मूंदकर पी जाओ, राजा ! असली चीज है कि ठट्ठा ! विलायती है न ! जनम सफल कर लो पीकर, जमादार !'

रामसरन पीने लगा। शिवपूजन मन-ही-मन हंसता रहा। उस बोतल [redacted] थोड़ा-सा चिरायते का अर्क, एक-दो पीसे हुए लाल मिर्चे [redacted] ी तूल रंग का पानी था।

चार पै[redacted] को शिवपूजन की वाचालता ने साढ़े इक्यासी रुप[redacted] ये।

चिरायते [redacted] तीता अर्क पीकर रामसरन जब खाली हुआ तो मुंह का स्वाद बिगड़ गया था।

'और दूं जमादार ?' शिवपूजन ने पूछा।

'नहीं साहू, रहने दो अब ! इतने ही से देखो हवेली तक पहुंचता हूं या रास्ते में ही पड़ा रहता हूं। इलायची हो तो देना एक।' शिवपूजन ने इलायची दे दी।

खाते हुए बोला रामसरन—'कितना दूं साहू ?'

'दो बोतल असली के तो दस होते हैं···तुम जो चाहो कम करके दे दो।'

'पांच ले लो···'

'अरे नहीं जमादार···! अच्छा सात दे दो—तीन तुम रख लो।'

'अच्छा लो, छः रुपये···अब नहीं-नहीं मत करो ! इतना बहुत है···' रामसरन ने छः रुपये शिवपूजन को दे दिये और दोनों बन्द बोतलें उठाकर बाहर निकला।

उधर अपने कमरे में बैठे हुए मुन्शीजी दो आदमियों पर गालियों की बौछार कर रहे थे—'क्यों मगरुआ साले ! इस साल की लगान कब मिलेगी तेरी ?'

'सरकार ! मेरे बाप का सराध रहा—सब खर्च हो गया।'

'तेरी ऐसी की तैसी !' मुन्शीजी बिगड़ पड़े—'मरे बाप का सराध करता है और जिन्दे बापों को पूछता तक नहीं···! दस रुपये निकाल तो तुझे छोड़ दूं, नहीं तो आज मुर्गा बनाकर रख दूंगा।'

'इस वक्त माफी दो सरकार !'

'अच्छा देता हूं, घबड़ा मत ! और तू झुल्लन ! तूने ब्याज क्यों नहीं पहुंचाया इस महीने का ?'

'सरकार !'

'चोट्टे···! ठहर मैं तेरी भी खबर लेता हूं। सरजू ओ सरजू ?'

'आया बाबू !' बड़ा-सा लट्ठ लिए सरजू अन्दर आया।

'देखो···' मुन्शीजी बोले—'इस मंगरुआ साले को ले जाकर धूप में मुर्गा बना दो—जरा भी हिले तो बेईमान को कोड़े से पीटना और इस झुल्लन को ले जाकर पैर ऊपर, सर नीचे कर पेड़ से···समझ गये न ?'

'हां सरकार ! समझ गया।'

'इनकी नस-नस तोड़ देना···अगर दस-दस रुपये दें तो छोड़ देना इन्हें।' कहकर मुन्शीजी ने दांत पीसते हुए उन्हें आग्नेय नेत्रों से देखा।

सरजू उन दोनों को धक्का मारता हुआ बाहर ले गया।

इतने में ही बोतलें लिए हुए रामसरन ने प्रवेश किया। आते-आते कोठरी का दरवाजा भीतर से बन्द करता आया।

'आ गये, रामसरन ?'

'हां सरकार ! देख लो—बोतलें बन्द हैं या नहीं ?'

'तुम लाये हो तो क्यों न बन्द होंगी, रामसरन···! तो फिर देर क्यों, खोलो।'

बोतलें खुल गईं। आधा पानी, आधा शराब पेट के अन्दर पहुंचने लगा।

उधर धूप में मुर्गा बना हुआ मंगरू और पेड़ से उलटा लटका हुआ झुल्लन—दोनों सरजू के कोड़े खा रहे थे। मानवता मर चुकी थी, दानवता जाग उठी थी।

५

नहा-धोकर जुगल ने सूखी धोती पहन ली और नंगे बदन धूप में खड़ा होकर बाल सुखा रहा था और उन पर गांव की बनी हुई काठ की छोटी-सी कंघी फेरता जा रहा था। तभी बेला आ पहुंची।

'नहा चुके, जुगल भइया?'

'हां।' जुगल ने कहा।

'तो चलो मेरे घर।'

'क्यों, काका की तबियत ठीक है न?'

'अभी तो वैसी ही है, कल से कुछ बेसी ही बुखार लगता है मुझे···थोड़ी-सी दवाई और ले लो तुम और अभी चलो।'

'पिताजी को आ जाने दे, तब चलूं।'

'अभी तो वे रास्ते में मिले थे मुझसे। बड़ी देर कर देंगे वे जुगल भइया···! बापू ने जल्दी ही लौटने को कहा है। कोई पानी देने वाला भी तो नहीं है···माई को भी रात में बुखार चढ़ आया है, जुगल भइया! अभी उतरा नहीं है।'

सुनकर जुगल की चिन्ता बढ़ गई।

चटपट उसने कुर्ता गले में डाला, कुनैन की टिकिया ली और बेला के साथ चल पड़ा। न जाने क्यों उसका हृदय किसी भावी आशंका से धड़कने लगा था।

'रात को कुछ खाना दे दिया था क्या उन्हें?' उसने पूछा।

'क्या करूं जुगल भइया! बापू माने ही नहीं।' बेला बोली—'मैं कहती रही कि जुगल भइया ने मना किया है, मगर उन्होंने ज़िद्द पकड़ ली।'

'क्या दिया था खाने को?'

'बजरी की लिट्टी और इमली की चटनी।'

'और अपना सर नहीं?' बिगड़कर बोला जुगल—'बेई-मान कहीं की···! उनकी जान लेना चाहती है क्या?'

'मैं क्या करूं, जुगल भइया!'

कहते-कहते बेला रुआंसी हो गई। चेहरे पर मुर्दनी छा गई। सोचने लगी कि जुगल भइया का कहना न मानकर उसने कितनी बड़ी गलती कर डाली है।

'अब कभी नहीं दूंगी, जुगल भइया !' कहकर रुआंसी बेला अब सिसकने लगी।

'तो रोने क्यों लगी, गंवार कहीं की···! गलती भी करेगी और आंसू भी निकालेगी।'

जुगल पास आया तो उसने देखा—ओसारे में बड़कू कथरी ओढ़े चुपचाप लेटा है और वहीं जमीन पर बोरा बिछाकर उसकी स्त्री भी लेटी थी।

'बड़कू काका !' जुगल ने पुकारा।

स्वर सुनकर बड़कू ने कथरी से अपना मुंह निकाला।

लाल आंखों में मृत्यु की स्पष्ट छाया देखकर जुगल कांप उठा।

'कैसी तबियत है काका ?'

'अब तो ठीक है बेटा···! बेला बिटिया ! तू घर के भीतर जा और रसोई पानी कर ले जल्दी से।'

बेला चली गई तो बड़कू बोला—'जुगल बचवा···! मेरी जांघ में गिल्टी निकल आई है।'

जुगल ने कथरी हटाकर देखा—लम्बी, मोटी-सी गिल्टी ऊपर से ही दिखाई पड़ रही थी।

'प्लेग···! यह तो प्लेग का लक्षण है।' मस्तक पर हाथ रखकर सोचने लगा जुगल।

'क्या है यह बचवा ?'

'मामूली फोड़ा है, काका···ठीक हो जायगा···।' जुगल ने कहा—'कल तुमने खाना खा लिया, यह अच्छा नहीं किया।'

'भूख थामे नहीं थमी, बेटा···! एक ही लिट्टी तो खाई थी और मांगने लगा तो बेला ने दिया नहीं।'

'ठीक किया उसने। अब जरा सम्भल के रहो। यह बुखार साधारण नहीं है।'

'क्या जान ले लेगा बचवा ?'

'अरे काका ! जान तो क्या जायगी, अलबत्ता भुगतोगे बहुत !'

'हमें भुलावा मत दो भइया ! यह प्लेग है···है न ? है तो क्या हुआ···? देखो न, बेला की माई भी रात से बुखार में धुत्त है। इससे कहता हूं कि मेरे पास से हटकर सो, मगर यह मानती

ही नहीं। तुम्हीं इसे समझाओ बचवा !' बड़कू ने गिड़गिड़ाकर कहा।

'इन्हें ऐसी हालत में छोड़कर कहां जाऊं भइया, तुम्हीं बताओ न !' धीरे से बेला की मां बोली।

जुगल ने उसकी नाड़ी पकड़कर देखा···तीव्र ज्वर से नाड़ी उछल रही थी।

'क्या होगा भगवान ?' भगवान को न मानने वाला जुगल भी यहां आकर उसका नाम ले बैठा। उसकी सत्ता को स्वीकार करना ही पड़ा उसे।

'मैं अभी आया काका।' कहकर जुगल झोंपड़ी के भीतर आया।

आग जलाकर बेला लिट्टियां सेंक रही थी।

'क्या है भइया ?' पूछा उसने।

'तेरे बगीचे में नागफनी है न ?'

'हां है तो···दक्षिण वाले कोने में ढेर-सी है।'

'मैं इन लिट्टियों को उलटता हूं।' जुगल ने कहा—'तब तक तू हंसिया लेकर जा और तीन-चार नागफनी के चकत्ते काट ला।'

'क्या करोगे भइया ?'

'लगी कानून बघारने न···? दवा के लिए चाहिए, जल्दी जा।'

'बिगड़ो मत जी, अभी लेकर आती हूं।'

बेला ने हंसिया उठा लिया और बगीचे की ओर दौड़पड़ी।

जुगल वहीं बैठा हुआ बाजरे की लिट्टियों को आग पर उलटता-पलटता रहा।

थोड़ी देर में ही वह आ गई। बोली—'लो भैया···' और कांटेदार चकत्ते जुगल के सामने रख दिये।

'इन्हें आग मे डालकर भूनती रह !' जुगल ने कहा—'तब तक मैं घर से दूसरी दवा लेकर आता हूं।'

जुगल तेजी से बाहर आया। लपकता हुआ अपने घर की ओर भागा। इस समय उसके सामने बेला का अन्धकारमय भविष्य नाच रहा था।

बेला के माता-पिता यदि मर गए तो बेला का क्या होगा ?

वह किसका सहारा पकड़कर जियेगी ? गुण्डों, आवारों से कैसे अपने को बचा सकेगी ?

जुगल दृढ़-प्रतिज्ञ था। जैसे भी होगा उन दोनों को वह बचायेगा…जो कुछ करते बनेगा, करेगा।

कठिनाई तो यह थी कि आस-पास कोई अच्छा वैद्य न था और शहर से डाक्टर लाने में अत्यधिक विलम्ब हो जाता।

घर आकर उसने अपनी छोटी-सी सन्दूक खोली। उसमें होमियोपैथिक की कई छोटी-छोटी शीशियां थीं। जुगल ने एक शीशी उठाकर जेब में रख ली और फिर बेला के घर की ओर दौड़ चला। उसके पिता अभी तक लौटे न थे।

सीधे बेला के पास आकर बोला जुगल, 'भून लिया उन्हें ?'

'हां ! बेला ने कहा।

'अच्छा इधर आ।' कहकर जुगल ने जेब से वह शीशी निकाली और एक खुराक स्वयं खाकर, दूसरी बेला की ओर बढ़ाते हुए बोला—'मुंह खोल अपना।'

'किस लिए जुगल भैया ?'

'यह दवा खा ले !'

'मुझे कौन-सा जर चढ़ा है जो दवाई खाऊं !' बेला ने कहा।

'चल मुंह खोल जल्दी।' जुगल ने आगे बढ़कर उसका मुंह पकड़ लिया और उसे खोलकर दवा खिला दी।

'तुम तो बड़े भारी डाक्टर हो जी…?' बेला हंसने लगी तो जुगल बिगड़ पड़ा—'अच्छा, खड़ी-खड़ी ही-ही मत कर।'

'तब क्या करूं ?'

'एक खुरपा ले आ !' जुगल ने कहा।

बेला ने खुरपा ला दिया। जुगल ने खुरपे से नागफनी को चीरकर दो हिस्सा कर दिया।

'तू यहीं रह, मैं दवा बांधकर अभी आता हूं—'

कहकर जुगल बाहर चला गया। परन्तु भोली बेला की समझ में खाक नहीं आ रहा कि जुगल इतना घबड़ाया हुआ क्यों है ? ऐसा बुखार तो उसके बाप को पचीसों बार आ चुका है।

बाहर आकर जुगल ने बड़कू की गिल्टी खोली और उस

पर नागफनी रखकर कपड़े से बांधने लगा।

'जुगल बचवा···!' अत्यन्त दीन स्वर निकाला बड़कू के मुख से।

'क्या है काका ?'

'बेला कहां है ?'

'घर में ही है, काका···! तुम कहो, जो कुछ कहना हो।'

'क्या कहूं बेटा···सोचता हूं, मेरे मर जाने के बाद बेला किसकी होकर रहेगी···तुम्हीं को बचपन से मानती आई है··· तुम्हीं उसे सम्हालना बेटा।'

'तुम चिन्ता न करो, काका···! एक ऐसी दवा देता हूं, जो शाम तक ही चंगा कर देगी तुम्हें।'

'बेला के भाग से जी जाऊं, तो अच्छा ही है बेटा···। नहीं तो सम्हालना उसे, अभी से कहे रखता हूं···परान निकलते समय जीभ बोले या न बोले—कौन जाने !'

जुगल पट्टी बांध चुका था। जेब से वही शीशी निकालकर एक खुराक बड़कू को खिलायी और एक खुराक उसकी स्त्री को।

'यह कौन-सी दवाई खिलाई है, बचवा ?' बड़कू ने पूछा।

'बुखार की दवा है, काका !'

'हां बेटा, खाते ही बान (बाण) जैसी लगी है···!'

यह दवा टेरेंटुला क्यूबांसिलस थी। जानता था जुगल कि यदि यह दवा लग गई तो दो-चार खुराक में ही फायदा कर जायेगी।

पन्द्रह-पन्द्रह मिनट पर फिर दोनों को दवा खिलाई जुगल ने।

रोगियों में परिवर्तन होता दिखाई पड़ा। लुण्ड-मुण्ड पड़ी बेला की मां उठ बैठी, जैसे उसे अब होश आ गया हो।

बड़कू अपने में कुछ स्वस्थता का अनुभव कर बोला—'अब तो लगता है जैसे फिर से जी उठूंगा, जुगल बेटा···! बेला से थोड़ा पानी लाने को कह दो।'

'मैं स्वयं लाता हूं, काका !'

जुगल भीतर गया। बोला—'थोड़ा-सा पानी गरम कर दे तो !'

'तुम चलो भैया ! मैं गरम करके लिए आती हूं···' बेला ने कहा।

जुगल मचिया पर आ बैठा। थोड़ी ही देर में बेला गिलास में गर्म पानी ले आई। बड़कू ने गिलास में मुंह लगाया और एक ही घूंट पीकर बोला—'यह तो गर्म पानी है, बेटा !'

'बुखार में गर्म पानी नुकसान नहीं करता, काका···! तुम दो-तीन घूंट पी तो लो···' जुगल ने कहा।

बड़कू ने पानी पी लिया। बेला की मां गिलास पकड़ते हुए बोली—'थोड़ा-सा मैं भी पीऊंगी।'

'तुम इनका जूठा मत पीओ, काकी !' जुगल ने कहा।

'अरे भैया ! जन्म भर तो इनका जूठा-मीठा खाती रही··· अब क्या बीमारी में इनसे घिन करने लगूं ?'

'इसमें घृणा की बात नहीं है, काकी ! तुम नहीं समझ सकोगी इस बात को···बेला ! दूसरा पानी गरम कर ला तो ?'

बेला चली गई और थोड़ी ही देर में कटोरे में गर्म पानी लिए हुए लौटी। उसकी मां ने पानी पी लिया।

कुछ देर बाद जुगल ने एक-एक खुराक दवा दोनों को और खिलाई।

'बस, तुम घर जाओ बचवा ! पंडित भैया तुम्हारी बाट जोहते होंगे—!' बड़कू ने कहा।

'और मैंने जुगल भैया के लिए लिट्टियां बनाई हैं उन्हें कौन खायेगा, बापू ?' थोड़ा मुंह बनाकर बोली बेला।

'अरे तू अपनी रूखी-सूखी लिट्टी खिलाकर जुगल को बेधरम करेगी क्या ?'

'इतने बड़े धरम-करम करने वाले हैं ये कि···' बेला हंसती हुई बोली—'मुसलमान के घर जाकर सेवई चाटते हैं।'

'किस मुसलमान के घर ?' बड़कू ने पूछा।

'रशीद भैया के घर ! जमीला भाभी इन्हें बहुत मानती है न, इसीलिए !'

'यह मानेगी नहीं काका···' जुगल ने कहा—'मैं यहीं खा लूंगा···अब शाम को ही घर जाऊंगा—तब तक तुम्हारी तबियत भी सम्हल जायेगी।'

'पण्डित भैया नाराज होंगे, बेटा···! कहेंगे, नीचों के घर

घुला-मिला रहता है।'

'उन्हें कहने दो, काका···मैं समझा लूंगा!'

'अच्छा तो चलो भीतर···' बेला ने कहा—'पहले तुम्हें परस देती हूं। तुम खा लो तो बाद में मैं खा लूंगी···'

'तुझे भूख नहीं लगी है क्या?'

'क्यों नहीं लगेगी···? मेरे में जान नहीं है क्या? रात में अपने लिए लिट्टी बनाई थी सो बापू खा गये। मैं तो खाली पानी पीकर लेट रही थी।' बेला बोली।

'तो फिर, जल्दी कर।' जुगल भीतर आकर पीढ़े पर बैठ गया।

महुए की पत्तल पर बेला ने दो लिट्टियां और थोड़ी-सी इमली की चटनी रखकर जुगल के आगे खिसका दिया।

एक लोटा पानी भी रख दिया।

'खाओ जुगल भैया···!' कहा उसने।

'और तू?'

'खाऊंगी क्यों नहीं?'

'कब खायेगी? इधर आ जल्दी, नहीं तो उठकर दो चपत लगा दूंगा। आज हम साथ-साथ खायेंगे।' जुगल ने कहा।

'तुम तो बड़े वैसे हो जी!' बेला कातिल मुस्कान मुस्कारा पड़ी—'अकेले क्या खाते नहीं बनेगा?'

'नहीं···अकेले मैं नहीं खा सकता···' और लपककर जुगल ने बेला का हाथ पकड़ लिया। खींचकर पत्तल के पास ला बिठाया। थोड़ी-सी लिट्टी तोड़ी और उसमें चटनी लगाकर उसने बेला के मुंह में ठूंस दिया।

'अब खाती चल सीधे से।' बोला वह।

'तुम भी खाओ जुगल भैया···!' खाते-खाते बेला ने कहा।

जुगल खाने लगा और बीच-बीच में बेला को भी खिलाने लगा। बचपन के बाद, उन दोनों के लिए यह पहला अवसर था, जबकि वे इस तरह साथ-साथ लिट्टी खाने बैठे थे।

बेला तो आनन्द से आत्मविभोर-सी हो रही थी। जुगल के हाथ का कौर उसे प्रतीत हुआ जैसे पसेरी भर चीनी से सना हुआ उसके मुंह में जा रहा है—बड़ा ही मीठा, बड़ा ही सुस्वाद लग रहा था वह बेला को।

'घुट-घुट क्या कर रही है रे—?' जुगल ने पूछा।
'प्यास लगी है और क्या ?'
'तो ले, पानी पी !' जुगल लोटा उठाने लगा।
'पहले तुम पी लो, जुगल भैया ? लोटा तो एक ही है।'
'तू पी ले—मुझे अभी प्यास नहीं लगी है।'
जुगल ने लोटा उठाकर बेला के मुंह से लगा दिया। बेला ने जी भरकर पानी पी लिया।
'अब बस।' बेला ने कहा।
'तो मैं भी थोड़ा-सा पी लेता हूं—!' जुगल उसी लोटे से पानी पीने लगा।
जुगल को अपना जूठा पीते देखकर, बेला के हृदय में अपनत्वपूर्ण स्नेह का तूफान उठ खड़ा हुआ। जुगल भैया उसके कितने अच्छे हैं—सोचने लगी वह।
जैसे बचपन के दिन अभी-अभी आकर चले गए हों—जैसे यौवन की दीवार छिन्न-भिन्न होकर ढह गई हो जैसे भेदभाव का भूत, छुआछूत का सांप, ऊंच-नीच की खाई—उस अपरिमित स्नेह के बहाव में, जाने कहां विलीन हो गए हों।
इसी तरह घुल-मिलकर दोनों खाना खाते रहे—विभोर होते रहे।
खा चुकने पर दोनों ने हाथ-मुंह धोया।
'चलो जरा काका को देख लें अब !'
बाहर आकर देखा उसने—बड़कू और उसकी स्त्री दोनों निद्रा में निमग्न हैं, जैसे उन्होंने बीमारी से छुटकारा पाकर निद्रा की गोद में शरण ले लिया था।
'काका-काकी सो रहे हैं···' जुगल ने कहा।'
'चलो, हम लोग बगीचे में चलकर बैठें, जुगल भैया !'
'हां···! अब तबियत इनकी सुधर रही है, नींद आना शुभ लक्षण है···इन्हें जगाना ठीक भी नहीं !' बेला ने जुगल का हाथ पकड़ लिया और बगीचे की ओर खींच ले चली।
दोपहर हो गई थी। सूर्य का गोला बीच आसमान से होकर पश्चिम की ओर लुढ़क रहा था।
'उस मड़ई में चलो, जुगल भैया।' बेला ने कहा।
'बगीचे के कोने में चिड़ियों से फलों की रक्षा करने के लिए

एक छोटी-सी मड़ई बनी हुई थी। बेला अकसर उसमें बैठा करती और 'हड़ाकड़ा हाड़ियां' करके चिड़ियों को उड़ाया करती थी।

सो उसी मड़ई मे आकर एक ही खटोले पर बैठ गए दोनों।

'भन्टा खाओगे, जुगल भैया ?' बेला ने पूछा।

'क्या कच्चा ही ?'

'हां, बड़ा अच्छा लगता है मुझे तो।'

'पड़ जाएगी बीमार तो भन्टा जैसी फूल जायेगी।'

'अच्छा जी ! भन्टा खाने से कोई बीमार पड़ता है कहीं ? इत्ते दिन से खा रही हूं। अभी तक तो कुछ नहीं हुआ।'

'खाना चाहती है तो जा तोड़ ला और चबा।' बोला जुगल।

बेला जाकर बैंगन की छोटी-छोटी तीन-चार बतिया तोड़ लाई।

'एक ले लो तुम भी, जुगल भैया…!'

'अच्छा दे ! मानती नहीं तभी तो गुस्सा चढ़ता है मुझे…' जुगल ने झटके से भन्टा ले लिया।

बेला जल्दी-जल्दी भन्टा खाने लगी। जुगल ने भी थोड़ा-सा खाया और बाकी बेला की आंख बचाकर फेंक दिया।

इसी तरह दोनों में घंटों बातचीत होती रही।

'चलो भैया ! बापू को देख लें।' बेला ने कहा।

'नहीं…! उन्हें जी भरकर सोने दे। शाम के लगभग चलेंगे यहां से, मुझे नींद आ रही है…'

'तो सो रहो खटोले पर।' बेला बोली।

पैर पसारकर जुगल लेट गया और सोने का उपक्रम करने लगा। थोड़ी-थोड़ी नींद आ रही थी उसे कि बेला ने उसकी नाक में तिनका डाल दिया। छींककर उठ बैठा वह।

'क्यों रे ! सोने नहीं देगी ?'

'सोते क्यों नहीं…? रोकता कौन है ? घर्र-घर्र नाक तो न बजाओ ! ऐसा मालूम पड़ता है जैसे पिल्ला गुर्रा रहा है…!' और हंस पड़ी बेला।

'मुझे सोने दे, नहीं तो सीधे घर चल दूंगा…' जुगल ने कहा।

'अच्छा जी ! तो अभी घर चले जाओ…और जब पंडित

काका मारने लगें तो रोते हुए फिर यहां चले आना...मैं आंसू पोंछ दूंगी।'

'तू इतनी बड़ी हो गई, मगर टिटिहरी की तरह तेरा टी-टी करना नहीं गया।'

'तुम भी तो गिरगिटान की तरह मूड़ी हिलाते हो, जैसे गदेलेपन में हिलाया करते थे...'

'चुप भी रहेगी या नहीं...' बिगड़कर बोला जुगल—'तेरी मूड़ी तो बकुलों जैसी है!'

'अच्छा-अच्छा रहने दो, अपने को देखो—नाक तुम्हारी सुग्गे जैसी टेढ़ी है...'

'और तेरी आंखें कबूतर की तरह कंजी हैं।'

'और तुम्हारे दांत कूकुर की तरह बड़े-बड़े और नुकीले हैं...'

'तेरी जीभ जैसे काली माई की तरह है।'

'तुम्हारे बाल साही के कांटे की तरह हैं।'

'और तेरा झोंटा जैसे सरपत की घास!'

'तुम्हारे पर जैसे सरपत के डंठल!'

'खड़ी रह शैतान कहीं की!' उठकर जुगल ने भागती हुई बेला का झोंटा पकड़ लिया—'तेरी जीभ बढ़ती जा रही है आजकल!'

'तुम भी तो बिचिल फार्ट बनकर जब से आये हो, बातूनी हो गए हो...पहले तो केले के पेड़ की तरह एकदम सीधे थे तुम!'

'अच्छा चुप रहती है या नहीं?'

'नहीं तो क्या कर लोगे तुम?' बेला ने मुंह चिढ़ाते हुए कहा।

'देख मुंह चिढ़ायेगी तो मार बैठूंगा।'

'अच्छा जी! तो मेरे हाथों में दही थोड़े ही जमी है। ले मार तो!'

'तुम्हीं मार के देख लो।'

'ले...!' झोंटा छोड़कर एक चपत जड़ दी जुगल ने।

'लो...!' बेला ने भी जुगल के सर में ठोंक दिया।

'और यह ले!' जुगल ने जो लंगी मारी कि बेला धम्म से

जमीन पर आ गिरी।

'अरे बाप रे···' बेला चीख उठी।

'क्या हुआ रे ?'

'जाओ जुगल भैया ! तुम तो खेल-खेल में लंगी मारते हो···मेरा घुटना फूट गया, यह देखो—!' दर्द से बेला की आँखें भर आईं।

जुगल ने उसे उठाकर खटोले पर ला बिठाया और उसका घुटना सहलाने लगा।

'रहने दो जी···! बड़े आये हो आग लगाकर पानी का छींटा मारने ! जैसे मेरा घुटना तुम्हारे सहलाने से ही अच्छा हो जायेगा।'

'रूठ गई बेला !'

'रूठो तुम जी ! मैं क्यों रूठने लगी ? बोलो कबड्डी खेलोगे ?'

'अरे ! अभी घुटना पकड़कर सी-सी कर रही थी···अब कबड्डी खेलेगी ?'

'अब तो दरद अच्छा हो गया, जुगल भैया···! आओ थोड़ी देर कबड्डी खेल लें···' बेला ने कहा—'बहुत दिन खेले हुआ।'

'मैं तो भूल गया रे।'

'चलो मैं बताऊंगी।'

बेला ने बीच से एक लाइन खींच दी। बोली, 'यह दो पाले बन गये।'

लाइन के एक ओर बेला खड़ी हुई और दूसरी ओर जुगल।

'तेरे पेट में कितने गोले ?' जुगल ने पूछा।

'अच्छा जी ! तो तुम जानते हो···? फिर क्यों कहा था कि भूल गया सब···?' बेला ने धमकी भरे स्वर में कहा—'अच्छा चलो माफ किया, मेरे पेट में चार गोला और तुम्हारे भी चार···'

'ठीक है···आ तू पहले।'

बेला लाइन के पास आकर खड़ी हो गई और जमीन पर से थोड़ी-सी धूल उठाकर हवा में उड़ाती हुई बोली—'यह क्या उड़ा ?'

'अनार।' जुगल ने कहा।

'अपने गोइयां सम्भालो।' बेला ने कहा।

और जुगल की ओर यह कहती हुई दौड़ी—'छैल कबड्डी आईला····राम के मनाईला····घुनघुनवा बजाईला····बजाईला···।'

सांस रोककर कहे जा रही थी बेला और जुगल को छूने का प्रयत्न कर रही थी।

सांस टूटने को हुई तो वह दौड़कर अपने पाले में चली गई।

अब जुगल दौड़ा उसके पाले की ओर, यह कहता हुआ बढ़ा—'कुइयां में काई···ननद भौजाई···।'

कहते-कहते जुगल ने बेला को छू दिया और अपनी ओर भाग आया। बोला—'एक गोला मर गया न तेरा?'

'चलो अभी तीन हैं···।' बेला ने कहा—'सम्भलना अब। छैल कबड्डी अंगना भेड़ मरे बभना, कसैया मारे गैय्या··· मियांजी की बकरी हजम होइ जाय···जाय···।'

ज्योंही जुगल को छूकर उसने भागना चाहा, त्योंही दौड़कर जुगल ने उसे पकड़ लिया। लाइन के पास बेला मुंह से 'जाय-जाय' रटती रही ताकि सांस न टूटे। मगर जुगल उसे कसकर पकड़े हुए था। अन्त में उसकी सांस टूट गई।

'छोड़ दो, जुगल भैया! एक और गोला मरा···।' बेला ने कहा।

'औड़ी बोल···।'

'औड़ी क्यों बोलूं?'

'नहीं बोलती, तो ले—।' जुगल उसका हाथ ऐंठने लगा।

'उइ मां! हाथ टूटा···औड़ी, औड़ी···अब तो छोड़ दो।'

जुगल ने हाथ छोड़ दिया। बेला हांफती हुई बोली—'तुम तो जैसे मेरा हाथ तोड़ बैठे थे···।'

'तू औड़ी क्यों नहीं बोली तब?'

'तीन बार औड़ी-औड़ी बोल चुकी थी मैं, मगर तुम सुनो तब न? जाओ, मैं नहीं खेलती···मेरा हाथ पिराने लगा, हां नहीं तो···।'

'इसी बल पर कबड्डी खेलने चली थी?' जुगल ने उसे

चिढ़ाते हुए कहा।

'मैं क्या जानूं कि तुम हाथी की तरह पहलवान बन गये हो···लड़कई में उठा-उठाकर पटकती थी, सो भूल गये ?'

इसी तरह उन दोनों वयस्क प्राणियों का लड़कपन का खेल चलता रहा।

और उधर ! वे दोनों रोगी, सोये ही रहे। दोपहर जब हुई तो किसी ने पुकारा—'बड़कू···! ओ बड़कू !'

बड़कू की नींद उचट गई। उसने कथरी हटाकर देखा फिर उठने का उपक्रम करता हुआ बोला—'अरे भैया रामसरन ! कहो, कैसे आये ?'

'उठो मत, उठो मत तुम बड़कू···!' मचिया पर बैठता हुआ रामसरन बोला—'मैं इसी मचिया पर बैठ जाता हूं।'

'आज फिर कुछ सजा देने आये हो क्या, जमादार ?'

'बोली बोलते हो बड़कू ! क्या करूं भाई, पेट की खातिर नौकरी कर रखा है तो ठाकुर के इशारे पर नाचना ही पड़ता है, न नाचूं तो रात में हम पर ही डण्डे बरसने लगें।'

'ठीक कहते हो, भइया तुम ! तुम्हारा क्या कसूर ? तुम तो चाकर हो न ? जो मालिक कहेंगे वही तो करोगे···।' बड़कू ने गहरी सांस लेकर कहा।

तब तक बेला की मां की नींद भी खुल गई। उठकर बैठती हुई बोली—'के है हो ?'

'रामसरन भइया हैं बेला की माई !' बड़कू बोला—'बीमारी की बात सुनकर देखने चले आये बेचारे।'

'क्या करूं बड़कू ?' रामसरन ने कहा—'जब से सुना है कि तुम बीमार पड़ गये हो तब से अपने हाथों को पचासों बार जमीन पर पटक चुका हूं।'

'काहे भइया··· ?' बेला की मां ने पूछा।

'अरे बेला की माई ! कल मुन्शी के सामने इन्हें मारा न होवा तो ये काहे इतना बीमार पड़ते।'

'राम कहो जमादार···!' कराहती हुई खटीकन बोली—'भला किसी के मारे कोई बीमार पड़ता है ! सब करम का फेर है भइया !'

'ठाकुर ने भी जब से सुना है तुम्हारी बीमारी की बात,

बड़कू ! तब से उन्हें भी बड़ा अफ़सोस है। मुझे बुलाकर पूछने लगे—उसे बहुत ज्यादा मारा था, रामसरन···? मैंने कहा, सरकार मुन्शी के हुकुम से तो मारा था···तो ठाकुर तुरन्त मुन्शीजी को बुलाकर फटकारने लगे—कहने लगे, बड़कू हमारा पुराना आसामी है, उस पर हाथ छोड़ने की क्या जरूरत थी? यह मुंशिया साला पूरा हरामी है, बड़कू ! सरकार का इसमें कोई दोष नहीं।'

'ठीक कहते हो भइया !'

'मैंने कहा कि सरकार ! मुन्शीजी ने बड़कू के बगीचे का सारा फल तुड़वा मंगवाया है तो सुनते ही आगबबूला हो गये और फौरन ही मुन्शीजी को बाहर निकल जाने का हुक्म दे दिया।'

'अच्छा ?'

'और नहीं तो क्या ?' रामसरन कहने लगा—'फिर ठाकुर ने मुझसे पूछा कि कितना नुकसान हुआ होगा बड़कू का, तो चट से मेरे मुंह मे निकल गया, बीस रुपये का···क्या करूं बड़कू ! हांकना चाहता था पचास, मगर मुंह से निकल गया बीस। ठाकुर ने तुरन्त बीस रुपये निकालकर मुझे दे दिये और कहा, इन्हें अभी बड़कू को दे आओ।'

'ठाकुर राजा हैं, हमारे जमींदार हैं, हमारी खोज-खबर वे न लेंगे तो कौन लेगा ?' बड़कू ने कहा।

'लो ये बीस रुपये, सम्भाल कर रखो इन्हें···।' रामसरन ने रुपये उसकी चारपाई पर रख दिये।

'क्या करूंगा इन्हें लेकर जमादार ?'

'काम ही आयेंगे भाई···रख लो।'

'तुम्हारी कृपा ही बहुत है, रामसरन भैया ! सरकार की और तुम लोगों की दया बनी रहे बस, यही बहुत है मेरे लिये।'

'मगर ये रुपये तो तुम्हें रखने ही होंगे।' रामसरन बोला।

'तुम्हीं रख लो भैया !' बड़कू बोला।

'राम-राम, यह क्या कह रहे हो बड़कू ? नौकरी को छोड़कर एक पैसा भी घूस खाना हराम है मेरे लिए···गऊ कसम ! मैं किसी से रुपये नहीं लेता।'

'मैं गरीब आदमी तुम्हें क्या घूस दे सकता हूं, जमादार····!

यह तुम्हारा ही अंश है, इसे रख लो···बस, नजरगोटी न करना यही विनती है···।'

'ताबेदारी चाहे जो कोई करा ले, बड़कू···! रामसरन के कलेजे में लोहा थोड़े ही भरा है···मैं तो लोगों को फूलते-फलते देखना चाहता हूं···मगर यह मुंशिया साला, खैर ! जब तुम कह रहे हो, तो मैं ये रुपये रख लेता हूं।'

'हां, रख लो सरकार···! जुग-जुग जिओ तुम।' बेला की मां आशीर्वाद देने लगी।

उन दोनों निष्कपट प्राणियों को रामसरन साक्षात् देवता का अवतार मालूम पड़ा। रामसरन ने एक बार इधर-उधर सतर्क आंखों से देखा। फिर धीरे से पूछा—'बेला कहां है, बड़कू ?'

'बगीचे में होगी, भैया !' बड़कू ने कहा।

'अरे···· एक चीज तो भूले ही जा रहा था मैं।' रामसरन बोला।

'क्या चीज, जमादार ?' पूछा बड़कू ने।

'सरकार ने तुम्हारे लिए यह दवाई भिजवाई है।'

'सरकार ने···?' जैसे बड़कू को अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था।

'हां-हां···! मुझे भरी दोपहरी में वैद्य के यहां भेजकर यह दवा मंगवाई है···।' रामसरन जेब में से पुड़िया निकालते हुए बोला—'लो इन्हें अभी खा लो···।'

'सरकार की बड़ी दया है हम गरीबों पर जमादार···।' बड़कू ने कहा—'मगर अभी तो जुगल बचवा ने दवा खिला दी है···।'

'कोई हर्ज नहीं····वैद्य ने कहा था कि यह दवा किसी दूसरी दवा को नुकसान नहीं पहुंचायेगी, उलटा उसे बल देगी। अरे बड़कू ! जुगल की बात और है···वैद्य तो वैद्य ही है। बड़े भारी वैद्य हैं। उनके यहां जब मैं पहुंचा, तो मैंने देखा कि पचासों रोगी उनके आस-पास भिनभिना रहे थे मक्खियों की तरह··· एकदम मक्खियों की तरह, बड़कू !'

'ऐसा है तो दे दो, खा ही लूं भैया···! चटपट अच्छा होकर काम-धन्धा करने लग जाऊं, तो जुग-जुग तक तुम्हारा गुन

गाऊंगा जमादार !'

एक पुड़िया रामसरन ने बड़कू के हाथों पर रखकर कहा, 'इसे जीभ पर रखकर एक घूंट पानी पी लो···बस, बेड़ा पार हुआ समझो।'

'नीचे लोटे में पानी रखा है···तनिक उठा दो, भैया···!' बड़कू ने पुड़िया खोलते हुए कहा।

रामसरन ने लोटा उसे दे दिया। बड़कू ने पुड़िया की दवाई मुंह में डालकर, दो घूंट पानी पी लिया—'कड़वी है, जमादार !' बोला वह।

'दवाई है न ? मीठी थोड़े ही होगी !'

'मेरी भी तबियत ठीक नहीं है, जमादार !' बेला की मां ने कहा।

'क्या हुआ है तुझे बेला की माई ?' रामसरन ने पूछा।

'कुछ न पूछो भैया, रामसरन···!' बड़कू बोला—'रात भर यह भी बुखार में तपती रही है, इसे तो चेत ही नहीं था कुछ।'

'अच्छा···!' आश्चर्य में भरकर बोला रामसरन—'तो ले बेला की माई, एक पुड़िया और है, तू भी खा ले।'

'धन्न हो जमादार··· ! महामाई करे, सौ बरिस जिओ !' कहकर बेला की मां ने पुड़िया ले ली।

मुंह में रखकर पानी के बल घोंट गई वह भी।

कहने लगी—'पुराखर हो, बहुत तीखी हव ई दवइया।'

'कहता न था बेला की माई ! रामसरन भैया असली दवाई लाये हैं··· बड़े भारी वैद्य की दवा है।'

'बड़कू ! अब तुम दोनों आराम से सो जाओ···बहुत गहरी नींद लगती है इस दवा से।'

'हां, नींद तो लग रही है भैया !'

'तो सो रहो। मैं भी चलता हूं। बड़ी देर हुई आये···।' कहकर रामसरन अपना बड़ा-सा लट्ठ कन्धे पर रखकर चलता बना।

न उसे किसी ने आते देखा था और न जाते।

वह हत्याकारी नरपिशाच, दो असहाय प्राणियों को जहर देकर झूमता हुआ चला जा रहा था।

बड़े-बड़े कवि कल्पना की उड़ान पर चढ़कर, गांव की महिमा का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है—
क्यों न इसे सबका मन चाहे ?

मगर वे कवि—कल्पना के पुजारी, सत्य से कितनी दूर हैं ? आकर वे देखें कि स्वर्ग कहलाने वाले गांवों में क्या-क्या अनाचार, क्या-क्या कुकृत्य और क्या-क्या नृशंस कार्य नहीं होते।

कल्पना की चादर से सिर निकालकर वास्तविक चित्र देखने पर उनकी आंखें खुली की खुली रह जायेंगी···वे देखेंगे कि उनकी कल्पना के गावों में न सुख है, न शान्ति है, न हंसी है न खुशी है···दुःख, चीत्कार, रुदन, वैमनस्य, घृणा आदि की ही प्रधानता है।

प्रसन्नता से फूलता हुआ रामसरन हवेली पहुंचा।

'आ गये रामसरन ?' ठाकुर ने पूछा।

'हां अन्नदाता !'

'दे दिया ?'

'हां सरकार ! शाम तक दोनों ठण्डे हो जायेंगे।'

'वाह रामसरन !' प्रसन्नता से बोले ठाकुर—'तुम्हें क्या इनाम दूं ?'

'जो राजा की मर्जी !'

'लो—यह अंगूठी !' ठाकुर ने हाथ की छः माशे की अंगूठी रामसरन को दे दी।

'बन गया मालिक ! जनम बन गया ! पेट भी भर गया सरकार ! आप न खबर लें तो हम भूखों मर जायें, राजा !' रामसरन को जैसे अमूल्य निधि मिल गई थी।

'किसी ने देखा तो नहीं रामसरन ?' पूछा ठाकुर ने।

'कोई देखता तो गला उतार लेता उसका सरकार ! इत्मिनान रखिये, मुझे किसी ने नहीं देखा।'

'ठीक है—अब तुम जाओ। कल सवेरे जाकर मातमपुर्सी कर आना, समझे।'

'मैं खुद ही जाने वाला था सरकार ! मगर अब तो आपका हुकुम भी मिल गया।'

रामसरन बाहर जाने लगा। एक पैर उसका अभी दरवाजे के बाहर और दूसरा पैर चौपाल के भीतर ही था कि ठाकुर ने पुकारा—'रामसरन !'

'जी सरकार।' लौट आकर बोला वह।

'मुंशीजी हैं कि चले गये ?'

'अभी तो देखा नहीं सरकार।'

'देखो—बैठे हों तो भेज दो उन्हें···।' ठाकुर ने आज्ञा दी।

'अभी भेजता हूं, मालिक।'

मुंशीजी के कमरे में वह जाने लगा तो बाहर बैठे सरजू ने हाथ आगे कर रोक दिया—'अभी नहीं, अभी नहीं उस्ताद।'

'अभी नहीं, आखिर क्यों ?' रामसरन आश्चर्य में भरकर बोला। ऐसी आज्ञा तो उसे किसी ने नहीं दी कभी तो यह सरजू, उसका शागिर्द उसे क्यों रोक रहा है ?

'तुम तो उस्ताद समझते नहीं।' सरजू ने कहा—'पलटू की बहन सुखिया आई है।'

'दिन-दहाड़े ?'

'तारीफ तो यही है।'

बातचीत हो ही रही थी, तभी आंचल में मुख छिपाये हुए सुखिया बाहर निकली और इन दोनों पर एक तीखी कटार फेंकती हुई चली गई।

'कितना दिया सरकार ?' भीतर आकर उसने पूछा मुन्शी जी से।

'किसे ?'

'सुखिया को···और किसे ?'

'वह तो मालगुजारी देने आई थी, रामसरन।' मुन्शीजी अपना चश्मा ठीक करते हुए बोले।

'मगर कितनी मालगुजारी ले गई यह तो बताओ बाबू ? बड़े रुपये बांट रहे हो आजकल। लाओ, पांच तो इधर भी बढ़ाओ।'

'तुम तो जब देखो तब झगड़ने लगते हो, रामसरन।' मुंशी जी ने दीन स्वर में कहा।

'झगड़ने की बात नहीं है, बाबू ! पांच वह ले गई तो पांच मुझे भी दो।'

'लो···तुम तो एकदम भूत की तरह सर पर सवार हो जाते हो···।' बिगड़कर मुंशीजी ने पांच रुपये का नोट रामसरन के सामने फेंक दिया।

'सरकार आपको बुला रहे हैं।'

'क्या उन्होंने देख लिया है, रामसरन ?'

'देख लिया है, तभी तो बुलाया है—चलिये जल्दी।'

मुंशीजी की रूह कांप उठी।

'मैं क्या जवाब दूंगा रामसरन जब ठाकुर पूछेंगे कि···।'

डरते-कांपते मुंशीजी ठाकुर की चौपाल में आये और ऐसे अदब के साथ झुककर जुहार किया जैसा कभी नहीं किया था।

ठाकुर मुस्कराने लगे। उन्होंने सोचा कि रामसरन से सफलता की बात सुनकर ही मुंशीजी ने ऐसी नम्रता प्रकट की है।

और उनकी मुस्कराहट देखकर मुन्शीजी की जान में जान आई।

'किसलिये बुलाया है सरकार ?' उन्होंने पूछा।

'अरे भाई सफलता हाथ लगी है, इसलिये बुलाया है। तुम भी हाजिर रहना मुंशीजी।' ठाकुर ने कहा—'आज शाम को छनेगी गहरे में।

'भला मैं सरकार की जूती को छोडकर कहां जा सकता हूं ? रामसरन को सामान जुटाने के लिए भेज दूं ?'

'हां अभी—इसी समय।'

जबकि गरीबी से सने दो अभागों की जान सोते-सोते निकल रही थी—तब हवेली में बोतलें खुल रही थीं। खुशियां मनाई जा रही थीं।

बचपन के साथी जुगल और बेला, जब बातें करते-करते खेलते-कूदते थक गये तो झोंपड़ी में लौटे।

'अरे, बापू-माई तो उठे ही नहीं।' बेला आश्चर्य में भरकर बोली।

'शायद बीच में उठे रहे हों, और फिर सो गये हों।' जुगल ने कहा।

'तनिक इन्हें जगाऊं भैया ?' पूछा बेला ने।

'धीरे से जगा—अगर न उठें तो सोने दे।'

बेला ने दद्दू के पास जाकर पुकारा—'बापू···! ओ

बापू !'

'माई···! ओ माई !'

दोनों में से कोई नहीं जागा। बेला ने प्रश्नसूचक दृष्टि से जुगल की ओर देखा।

'चलो बेला, इन्हें सोने दो। सोने से इनकी तबियत जल्दी अच्छी हो जायेगी।'

दोनों भीतर आकर खटोले पर आ बैठे।

'लिट्टी बनाऊं जुगल भैया ?' बेला ने पूछा।

'भूख तो नहीं है, बेला।'

'दोपहर के खाये हो और अब अन्धेरा हो चला है, फिर भी भूख नहीं लगी तुम्हें ? एक लिट्टी खा लो न, जुगल भैया !'

'घर नहीं जाने देगी क्या मुझे ?'

'बापू-माई सो रहे हैं—मुझे अकेले डर लगेगा। वे जग जायें तब जाना। पण्डित काका बिगड़ेंगे तो नहीं, भैया ?'

'बिगड़ेंगे तो जरूर, मगर मैं जाऊंगा नहीं, अभी बड़कू काका को दवा भी तो देनी है ?'

'तो मैं लिट्टी बना लूं ?' बेला उठी और बाजरे का आटा गूंधने लगी।

'तुम तब तक थोड़ी-सी चटनी पीस लो, जुगल भैया !' उसने कहा।

चुपचाप जुगल चटनी पीसने लगा। लिट्टी बन गई तो दोनों ने दोपहर की तरह साथ-साथ खाया और खटोले पर लेटकर बातें करने लगे।

दिन भर के थके-मांदे थे वे, जल्दी ही नींद आ गई। सब कुछ भूलकर वे अल्हड़ साथी निद्रा की गोद में विश्राम करने लगे।

सारी रात बीत गई। तीसरे पहर का अन्धकार जब आकाश के आंचल में छिपने लगा तो जुगल की नींद टूट गई। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। एक भयानक स्वप्न देख रहा था वह।

उठकर उसने अपने चारों ओर देखा, फिर धीरे से बेला को हिलाकर जगाया उसने। बेला केवल ऊं-ऊं करके ही रह गई।

'उठ बेला ! सवेरा हो गया…तेरा मुर्गा चिल्ला रहा है।'

'आं…सवेरा हो गया ? क्या रात बीत गई, जुगल भैया ?' बेला चटपट उठ बैठी।

'हां रे हां, चल उठ ! काका को देख आयें, शायद जाग गए हों ?'

'जगे होते तो पुकारते जरूर।' बेला बोली।

'पुकारा होगा, नींद में शायद हमने सुना ही न होगा। ला थोड़ा-सा पानी दे—हाथ-मुंह धो लूं।' जुगल ने कहा।

बेला ने पानी लाकर रख दिया। जुगल ने मुंह धोया और बेला ने भी। फिर दोनों साथ-साथ बाहर आये।

देखा—वे दोनों रोगी दीन-दुनिया की सुध भूलकर सो रहे थे—सो गए थे हमेशा के लिए।

'बड़कू काका…!' जुगल ने कुछ तेज स्वर में पुकारा।

परन्तु उत्तर न मिला। दोनों में से कोई सगबगाया तक नहीं।

'बड़कू काका !' पुकार कर जुगल ने बड़कू की कथरी हटाई और उसे धीरे से हिलाया।

बदन पर हाथ पड़ते ही वह चौंक पड़ा। आंखों में भय-मिश्रित आशंका उभर आई, परन्तु धुंधलके के कारण बेला न देख सकी।

जुगल के बदन का सारा खून जैसे जम गया। उसने बड़कू की छाती पर हाथ रखा—नाक के पास उंगली ले गया। धड़कन बन्द थी—श्वास की गति जैसे कहीं उड़ गई थी। जुगल के पैर लड़खड़ा उठे। उनके जागने में देर होते देख बेला भी आशंकित हो उठी।

'क्या है जुगल भैया—?' पूछा उसने।

'कुछ नहीं—।' बड़े कष्ट से जुगल ने केवल इतना कहा। परन्तु उसके स्वर में मौत जैसी भयानकता थी, जो बेला से छिपी न रही।

जुगल ने बेला की मां का स्पर्श किया। उसका भी बदन ठण्डा था—जीवन के कोई लक्षण न थे। मस्तक पकड़कर जुगल वहीं जमीन पर बैठ गया। जुगल को पराजित कर, उसके मुंह पर तमाचे मार, मौत की विभीषिका अपना शिकार ले उड़ी

थी—।

एक शिकार नहीं ! एक साथ दो-दो शिकार ! दो-दो जान !

'भैया···क्या हुआ जुगल भैया···?' बेला जैसे सब कुछ समझ गई थी। उसकी आवाज कांप रही थी। दारुण रुदन फूट पड़ना चाहता था।

'जुगल भैया···! बोलो जुगल भैया ! तुम चुप क्यों हो गये हो ?'

'काका और काकी···।'

'क्या हुआ उन्हें भैया ? क्या तबियत ज्यादा खराब हो गई है ?'

'मेरी बेला···!' लपककर जुगल ने बेला को कलेजे से दबा लिया।

'काका और काकी अब नहीं रहे।'

'जुगल भैया···।' बेला चीख पड़ी।

'सुन तो बेला···अरे सुन तो।'

मगर बेला ने जैसे सुना ही नहीं। वह दौड़कर बड़कू के निर्जीव शरीर पर गिर पड़ी पछाड़ खाकर। रोने लगी—'ओ बापू ! ओ माई।' जुगल किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। उसका हृदय भी जोरों से आर्तनाद कर उठना चाहता था। परन्तु अनाथ बेला को सम्भालना भी उसके लिए बहुत आवश्यक था। बेला निराश्रित हो गई थी। उसके जीवन का आधार एकाएक धराशायी हो गया था। जुगल ने बलपूर्वक बेला को उठाया।

वह उठती हीं न थी। गोद में उठाकर वह उसे झोंपड़ी के भीतर ले आया। खटोले पर बैठाकर सान्त्वना देने का प्रयत्न करने लगा।

बेला रोती रही—'अरे मोरे बापू, किसके सहारे छोड़े मोरे बापू···!'

'बेला···चुप हो रह बेला···।'

'चलती समैया न बोले मोरे बापू। तनिको धीर न धराये मोरे बापू···। अपनी बिटिया से नतवा तोड़ चलि गइलऽ··· केकरे महरवा मैं जीबैं, मोरे बापू···!'

'बेला···रोकर जान मत दे···मैं हूं न तेरे पास !'

'अरी मोरी माई···! कवन कसुरवा मैं कियो मोरी माई! हमें निरधनिया बनाये मोरी माई···! आपन अग्ररवा छोड़ाये मोरी मैया···।'

करुण रुदन सुनकर जुगल अपने को सम्भाल न सका। बेला को कलेजे से लगा, वह भी सिसकने लगा। आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बह निकली। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि ये दो-दो मौतें कैसे एकाएक हो गईं।

जुगल को रोते देख बेला कुछ चैतन्य हुई। अपने जुगल भैया को रोते नहीं देख सकती थी वह। धोती की छोर से उसकी आंखें पोंछकर वह बोली—'चुप रहो जुगल भैया···! बापू-माई तो छोड़ ही गये, तुम भी रोने लगोगे तो मुझको धीरज कौन बंधायेगा?'

अपनी कमजोरी पर जुगल को पश्चाताप हुआ। बोला—'बेला तू यहीं बैठ···! मैं जरा बाहर जाता हूं। धीरज रख। आंसू बहाने से कुछ होगा नहीं···।'

जुगल बाहर आया, परन्तु यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ कि आस-पास का कोई भी व्यक्ति दरवाजे पर नहीं आया है, यद्यपि बेला जोरों से रो रही थी। कदाचित प्लेग होने की बात सुनकर सभी भयभीत हो उठे थे।

अब जुगल के सामने विकट समस्या आ पड़ी। वह अकेला है और लाशें दो—कैसे क्या करेगा, वह?

वहीं जमीन पर चिन्ता में निमग्न बैठ गया।

'जुगल पण्डित···!' किसी ने पुकारा। जुगल ने सिर उठाकर देखा तो रामसरन खड़ा था गंभीर मुख लिए।

रामसरन जुगल के पास आकर बैठ गया। बोला गंभीर स्वर में—'अजी कल सुना कि तबियत खराब है, आज सुन रहा हूं कि चल बसे···जिन्दगी का भी कोई ठिकाना नहीं, जुगल पण्डित!'

'इनके मरने की खबर तुम्हें कैसे लगी, रामसरन?'

'सारे गांव में शोर हो गया है, पण्डित! कौन नहीं जानता इस बात को?'

'फिर भी देखो, कोई आया नहीं दरवाजे पर।'

'प्लेग से सब डर गए हैं—सोचते हैं, कौन अपनी जान देने

जाए···? ये गांव वाले सीधे थोड़े ही आ सकते हैं? कहो तो दो-चार डण्डे लगाकर पकड़ लाऊं दस-पांच को···।' रामसरन ने कहा।

'नहीं रामसरन ! लाठी के बल पर किसी की सद्भावना मैं नहीं चाहता।'

'तुम तो भोले हो, जुगल पण्डित ! गांव वाले पूरे हरामी हैं। दो-दो लाशें पड़ी हुई जानकर भी कोई झांकने तक नहीं आया।'

'क्या किया जाए, रामसरन ?'

'तुम तनिक ठहरो, जुगल पण्डित ! मैं सरकार से हुक्म लेकर लठैतों को बुला लाता हूं।'

'ठाकुर आज्ञा दे देंगे ?' अविश्वास भरे स्वर में जुगल ने पूछा।

'क्यों नहीं देंगे ? वे भी सब सुन चुके हैं। मुझे भेजा कि जाओ मातमपुर्सी कर आओ और बेला को धीरज रखने की कह देना।'

जुगल को ठाकुर की सहृदयता पर विश्वास तो नहीं हुआ, परन्तु इस समय किसी न किसी तरह काम निकालना ही था। अतः बोला—'अच्छा जाओ, बुला लाओ ?'

रामसरन के जाने के बाद जुगल ने बड़कू खटीक की लाश चारपाई पर से उतारकर जमीन पर रखनी चाही, परन्तु सफल नहीं हो सका अकेले। मनुष्य के शरीर से जब पंछी उड़ जाता है तो उसका वजन दूना हो जाता है।

थोड़ी ही देर में सात-आठ लठैतों के साथ रामसरन लौट आया। किसी के हाथ में लकड़ी का कुन्दा था तो कोई सरपत या फूंस लिए हुए था। रामसरन दो लम्बे बांस ले आया था।

'लो जुगल पण्डित—!' बोला वह—'सरकार ने यह बांस और इतनी लकड़ियां हवेली से दी हैं और कहा है कि और जरूरत पड़े तो हमारे बगीचे से काट ले जाना—कितने ही सूखे पेड़ खड़े हैं।'

बड़कू की लाश जमीन पर उतारी गई। नहला-धुलाकर अर्थी पर रख दिया गया। बेला की मां की लाश भी दूसरी अर्थी पर रखी गई। फिर 'राम नाम सत्य है' चिल्लाते हुए

लठैत दोनों अर्थियां उठाकर नदी की ओर चल पड़े, जो कोस भर की दूरी पर थी।

जुगल ने भी बड़कू की अर्थी में कन्धा लगाया। बेला रोती हुई पीछे-पीछे आ रही थी।

गांव वालों को ठाकुर की सहृदयता और लठैतों की सक्रियता देखकर महान आश्चर्य हो रहा था। ठाकुर और लठैतों के इस कार्य के पीछे कौन-सी भावना अन्तर्हित है, इसे तो केवल जुगल समझता था।

बेला तो जैसे जीते-जी ही मर गई थी। ऊंच-नीच सोचने का उसे अवकाश ही नहीं था। ऐसी विपत्ति के समय जो लोग उसका साथ दे रहे थे, वह उन सबको देवता ही समझ रही थी।

नदी के किनारे पहुंचकर चिता सजाई गई और दोनों लाशें उस पर रख दी गईं। जब बेला हाथ में जलती हुई फूस लेकर चिता में आग लगाने चली तो बरबस ही रो पड़ी। आंखों से चौधारे आंसू बह चले कि नदी की धारा मात हो गई।

चिता धू-धू कर जल उठी। उनके साथ ही जैसे बेला की सारी सुख-शान्ति भी जल उठी। जुगल ने उसे सम्भाला न होता तो वह अवश्य ही बेहोश हो जाती। पंचतत्व से निर्मित उनका शरीर जलकर—राख बनकर पंचतत्व में मिल गया। तब सब लोग नदी में स्नान कर घर की ओर लौट पड़े।

लठैत तो बीच रास्ते से ही हवेली को लौट गए। परन्तु जुगल बेला को सहारा देता हुआ, उसे समझाता-बुझाता उसके घर तक आया। बेला इस समय रो रही थी, परन्तु दुःख की आग अन्दर ही अन्दर सुलग रही थी।

'बेला!' जुगल बोला—'चुपचाप सो रह। नदी में नहाया है तूने। तेरा बदन कुछ गर्म लगता है।'

'तुम जा रहे हो, जुगल भैया?'

बेला के इस प्रश्न में कितनी वेदना, कितना रुदन और कितनी करुणा थी, इसे जुगल भली प्रकार समझता था।

'चलूं बेला···! कल सुबह से ही तेरे पास हूं। पिताजी बहुत ही गुस्से में राह देखते होंगे।' बोला वह।

'तुम न जाओ, जुगल भैया···! कैसे अकेली रह सकूंगी

मैं ?'

'पगली न बन, बेला ! मैं शाम को फिर आऊंगा। दुःख में रोना सुख में हंसना तो सभी जानते हैं ! मगर तुझे इसका उल्टा करना है। तुझे कोई तकलीफ न होगी, जब तक मैं हूं, जरूरत पड़ी तो तेरे लिए सब-कुछ छोड़ दूंगा।'

'ऐसा न कहो, जुगल भैया ! मुझ अभागिन के लिए तुम क्या-क्या छोड़ते फिरोगे ?'

'कह तो दिया कि सब-कुछ छोड़ दूंगा। पिताजी रूठें तो उन्हें भी ! इतने दिन तक मेरा-तेरा साथ रहा है, तो उसे अब कोई तोड़ नहीं सकता···समझ गई न !'

जुगल ने बेला को खटोले पर लिटा दिया और ऊपर से कथरी डाल दी, फिर दरवाजा बन्द कर बाहर निकल गया। उसके जाते ही कथरी के अन्दर बेला सिसकने लगी। उसके विश्वास की नींव डगमगा उठी थी। जब अपने मां-बाप ही धोखा देकर चले गये तो साथ खेलने वाले जुगल का क्या ठिकाना !

जुगल रास्ते पर तेजी से चला जा रहा था। घर से दो दिन तक गायब रहा है वह। उसके पिता उससे किस तरह पेश आयेंगे, सोचकर जुगल को भय लगने लगा। धड़कते हृदय, कांपते पैरों से जब वह दरवाजे पर आ खड़ा हुआ तो उसने देखा कि पुरोहित जी दरवाजे के सामने मचिया पर बैठे कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं। पास आकर देखा तो वह उसकी ही पुस्तक थी—'धर्म के नाम पर अत्याचार !'

जुगल को विस्मय हुआ कि उसके पिता वह पुस्तक क्यों पढ़ रहे हैं, आज ? अवश्य यह पुस्तक उनके क्रोध में वृद्धि कर रही होगी···अब वह क्या करे···? कैसे उनके क्रोध की आंच का सामना करेगा ?

दो-दो ग्रह उसके मार्ग में आ गये हैं—देखें, क्या बीतती है ?

जुगल ने पैर का चप्पल उतारा, तो आवाज सुनकर पुरोहित ने अपना सिर ऊपर उठाया और जुगल को एक बार ऊपर से नीचे तक ध्यानपूर्वक देखकर, पुनः हाथ की वह पुस्तक पढ़ने लगे।

'देखिये…!' एक पुस्तक उठाकर जुगल ने कहा—'यह है बेचारे किसान'—किसानों की दर्दनाक कहानी लिखी है इसमें, यह है 'समाजवाद'…इसमें महात्मा गांधी के विचार संग्रहीत हैं। यह है 'हरिजन'…यह है 'क्रान्ति सन्देश'…यह है 'मिल मजदूर'…यह है 'साम्राज्यशाही के अत्याचार'…यह है 'सिसकता भारत'…।' जुगल एक-एक पुस्तक उठाकर उसका नाम बताता गया।

'ठीक है…।' पुरोहित बोले—'मैं इन्हें पढ़ूंगा।'

'इन्हें देख लेने पर आपको सब-कुछ ज्ञात हो जाएगा, पिताजी…! आप देखेंगे कि आज की दुनिया संकीर्णता के बंधन तुड़ाकर कितनी दूर तक आगे जा चुकी है।'

'समझ भी सकूंगा इन्हें या नहीं…?'

'इनकी भाषा बहुत सरल है, पिताजी ! आप अच्छी तरह समझ लेंगे। जो न समझ आयेगा, उन्हें मैं समझा दूंगा।' बोला जुगल।

'तुम्हें फुर्सत रहेगी मुझे समझाने के लिये ?' पुरोहित का यह प्रश्न व्यंग्यपूर्ण था।

'मुझे करना ही क्या है, पिताजी…? अवकाश क्यों नहीं मिलेगा ?'

पुरोहित चुपचाप एक के बाद एक पुस्तक को उलट-पलट कर देखते रहे।

'आपने भोजन किया ?' पूछा जुगल ने।

'नहीं बेटे…।'

'क्यों पिताजी ? देर तो बहुत हो गई…?'

'क्या करूं…?' पुरोहित सिर उठाकर बोले—'प्रातःकाल जैसे ही उठा, वैसे ही रामू की माई ने बड़कू और बेला की मां के मरने की खबर सुनाई, फिर कैसे भोजन किया जा सकता है, बेटा !'

'कुछ फलाहार कर लिया होता, पिताजी ?'

'सोचा था कि तुम आने लगोगे तो बेला के बगीचे से कुछ फल लेते आओगे—सो तुम लाये ही नहीं ?' पुरोहित ने कहा।

'अब बेला के बगीचे में क्या रखा है ? परसों सब ठाकुर ने जबरदस्ती तुड़वा लिये थे, पिताजी !' बोला जुगल।

'क्यों ? क्या बात हुई ?' पुरोहित ने आश्चर्य में भरकर पूछा।

'मुझे पता नहीं।'

'परन्तु यह तो अनाचार है ?'

'ठाकुर जो न कर डालें थोड़ा है।'

'ठाकुर तुम्हारी बुराई करते हैं और तुम ठाकुर की···।' पुरोहित ने कहा—'मेरी समझ में नहीं आता कि तुम दोनों में दोषी है कौन ?'

'यह तो समय ही बता सकेगा, पिताजी···।' बोला जुगल।

'तुम तो अभी तक भूखे ही होगे ?'

'हां पिताजी···।'

'कुछ खाओगे नहीं क्या···?' पुरोहित ने पूछा।

'भूख ही नहीं है मुझको, मगर आपके लिए कुछ ला देता हूं···।'

'मेरे लिये तो कोई आवश्यकता नहीं···व्रत और उपवास करने की आदत है मुझे। तुम अवश्य कुछ खा-पी लो, निराहार रह जाने से स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ेगा तुम्हारे।'

'एक दिन भोजन न करने से कुछ नहीं होगा, पिताजी।'

'अभी जवान हो न, क्या मालूम पड़ेगा ? मालूम पड़ेगा वृद्धावस्था में, जब शरीर की सब इन्द्रियां शिथिल पड़ जाती हैं···जब सारे अंग-प्रत्यंग अपना काम ठीक से नहीं कर पाते।'

'तब तो आपको अवश्य ही खा लेना चाहिये, पिताजी !'

'तुम लाओ भी तो—मैं भी खा लूंगा···।'

'अभी लाता हूं।'

'आज घर आकर मुझे खिलाने का जिद्द ठान रहे हो, कल दिन भर तक बाहर ही भटकते रहे···सोचा भी नहीं होगा शायद कि पिताजी ने खा लिया होगा या भूखे ही सो रहे होंगे ?' बोले पुरोहित।

'मैंने सोचा कि आपने प्रतिदिन की तरह खा लिया होगा।'

'हां भाई, सभी जवान इसी प्रकार सोचा करते हैं। अपना पेट भर जाय, बाप चाहे भूखों मरे···! तुम तो छूआछूत का विचार रखते नहीं, जो जहां मिल गया खा लिया···मरण तो मेरी है, अपने हाथ से बनाऊं तब खाऊं—नहीं तो खाली पेट

पानी पीकर सो रहूं।'

'कल आपने भोजन नहीं बनाया था?'

'अरे, अब तक नहीं बनाया बेटा!' पुरोहित के मुख पर सूखी मुस्कान क्षण के लिए झलककर लुप्त हो गई।

'क्यों पिताजी?'

'तुम थे नहीं, तो खाना किसके लिए बनाता?'

'अपने लिये और किसके लिए?'

'इतने दिन तक तो सब-कुछ तुम्हारे लिए किया और अब बुढ़ाई में अपना सुख देखूं? क्या बात कहते हो, जुगल...?'

पिता कल से ही भूखे हैं और उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, सोचकर जुगल को बड़ी ग्लानि हुई। पैर में चप्पल और बदन में कुर्ता डालकर चल पड़ा। थोड़ी ही देर में दो सेर हरे सिंघाड़े गमछे में लिए वह लौट आया। चूल्हे में आग जलाकर उसने सिंघाड़ों को उबालने के लिए रख दिया। पुस्तक पढ़ते हुए पुरोहित कभी-कभी सिर उठाकर उसकी तत्परता देख लेते थे।

सिंघाड़े उबल गए, तो जुगल ने उन्हें चूल्हे पर से नीचे उतारा।

थोड़े-से सिंघाड़े छीलकर एक कटोरे में रखे और उनमें नमक मिलाकर उसने पुरोहित के आगे रख दिया।

'लीजिए पिताजी...और कुछ तो मिला नहीं, यही सिंघाड़े मिले...ले आया।'

'ठीक है, आओ तुम भी खाओ।'

'आप खा लीजिए, पिताजी! मैंने अपने लिए भीतर रख छोड़ा है...जाकर खाए लेता हूं।' जुगल ने कहा।

पुरोहित सिंघाड़े खाने लगे।

भीतर आकर जुगल बाकी सिंघाड़े छीलने लगा।

जब सब छील चुका तो थोड़ा-सा और पुरोहित को दे आया—बाकी छिले हुए सिंघाड़ों में नमक मिलाकर उसने गमछे में बांध लिया और बाहर निकला।

पुरोहित हाथ-मुंह धोकर पुनः पुस्तक पढ़ने लगे थे।

'अभी मैं बेला के यहां होकर आता हूं, पिताजी।'

'सिंघाड़े खा लिए तुमने?' पुरोहित ने पूछा और ध्यानपूर्वक जुगल के हाथ की पोटली देखी।

'अभी नहीं पिताजी...।'

कहकर जुगल तेजी से आगे बढ़ गया कि पुरोहित उससे कुछ और प्रश्न न पूछ बैठें। उसके चले जाने पर पुरोहित के मुख पर क्षण के लिए अव्यक्त मुस्कराहट दौड़ गई और फिर दूसरे ही क्षण विलीन भी हो गई।

जुगल हाथ में पोटली लिए चला जा रहा था बेला के घर की ओर। बेला अभी तक भूखी होगी—बिना उसे खिलाये जुगल पहले कैसे खा सकता था?

रास्ते में जुगल ने देखा कि गांव के खेतों में तेजी से झोंपडियां तैयार हो रही हैं—कदाचित् प्लेग के भय से गांव वाले घर छोड़कर बाहर निकलना चाहते थे। एक साथ दो प्राणियों का मर जाना उन्हें भयभीत करने के लिए पर्याप्त था—दूसरे आज हफ्तों से गांव में चूहे मर रहे थे और इस ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया था—आज सभी अपनी-अपनी जान बचाने की फिक्र में लग गये थे।

बेला की झोंपड़ी का दरवाजा अब तक बन्द था।

धीरे से खोलकर जुगल भीतर घुसा तो उसने देखा, बेला खटोले पर पड़ी सिसक रही है।

जुगल को देखकर उसने चटपट अपनी आंखें पोंछ लीं और उठ खड़ी हुई।

'यह चोरी कब से सीख ली, बेला?'

'कैसी चोरी जगल भैया?'

'यही आंसुओं का छिपाना! यह भी तो एक प्रकार की चोरी ही है...।' जुगय खटोले पर बैठ गया और बेला को भी अपने पास बिठा लिया।

'अब तक तू रोती थी न...?' जुगल ने पूछा।

'और करना ही क्या है अब...!'

'अच्छा ले, सिंघाड़े खा ले...।' जुगल ने बेला के आगे उबले हुए सिंघाड़े रख दिये।

'तुम भी खाओ भैया...!'

"मैं खा चुका हूं—तू खा ले।'

'तुम्हारा मुंह तो सूखा हुआ है, जुगल भैया!' बोली बेला—'तुम खाओ, नहीं तो मैं भी नहीं खाऊंगी।'

जुगल खाने लगा और बेला को भी खिलाने लगा। अनाथ बेला के लिए उसके हृदय में जाने कितना ममत्व उमड़ पड़ा था।

बेला की आंखें रोते-रोते लाल हो रही थीं। मुंह करुणा के उद्वेग से पीला पड़ गया था। पहले जैसी चंचलता नहीं रह गई थी उसमें। विपत्ति के वज्र ने उसे दस साल आगे ला पटका था।

सिंघाड़े खाकर हाथ-मुंह धोया दोनों ने।

'चल बेला! बगीचे में घूम आयें...।' जुगल ने उसका हाथ पकड़कर उठाया और वह लत्ते की तरह खिंचता चला गया। अमरूद के पेड़ के नीचे आकर दोनों बैठ गये।

बेला ने जुगल के कन्धे पर अपना सिर टिका दिया और एकटक आकाश पर उड़ती हुई छोटी-छोटी चिड़ियों की ओर देखने लगी।

कल तक वह भी इन्हीं की तरह उन्मुक्त होकर आकाश में विचरण करने की भावना रखती थी, परन्तु आज...! आज वह इतनी बड़ी हो गई है कि अपने सहारे बैठ भी नहीं सकती।

६

धीरे-धीरे दो सप्ताह बीत चले।

माता और पिता का अभाव बेला क्रमशः भूल चली।

करुणा धीरे-धीरे खिसकने लगी और जुगल यह देखकर प्रसन्न होता कि बेला की स्वाभाविक चंचलता लौट रही है।

गांव के लगभग सभी लोग झोंपड़ियों में रहने लगे थे।

परन्तु तीन हठी व्यक्ति अब भी अपने-अपने घरों में पड़े थे। पहली थी बेला, जो अब झोंपड़ी छोड़कर किसी दूसरी झोंपड़ी में नहीं रहना चाहती थी। दूसरे थे पुरोहित दयाराम दूबे, जो कट्टर भाग्यवादी और ईश्वर के पुजारी थे और तीसरे थे ठाकुर बलजीत सिंह…! जिनके लिए किसी जीवित इन्सान की जान ले लेना खेल था, तो वे मरे हुए चूहों और छोटे-छोटे पिस्सुओं से क्यों डरते!

जुगल के पास टैरेन्टयल क्यूबेन्सिस ३० था, जिसकी एक मात्रा वह स्वयं प्रतिदिन खा लेता था और बेला को भी खिला दिया करता था।

परन्तु पुरोहित उस अनजान दवा को खाने से इन्कार करते रहे।

जुगल बहुत हठ करता, तो वे कहते—

'अरे बेटा! बूढ़े आदमी को अधिक दिन घसीट कर क्या करेगा? चला जाने दे, ताकि रास्ता साफ हो जाये।'

पिता के ये वाक्य जुगल के हृदय पर हथौड़े के प्रहार जैसे लगते, परन्तु परास्त होकर उसे चुप रह जाना पड़ता।

महामारी का विनाशकारी नृत्य देखता था जुगल और मन मारकर रह जाता था। वह मरकर भी मरते हुए ग्रामीणों को बचाना चाहता था, परन्तु अकेला युवक क्या-क्या करता। किसको-किसको देखता—सारा भार तो उसके कन्धों पर आ पड़ा था।

इधर बेला उसे छोड़ती ही न थी। कहती थी—'अकेली मुझसे रहा नहीं जाता, जुगल भैया! तुम आते हो तो कुछ हंस-बोल लेती हूं, कुछ जी बहला लेती हूं। मेरी बात कोई छिपी हुई

है तुमसे ?'

ममता और स्नेह के आगे जुगल लाचार हो जाता।

घण्टों तक इधर-उधर की बातों से वह बेला का मन बहलाया करता। यह प्रयत्न करता रहता कि वह प्रसन्न रहे, ठीक पहले की तरह स्वच्छन्द हिरनी की तरह उछले-कूदे और अपना दुःख भूली रहे।

इधर जुगल के पिता ने उसके कार्यों में हस्तक्षेप करना एकदम छोड़ दिया था। उसकी अनुपस्थिति पर उस पर बिगड़ते भी नहीं थे।

बहुत गम्भीर रहा करते थे वे। जुगल की पुस्तकों में सदा उलझे रहते।

ठाकुर का वही निशाचरी कृत्य चल रहा था।

उस दिन पलटू मर गया तो ठाकुर के लठैत उसकी जवान बहन सुखिया को रात के समय बलपूर्वक पकड़ लाये।

और प्रातःकाल गांव वालों ने सुना कि सुखिया प्लेग से मर गई। ठाकुर के लठैत उसे नदी में बहा आये। वास्तविक बात का पता किसी को न लगा। अबला पर हुए घोर बलात्कार की कहानी कोई न जान सका।

ऊपर से सर्वव्यापी ईश्वर ने देखा अवश्य !

परन्तु हिन्दुओं के प्रस्तर-निर्मित देवता को इतनी फुर्सत कहां कि वह घर-घर की सुध लेता फिरे।

एक नारी द्रौपदी की लाज बचाने के लिए दौड़ पड़ने वाले कृष्ण तो अब हैं नहीं—नहीं तो आज करोड़ों नारियों की लज्जा में संगीनें घुसी देखकर वे अवश्य तड़प उठते।

धर्माधिकारियों ने हमारी कायरता को जीवित रखने के लिए कितनी ही कल्पित कहानियां गढ़ रखी हैं। राम-कृष्ण जब थे—तब थे।

आज के हाहाकार भरे इस युग में न तो कोई राम दिखाई देता है न कृष्ण ! रावण और कंसों की भरमार अवश्य हो गई है।

मिर्गी रोग वाले बूढ़े मुंशीजी को प्लेग हुआ सही, परन्तु दूसरे ही दिन वे अच्छे हो गये सड़-गलकर मरने के लिए।

हंसते हुए आकर ठाकुर से कहने लगा—'सरकार, यह प्लेग

तो बूढ़ों को होता नहीं···हम अपने को चाहे जितना जवान समझें, परन्तु उम्र के लिहाज से तो बूढ़े हैं ही! अरे, मामूली बुखार था सो वह भी बुढ़ौती को देखकर भाग गया···जो एक घण्टे में मिर्गी को भगा देता है, उसके लिए ऐसे-ऐसे बुखार तो सुंघनी के समान हैं—इधर सूंघा, उधर छींका और फिर सब-कुछ गायब···!'

'बच गये मुंशीजी, यह गनीमत हुई, नहीं तो मेरा सारा काम चौपट हो जाता।' ठाकुर ने कहा।

'सरकार के लिए ही तो मैं जिन्दा रह गया, नहीं अब जीने की चाह नहीं रही···।' मुंशीजी ने अपना चश्मा ठीक करते हुए कहा।

'क्यों मुंशीजी···? ऐसा क्यों···?' ठाकुर ने पूछा।

'सरकार! कौन-से बाल-बच्चे रो रहे हैं जिनके लिये हाय-हाय करूं। परन्तु देखिये न मालिक! इस साल तो सारे गांव की रौनक ही बिगड़ गई है···जिधर जाइये मौत की-सी उदासी दिखाई पड़ती है···।'

'किसने दवा दी थी, मुंशीजी?'

मुंशीजी ने नाक-भौं सिकोड़ कर कहा—'वह दवा तो बच्चों को फुसलाने जैसी थी···चीनी की चार मीठी-मीठी गोलियां मुंह में रखो और पता न चले कि दायें हैं या बायें··· ऐसी दवा थी वह सरकार···!'

'तुम्हारे उसी वैद्य ने दी थी क्या?'

'नहीं राजा! वह वैद्य इलेग-पिलेग की दवा लेकर घर-घर घूमता थोड़े ही है। वह तो जुग्गल दे गया था···।' मुंशीजी ने कहा।

'जुगल?' ठाकुर को आश्चर्य हुआ।

'हां सरकार···! मैं चारपाई पर पड़ा हुआ था, तो सवेरे ही सवेरे दौड़ता हुआ आया···कहने लगा कि मैंने अभी-अभी आपकी बीमारी का हाल सुना है, मुंशीजी! लीजिए, यह दवा खा लीजिए···बड़ी अक्सीर है।'

'तो तुमने क्या उत्तर दिया?'

'मैं क्या करता सरकार। पहले तो डरा कि कहीं मुझे जहर देने तो नहीं आया है, मगर जब शीशी में सरसों जैसी

चीनी की गोलियां देखीं तो चट समझ गया कि यह बी० ए० पास छोकरा मुझे उल्लू बनाने आया है···वह दवाई हर्गिज नहीं हो सकती। बस, मैंने एक खुराक लेकर खा ली···।'

'कैसी लगी मुंशीजी ?'

'जैसे चीनी लगती है, सरकार···! बस ! वैसी ही मीठी-मीठी ! मगर एक बात जरूर हुई कि उस दवा से मेरा बुखार जाता रहा।'

मुंशीजी ने अव्यक्त रूप से जुगल की दवाई का गुण स्वीकार कर लिया। वास्तविक बात तो यह थी कि जुगल की दवा ठीक समय पर उनके पेट में न पहुंच जाती तो उनकी मृत्यु निश्चित थी—इसे चाहे वे मानें या न मानें।

'बेला का क्या हाल है, सरकार ?'

'धीरे-धीरे काम सधेगा, मुंशीजी···!' ठाकुर बोले—'अभी तो जब सुनो तब जुगल ही उसके पास बना रहता है।'

'रात में पकड़ मंगवाइए, सरकार···!'

'रात में ही तो हमारा रोजगार चमकता है, मुंशीजी मगर अभी नहीं, कुछ दिन बाद।'

'मौका तो आजकल ही अच्छा है···सब लोग झोंपड़ियों में से निकल गए हैं।'

'मेरे लिए तो हमेशा मौका रहेगा, मुंशीजी ! किसी का डर तो है नहीं।'

'यही जुगल का जरा-सा डर है।' हिचकते हुए मुन्शीजी बोले।

'जुगल के लिए तुम्हारे वैद्य की पुड़िया चाहे जब मिल सकती है··· क्यों मुंशीजी ?'

'सो तो है ही सरकार···। परन्तु एक बात हो जाए तो बहुत ही उत्तम हो। किसी तरह जुगल की बदनामी गांव में फैल जाए।'

'कैसे फैलेगी···?' ठाकुर ने पूछा।

'जुगल बेला को चाहता है। मौज-मस्ती उड़ाने के लिए उसी ने उसके मां-बाप को जहर देकर मार डाला है···वह जहर की शीशी लेकर गांव में घूमता-फिरता है और लोगों को बांटता-फिरता है, यही बात एक से दूसरे के कान तक पहुंचा देने से

काम बन जाएगा।'

'वाह! यह बात तो अच्छी कही मुंशीजी तुमने। यह तो आज ही हो जाएगा। जरा रामसरन को बुलाना तो···।'

'अभी बुलाया सरकार! अभी···!'

मुंशीजी बाहर आ गए और रामसरन को बुला लाए।

'का हुकम सरकार···!' रामसरन ने पूछा।

'मुंशीजी! तुम्हीं इसे बताओ कि क्या करना होगा और कैसे करना होगा।' ठाकुर ने कहा।

'देखो रामसरन···!' मुंशीजी बोले—'तुम्हें गांव भर में किसी तरह से जुगल की बदनामी फैलानी है, समझे?'

'समझ गया बाबू···! मगर कैसे? क्या करना होगा मुझे···?'

'तुम कहना कि जुगल ने बेला के मां और बाप को जहर देकर मार डाला है। बेला को लेकर रात-रात भर घूमता है, जो मन में आता है, करता है···और जहर की शीशी लेकर गांव भर में बांटता फिरता है, कहता है प्लेग की दवा है···।'

'बस सरकार···। जवानी कसम! बच्चू की वह बदनामी फैला दूंगा कि कहीं बैठने को जगह न मिलेगी···।' रामसरन ने कहा।

'कहां से शुरू करोगे?' मुंशीजी ने पूछा।

'अभी तो शिवपूजन साहु की होली में जाता हूं—वहीं इसकी चर्चा चलाऊंगा और साहु से विलायती शराब भी पीऊंगा····इसके बाद गांव में घर-घर घूमकर कहूंगा, ठीक है न···?'

'ठीक है···।' मुंशीजी ने कहा—'मगर देखना, कहना ऐसे ढंग से कि किसी को पता न चले कि तुम जुगल की बदनामी जान-बूझकर कर रहे हो।'

'यह सिखाने को रहने दो—बहुत चार सौ बीस पढ़ चुका हूं मैं। इन सालों को तो ऐसी पट्टी पढ़ाऊंगा कि पेट का बच्चा भी न जान सके कि मेरा मतलब क्या है?'

'ठीक है, ठीक है रामसरन···! क्यों सरकार? बस कि और कुछ?' मुंशीजी ने पूछा।

'बस इतना ही।' ठाकुर ने कहा—'बाकी काम रामसरन

खुद कर लेगा।'

'सरकार की दया रहे तो मैं ऐसे-ऐसे काम चुटकी बजाते कर लूंगा···तो चलता हूं शाम हो गई है। होली में सब जुटे होंगे।'

'हां जाओ अब तुम।' ठाकुर ने आज्ञा दी।

धीरे-धीरे चार दिन व्यतीत हो गये।

इस बीच जुगल की पूरी बदनामी फैल चुकी थी। जिसके मुंह पर देखो यही बात थी कि पुरोहित के बेटे ने बेला के मां-बाप को विष देकर बेला को हथियाने का उपाय किया है।

कुछ गांव वाले तो मासूम बेला को ही दोषी करार कर कहते फिरते—'अरे भैया, राम कहो! वह छोकरिया बेला कम थोड़े ही है···उसी की राय से तो सब-कुछ हुआ है···कुलच्छनी को बाप-महतारी की जान लेते हुए तनिक पीड़ा भी नहीं हुई··· अब देखो जुगल के साथ कैसी हा-हा करती हुई गुलछर्रे उड़ा रही है।'

बेला इस बदनामी की बात को अभी सुन नहीं पाई थी, परन्तु जुगल से अवश्य सुना था और सुनकर चुपचाप रह गया था।

सोचने लगा था जुगल कि इस अफवाह के पीछे कितनी बड़ी शक्ति काम कर रही है।

वह जिधर से ही निकलता—लोग उसे बिसूरने लगते। उसे देखकर भयभीत हो जाते, जैसे वह कोई पिशाच हो। कोई उससे बोलता नहीं—कोई उसे बैठने को कहता नहीं—और वह सोचता रह जाता कि इन बुद्धिहीन ग्रामीणों का उद्धार क्या कभी सम्भव है?

चारों ओर प्लेग फला हुआ था, परन्तु अब उसकी दवा कोई नहीं लेता था। जिसे देने जाता वह कहता—अरे पण्डित! अब यह दवा-फवा रखे रहो अपने पास! जिसे राम न बचाये, उसे तुम क्या बचा सकोगे?' फल यह हुआ कि उसकी दवा के बल पर मौत की संख्या जो कम हो चली थी, अब पुन: बढ़ने लगी।

जुगल का अंतरंग मित्र रशीद आजकल झोंपड़े में रह रहा था।

उस दिन वह झोंपड़े के बाहर बैठा हुआ जमीला से कुछ

बातें कर रहा था। शायद जुगल के विषय में ही—तभी आ पहुंचा जुगल।

मन मारे हुए वह रशीद के पास चारपाई पर आ बैठा।

'भला हमारी याद आई तो तुम्हें...?' जमीला हंसकर बोली—'इधर तो महीनों हो गये दीदार नसीब हुए ?'

'क्या करता भाभी ? बेला पर आई विपत्ति की बात तुमने सुनी ही होगी—बेचारी अनाथ हो गई...वहीं से छुट्टी नहीं मिलती तो तुम्हारे पास कैसे आऊं ..?'

'हां भाई ! बेला को छोड़ हमारी क्यों खोज-खबर लेने लगे तुम...? तभी तो गांव वाले ऐसी बातें कहते हैं कि सुनकर यकीन नहीं होता...कान पर हाथ रखकर खुदा-खुदा करना पड़ता है।'

'हां जुगल ! यह कैसी बातें सुनाई पड़ रही हैं, आजकल ?'

'कौन-सी बात रशीद भैया...!' जानता था जुगल सब-कुछ, परन्तु अनजान बनकर पूछा उसने।

'तुमने सुना तो जरूर होगा !' रशीद ने कहा।

'मगर जरा तुम्हारे मुंह से भी तो सुनूं।'

'लोग कहते हैं कि तुमने बेला के मां-बाप को जहर दे दिया ?'

'उनसे मेरी पुरानी शत्रुता थी न, इसीलिए...!' कहकर जुगल हंसने लगा।

'मुझे यकीन नहीं है इस बात पर'...रशीद बोला—'और तुम्हारी भाभी तो कहती है कि जुगल खुद जहर खा लेगा, मगर दूसरों को देने के लिए उसके हाथ कभी न उठेंगे। ताज्जुब है कि इतनी झूठी अफवाह फैल कैसे गई गांव में ? कोई तो कहता है कि बेला का भी इसमें हाथ था। एक ने तो यहां तक कह दिया कि उसने परसों तुम्हें और बेला को झोंपड़ी के भीतर एक ही खटोले पर देखा था...'

'तो इसमें कौन-सी बुरी बात हो गई, रशीद भाई...!' जुगल बोला—'गांव के लोग इस समय पूरे अन्धे बन गये हैं...देखना तुम, इनकी कौन-सी गत होती है ?'

'एक बात और बताऊं तुमसे ?'

'बताओ...।'

'आजकल गांव के मुसलमानों पर मजहबी पागलपन सवार हो गया है, सुना है जुम्मन के घरपर कोई पोशीदा मीटिंग होती है, जिसमे शहर से कोई मुसलमान आकर तकरीर करता है··· भोले-भाले मुसलमानों में मजहबपरस्ती की गन्दगी भर रहा है—नोआखाली और बिहार के दंगों की गलत-सलत खबरें सुनाकर उन्हें बरगला रहा है—उनके दिलों में खूंरेजी का जहर भर रहा है···'

'तुम भी जाते हो मीटिंग में रशीद भाई ?'

'मुझे तो सभी ने काफिर एलान कर दिया··' रशीद कहने लगा—'तो मुझे क्यों बुलायेंगे ? यों उड़ती-उड़ती खबरें मुझे मिली हैं। सुना है कि परसों आधी रात के वक्त एक बैलगाड़ी कुछ सामान से भरी हुई जुम्मन के घर आई थी···'

'क्या सामान थे उसमें ?'

'शायद हथियार रहे हों ! तुमसे बताये देता हूं कि तुम अभी से होशियार रहो और हो सके तो इस तूफान को रोकने का कोई इन्तजाम करो···'

'ठाकुर से कहा जाय तो वे कुछ न कुछ अवश्य करेंगे।' बोला जुगल।

'बेकार है कहना···! मैं खुद उनके पास खबर लेकर गया था···!' रशीद ने कहा—'सुनकर उन्हें यकीन ही नहीं आया। कहने लगे कि तुम भी तो जुगल के दोस्त ही हो न ? यह झूठी खबर लाकर मुझे घबरा देना चाहते हो तुम। मगर मैं तुम्हारी बातों में आने वाला नहीं···मैं जानता हूं कि मेरी अमलदारी में किसी मुसलमान की इतनी हिम्मत नहीं हो सकती कि वह मेरे खिलाफ सिर उठा सके। तुम्हीं बताओ जुगल ! ऐसी गलतफहमी के लिए क्या कहा जाय ? मेरी बातों पर गौर करने के बजाय, उलटा मुझे ही कसूरवार समझने लगे।'

'अपने ही भुगतेंगे एक दिन—हमारा क्या ? हम तो तुम्हारे यहां आकर बच ही जायेंगे···' जुगल ने कहा।

'ऐसी बातें गांव में कभी सुनाई नहीं पड़ी थीं।' जमीला ने कहा।

'शहर की बदबूदार हवा गांव तक आ गई है, उस बदबू से यहां के मुसलमान बच ही कैसे सकते हैं···!' बोला जुगल।

'आज तुमने कुछ मांगा नहीं जुगल···? क्या पेट भरा है?' जमीला ने हंसकर पूछा।

'पेट तो बदनामी से भर ही गया है, भाभी! जो थोड़ा-बहुत खाली है, उसे तुम शरबत पिलाकर भर दो···'

'शरबत तो नहीं मिल सकता आज! थोड़ा-सा गुड़-पानी कहो तो ला दूं?'

'रहने दो, गुड़ तो मुझे अच्छा ही नहीं लगता।'

'तो शोरबा-रोटी ला दूं?' हंसती हुई जमीला ने पूछा।

'देख जमीला! शोरबे की बड़ी हड्डी अपने लिए रख छोड़ना, जुगल को मत देना—।' रशीद ने कहा।

'रहने दो—ये हड्डियां तुम्हीं चूसो, मुझे नहीं चाहिए··· अपना धर्म बिगाड़ना नहीं है मुझे।'

'हां जी हां, यहां तो तुम्हारा धरम जरूर बिगड़ता होगा।' जमीला ने ताना मारा—'मगर बेला रानी के यहां जाकर मुर्गी-अण्डे खा लेते हो, सो नहीं—'

'अण्डे तो फलाहारी होते हैं, जमीला! तुम क्या जानो कि पंडित लोग फलाहारी करते हैं···। अपना जुगल भी तो पंडित का ही बेटा है···।' रशीद ने कहा।

'तुम लोगों से कौन बहस करे—लो मैं चलता हूं।' जुगल उठकर खड़ा हो गया।

'जाओ भाई! बेला रानी तुम्हारा इन्तजारा करती होगी।' जमीला ने कहा—'मगर लुक-छिपकर काम किया करो···लोग देख लेते हैं तभी बदनमी फैलती है।'

'तुम तो हर वक्त मजाक करती हो भाभी! अच्छा चलूं रशीद भाई! फिर मिलूंगा···' जुगल चल पड़ा अपने घर की ओर।

उधर—पुरोहित चारपाई पर धूप में बैठे हुए, जुगल की 'बेचारे किसान' नामक पुस्तक पढ़ रहे थे, तभी आ पहुंचा रामसरन।

'पालागी पंडितजी।' जोर से प्रणाम किया उसने।

पुरोहित ने सर उठाकर उसे सिर से पैर तक देखा, फिर बोले—

'जीते रहो—आओ रामसरन···!'

रामसरन आकर जमीन पर रखी हुई मचिया पर बैठ गया।

'क्या पढ़ रहे हो महाराज ?' पूछा उसने।

'यही एक पुस्तक है, रामसरन ! बैठे-बैठे तबियत नहीं लग रही थी, सो उठाकर इसे पढ़ने लगा।'

'कौन-सी पोथी है, महाराज ?'

'यही किसानों के विषय में लिखा है इसमें…'

'अच्छा…' आंखें फाड़कर बोला रामसरन—'तब तो जुगल पंडित की पोथी होगी यह ? क्या लिखा है इसमें, पण्डित जी ?'

'लिखा है किसान तबाह हो रहे हैं और जमींदार उन पर मनमाना अत्याचार कर रहे हैं…किसानों को संगठित मोर्चा बनाना चाहिए, लगान देना बन्द कर देना चाहिएअपनी उन्नति के लिए विद्यार्जन करना चाहिए…यह भी लिखा है कि क्या-क्या करने से गांव स्वर्ग बन जायेंगे।'

'गांव स्वर्ग बन जायें तो हमारे लिए बड़ी अच्छी बात है, पंडित जी…। तनिक हम भी देख लेते कि स्वर्ग कैसा होता है ? कौन जाने, मर जाने पर स्वर्ग मिले या नरक ! आजकल ज्यादा लोग तो नरक में ही जाते होंगे, महाराज !'

'और क्या…? देखते नहीं, कितना पापाचार फैला हुआ है ? यदि इस पुस्तक की लिखी हुई बातें ठीक हैं, तो समझो कि जमींदारों ने अत्याचार की हद कर दी है—ऐसा अनाचार अधिक दिनों तक नहीं चल सकेगा।'

'अरे महाराज ! ये जमींदार तो क्या ! आजकल किसान क्या कम हरामी हैं…? सीधे मुंह बात नहीं करते। सुराज भया है तो समझते हैं कि सारी जगह-जमीन ही अपनी है। भला आप ही बताइये कि जगह-जमीनें जब किसानों के बाप की हो जायेंगी तो जमींदार लोग क्या घास छीलेंगे ?'

'जमाना तो वही आ रहा है, रामसरन…। इसमें लिखा है कि सरकार जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर रही है।'

'यह परसाल ही सुन चुका था, परन्तु अब तक कुछ हुआ गया नहीं। अरे पंडितजी ! सहज में थोड़े ही जमींदारी चली आएगी…खून बहेगा, लाशें उठेंगी, तब जमींदारी छोड़ेंगे।

दाल-भात का कौर थोड़े ही है…'

'जब सरकार ही ऐसा कर रही है तब जमींदार क्या कर सकेंगे, रामसरन।'

'जमींदारों के पास इतने-इतने लठैत किस लिए हैं…? एक-एक का गला उतार लूंगा पंडितजी, तब जमीन पर पैर रखने दूंगा। देखूंगा कौन माई का लाल जमीन की ओर आंख उठाकर देखता है…?'

'एक तुम्हीं जान लड़ाकर क्या करोगे, रामसरन! दूसरे लोग भी तुम्हारी तरह हों तब न?'

'सभी लोग जान लड़ा देंगे, महाराज! इतने दिनों तक नमक खा रहे हैं…हारे-गाढ़े के बखत भाग थोड़े ही जायेंगे?

'देखो, क्या होता है? अपने को तो कोई राज लेना है नहीं…'

'राज तो न तुम्हीं लोगे न हम ही पंडितजी। राज तो राजा का ही रहेगा…और ये, सीट-पटाक हांकने वाले आजकल के छोकरे हैं न, देख लेना महाराज! ये सब एक दिन फांसी पर झूलेंगे, फांसी पर…! जवानी कसम, सच कहता हूं, अगर सरकार का हुकुम मिल जाये तो गांव के एक-एक किसान को पटक-पटक कर भुर्ता बना दूं, अब भी इतना बल मुझमें है…भला एक घंटे मे कोई कर ले तो दो हजार दंड और हजार बैठकें? और मुग्दर घुमाना तो मैं सिखाऊं।'

'मुग्दर भी घुमाते हो, रामसरन?'

'हां पंडितजी…। घुमाने लगता हूं तो मुझ पर साक्षात् हनुमानजी उतर आते हैं…लगता है, जैसे हाथ में मुग्दर की जगह मलयागिरि पर्वत हो और मैं उसे उठाकर उड़ा जा रहा हूं…बस, फिर घुमाने लगता हूं मुग्दर तो घण्टों तक घुमाता रह जाता हूं…हनुमानजी का प्रताप ही ऐसा है पंडितजी…।'

'तब तो तुम पूरे पहलवान हो, रामसरन!' पुरोहित ने कहा।

'घर-गृहस्थी में पड़ गया, महाराज। नहीं तो गामा को पछाड़ देता किसी दिन…जुगल पंडित नही दीखते, महाराज! कहीं गए हैं क्या?'

'सवेरे से कहीं गया है। घूमता होगा कहीं।'

'एक बात कहने आया था, पंडितजी···। गुप्त बात है, महाराज!' हुकुम मिले तो कहूं? सुनकर बुरा तो न मानोगे, महाराज?'

'अरे नहीं भाई! तुम साफ-साफ कह चलो···' पुरोहित जरा-सा हंसकर बोले।

'बड़ी बदनामी की बात है, महाराज···! जुगल पंडित का चारों ओर गांव भर में हो-हल्ला हो गया है, आपको कुछ मालूम नहीं?'

'नहीं भाई। मुझे तो कुछ नहीं मालूम।' पुरोहित ने कहा।

'लोग कहते हैं कि जुगल पंडित ने···' कहते-कहते रुक गया रामसरन।

'क्या किया है जुगल ने···? बोलो। जल्दी बताओ रामसरन···।' पूरा वाक्य सुनने के लिए पुरोहित उतावले हो पड़े।

'लोग ऐसा कहते हैं पंडितजी, मैं नहीं।'

'मगर कहते क्या हैं, यह तो कहो।'

'कहते हैं कि जुगल ने ही बड़कू और उसकी मेहराऊ को जहर देकर मार डाला है।'

'रामसरन।'

'सुना है कि जुगल और बेला आजकल···'

'रामसरन···।' अत्यन्त क्रुद्ध होकर पुरोहित बोले—'तुम घर में आग लगाने आये हो···।'

पुरोहित का क्रोध देखकर रामसरन घबरा गया।

लपककर उनका पैर पकड़ लिया उसने और घिघियाता हुआ बोला—'दोहाई पंडित महाराज की! मैंने झूठ नहीं कहा है, देवता···! जो सुना, वह आपसे बता दिया। एक बात भी अपनी ओर से जोड़ी हो तो जबान गलकर बह जाय···'

'जाओ रामसरन तुम···! अब उठकर चल दो यहां से।' पुरोहित का चेहरा एकदम तमतमा गया था।

रामसरन तुरन्त उठकर चलता बना।

पुरोहित जाने क्या सोचते हुए बैठे रहे चारपाई पर, गुम-सुम!

उसी समय जुगल आ पहुंचा और सीधा भीतर जाने लगा।

'इधर आ जुगल···।' पुरोहित ने पुकारा।

स्वर की गम्भीरता में क्रोध की झलक पाकर जुगल को आशंका हुई। वह आकर पिता के सामने खड़ा हो गया, चुपचाप !

'यह मेरे कान क्या सुन रहे हैं, जुगल...?' पुरोहित ने कहा।

'क्या सुना आपके कानों ने पिताजी ?'

'यही कि ब्राह्मण का बेटा मनुष्य-भक्षी हो गया है, लोगों को जहर देता फिरता है ...क्या यह सच है कि तुमने बड़कू और उसकी स्त्री को जहर देकर मार डाला है...?'

'सरासर गलत है यह पिताजी !'

'तुम्हारी उस शीशी में कौन-सी दवा है...?' पुरोहित ने उसके हाथ की शीशी की ओर उंगली दिखाकर पूछा।

'प्लेग की पिताजी...!'

'लाओ मुझे दो -मैं भी आज तुम्हारी प्लेग की दवा खाऊंगा... देखूंगा कि जिस दवा को खाकर बड़कू मर गया, और उसकी स्त्री, वह जहर है या और कुछ...?'

'लीजिए पिताजी...!' कहकर जुगल ने शीशी से चार-पांच गोलियां निकालकर पिता के हाथों पर रख दीं। पुरोहित वह दवा खा गए। बड़ी देर तक चुप रहकर उसके असर की प्रतीक्षा करते रहे।

'यह तो विष नहीं मालूम होता।' पुरोहित ने कहा।

'क्या आपको विश्वास हो गया था कि मैंने बड़कू को विष दिया होगा...?' जुगल ने दुःखी मन से पुरोहित से पूछा।

'विश्वास तो मुझे नहीं था, परन्तु परीक्षा ले लेना उचित समझा, शायद वृद्धावस्था के कारण ज्ञानतन्तु ठीक से काम न कर रहे हों और तुम पर झूठ-मूठ ही विश्वास करता होऊं !'

'अब तो विश्वास हुआ ?'

'हां, हो गया। परन्तु इतनी गन्दी और झूठी बात फैल कैसे गई, जुगल ?'

'यही तो मेरी भी समझ में नहीं आ रहा है, पिताजी...!' बोला जुगल।

'समझ में आये, चाहे न आये...।' पुरोहित ने कहा—'यह तो समझना ही पड़ेगा तुम्हें कि यदि इन्सान को दुनिया और

समाज के बीच रहना है तो उसे अपने किसी काम से दुनिया वालों को उंगली उठाने का अवसर नहीं देना चाहिये···'

'मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया है, पिताजी !'

'नहीं किया तो ऐसा क्यों हुआ···?' पुरोहित कठोर स्वर में बोले—'सारे गांव में आज यही चर्चा है। तुमने मेरी प्रतिष्ठा पर कालिख लगा दिया, जुगल ! लोग क्या सोचते होंगे अपने मन में···? कहते होंगे कि पुरोहित ने बेटे को पढ़ाकर पथभ्रष्ट कर दिया···'

'आपसे यह बात किसने कही, पिताजी ?' जुगल ने पूछा।

'अभी-अभी रामसरन आया था—सब-कुछ बताकर गया है।'

'वह काला सांप है, पिताजी। वह जिसे डंस ले···'

'सुनो जुगल···?' पुरोहित उसे रोककर बोले—'वह चाहे काला सांप हो या पीली धामिन···। परन्तु इस समय तो तुम भी दूध के धोये नहीं रह गए हो···। अन्दर से चाहे तुम कितने भी पवित्र होओ, परन्तु तुम्हारे हाथ की शीशी देखकर लोग भयभीत हो उठे हैं। तुम्हारी छाया तक से वे घृणा करने लगे हैं।'

'मगर यह जहर की शीशी तो नहीं, पिताजी।'

'मैं जानता हूं कि यह अमृत है, परन्तु गांव वाले तो इसे विष ही समझते हैं ? इसे उठाकर पटक दो पत्थर पर···और मरने दो इन मूर्खों को—सेवा का यह व्रत छोड़कर अपने पेट की चिन्ता में लगो··· मुझसे व्यर्थ का अपमान सहन नहीं होता।'

कहते-कहते पुरोहित ने दीर्घ श्वास ली। उनका हृदय बैठने लगा था।

'लो हे जुगल दूबे···। आज तुम्हारे लिए एक कार्ड लाया हूं···' कहते-कहते डाकिया आ पहुंचा।

जुगल ने उसके हाथ का कार्ड ले लिया और उलट पलट कर देखने लगा।

'किसका पत्र है, जुगल ?'

'मेरे एक मित्र का है, मेरे साथ पढ़ता था और उसी के घर में रहा करता था !'

'क्या नाम है उसका ? तुमने कभी बताया नहीं मुझे।'

'गिरीश नाम है उसका पिताजी ! बड़ा ही हंसमुख लड़का है, मुझे बुलाया है···' जुगल ने कहा।

'क्या लिखा है, पढ़ो तो ?' पुरोहित बोले।

जुगल पढ़ने लगा—

'तुम्हें गए महीनों हो गए परन्तु एक पत्र भी नहीं दे सके तुम। 'आउट ऑफ साइट, आउट ऑफ माइन्ड' वाली कहावत चरितार्थ करने लगे हो तुम !

'यह अंग्रेजी में क्या कह गए, तुम ?' पुरोहित ने कहा।

'इसके माने हैं, नजर से दूर, हृदय से दूर।' बोला जुगल।

'ओह ! समझदार लड़का मालूम होता है। कविता भी लिखा करता है क्या ?'

'जी हां ! थोड़ी-थोड़ी तुकबन्दी कर लेता है।'

'अच्छा आगे पढ़ो···' पुरोहित ने कहा।

जुगल पुनः पढ़ने लगा-—'अपने साथियों को गांव में जाकर एकदम भूल बैठे तुम। प्रेमचन्द, विपिनविहारी, नटवर आदि रोज आते हैं तुम्हारे विषय में पूछते हैं, तो मैं कह देता हूं—अरे यार ! गांव की हरी-भरी जमीन में कहीं खेलता-कूदता होगा वह—हमारी सुध क्यों आयेगी उसे···! हमें भी गांव देखने की बड़ी लालसा है। तुमने वादा किया था कि जल्द तुम लोगों को बुलाऊंगा, परन्तु वादे का ख्याल शायद नहीं रहा तुम्हें, नहीं तो अब तक कई पत्र लिख भेजते। यहां थे तो साथ बैठकर सुधार की डींगें मारा करते थे और वहां जाकर अकेले ही सुधार करने लगे···पत्र देखते ही चले आओ। कम से कम अपनी सूरत तो दिखा जाओ—जरा देख लें हम भी कि स्वच्छ वायु का सेवन कर तुम कितने मोटे हो गए हो ? तुम्हारे साथ हम भी तुम्हारे गांव चलेंगे। जरूर आओ ! चरका दिया तो समझ लेना बहुत बुरा आदमी हूं मैं··।

तुम्हारा—गिरीश।'

'पत्र तो बड़े अच्छे ढंग से लिखा है इसने।' पुरोहित ने कहा।

'मुझे दो दिन के लिए शहर जाना होगा, पिताजी···।'

'मगर अपने मित्रों को लाकर ठहराओगे कहां ? क्या इसी टूटे-फूटे झोंपड़े में ?'

'नहीं…। उन्हें रशीद के यहां रख दूंगा। उसके मकान में जगह काफी है।'

'क्या वे मुसलमान के घर ठहरना पसन्द करेंगे ?'

'वे मानव-मानव में कोई अन्तर नहीं समझते, पिताजी ! वे शहरी युवक होते हुए भी, सबको अपना समझने वाले बड़े ही उन्नत विचारों वाले हैं।'

'ठीक है, परन्तु प्लेग फैला हुआ है यहां, ऐसी दशा में उन्हें यहां लाना क्या उचित होगा ?'

'ऐसे दुर्दिन में ही तो गांव की सेवा हो सकेगी…और गांव वाले भी देख लेंगे कि आज के युवक कितने मनस्वी हैं।'

'उनमें से किसी को प्लेग हो गया तो उसके घरवाले क्या कहेंगे, जुगल ?'

'उन सबका घर है ही कहां…। सभी, आगे नाथ न पीछे पगहा वाले निर्द्वन्द्व वीर हैं…जहां रहें, वहीं खुश—जहां मर जायें, वहीं स्वर्ग…' जुगल ने कहा।

'अच्छी तरह समझ लो तुम—मुझे क्या ?'

कहकर पंडित चुप हो रहे।

जुगल भीतर आया और कपड़े उतारकर स्नान करने चला गया।

स्नान करके आया तो थोड़ा-सा खा-पीकर बेला के यहां जाने को तैयार हो गया। बाहर आकर पुरोहित से बोला—'मैंने खा लिया है, पिताजी ! आप भी भोजन कर लें, मैं अभी आता हूं।'

'कहां तक जाना है ?' पुरोहित ने पूछा।

'तनिक बेला को देख आऊं कि कुछ खाया-पीया है या नहीं उसने ?' जुगल आगे बढ़ चला।

बेला लिट्टी बना रही थी, तभी पहुंच गया जुगल।

'वाह जी ! अभी को मुंह दिखाने की सूझी है तुम्हें—?' बेला मान के साथ बोली।

'सुबह-सुबह मुंह दिखा देता, तो यह लिट्टी भी नसीब नहीं होती तुझे। मेरा मुंह क्या देख रही है…? लिट्टियां उलट, जली जा रही हैं वे…'

'इधर आकर इस पीढ़े पर बैठ जाओ, जुगल भैया ! तुम तो खड़े-खड़े जैसे भाग जाना चाहते हो।' बेला ने कहा।

जुगल पीढ़े पर बैठकर बोला—'इतनी देर से क्यों लिट्टी बना रही है ? अब तक क्या कर रही थी ?'

'दरवाजे पर खड़ी-खड़ी तुम्हें जोह रही थी और क्या कर रही थी !'

'अच्छा खा ले तो मेरे पास आकर इधर बैठ।'

'कोई नई खबर है क्या, जुगल भैया ?' बेला ने पूछा।

'हां यह देख। तेरे लिए एक चिट्ठी लाया हूं···' जुगल ने कहा।

'मेरी चिट्ठी कहां से आयेगी ? बापू सरग से थोड़े ही भेजेंगे ? अलबत्ता तुम्हारी हो सकती है— है न यही बात ?'

'तू पहले खा ले, तब बताऊंगा।'

'अब सुनकर ही खाऊंगी···मुझे जोर की भूख अभी नहीं लगी है।' बेला बोली।

'अच्छा सुन। मेरे एक साथी की चिट्ठी आई है शहर से। मुझे बुलाया है···'

'अच्छा···। कोई काम-काज पड़ा है क्या उनके यहां ?'

'नहीं, वैसे ही बुलाया है—देखने को।'

'क्या देखेंगे तुम्हारे में···सींकिया पहलवान जैसी तुम्हारी देह, में कोई खास बात तो है नहीं।'

'चुप कर, बदतमीज कहीं की···। अब मैं कल जरूर शहर चला जाऊंगा, तब तेरी अकल ठिकाने लगेगी।' जुगल ने कहा।

'जाओ न ! तुम्हें रोकता कौन है···? जैसे इनके बिना कोई सूख ही तो जाएगा।' बेला पर धमकी का कोई असर नहीं हुआ।

'तू तो बात-बात में रूठ जाती है, बेला !' जुगल ने बेला को खींचकर अपने पास बिठा लिया और उसका सर सहलाता हुआ बोला—'मैं ज्यादा दिन नहीं रहूंगा वहां···यही दो दिन रहकर चला आऊंगा···'

'अच्छा मेरा सर मत तोड़ो—चले जाना, मगर दो दिन से ज्यादा मत लगाना, नहीं तो मैं खाना-पीना छोड़कर बैठ रहूंगी···हां नहीं तो !'

'शहर से लौटकर मैं सीधे तेरे यहां आऊंगा—अब तो खुश हुई न···! चल खा ले !'

'क्या तुम नहीं खाओगे, जुगल भैया ?'

'ऐसी शैतान है कि बिना मुझे खिलाये, खायेगी नहीं···!' जुगल बनावटी क्रोध में बोला—'तू खा ले, मैं घर पर खा चुका हूं···'

'यह तो होगा नहीं जी। तुमने घर पर क्यों खाया ? मैं यहां पर भूखी-प्यासी तड़पती रही और तुम घर पर लपसी चाट आये···बड़ी चटोरी जीभ है तुम्हारी···!'

'ओह ! तू तो आफत की पुड़िया है···! अच्छा ले, मैं भी खाता हूं !' कहकर वह खाने लगा और बेला को भी खिलाने लगा।

बेला के हठ के आगे उसे हमेशा परास्त होना पड़ता था। उस बालिका के स्नेह से बंधकर कर्मठ जुगल अपनी सारी भावनायें भूल चुका था। खाना खाकर दोनों खटोले पर बैठे हुए थोड़ी देर तक बातें करते रहे। फिर जुगल उठता हुआ बोला—'चलूं बेला अब, शहर जाने के लिए तैयारी करनी है न ?'

'कब जाओगे जुगल भैया ?' बेला ने पूछा।

'कल तड़के ही।'

'तो अभी से घर चल दिए ? तुम्हें करना क्या है···? बस, कुर्ता पहन कर चल देना है शहर···एक बात कहूं, जुगल भैया ?'

'कह, क्या कहना चाहती है ?'

'मुझे भी शहर ले चलो न ?' बेला उत्साहपूर्वक बोली।

'चल-चल ! रास्ते भर ऊधम मचाती चलेगी···देखकर लोग बंदरिया समझकर हंसने लगेंगे।'

'हंसने दो उन्हें···' वह तुनक कर बोली—'यह कहो कि तुम ले नहीं चलना चाहते मुझे ! खाली बात बनाते हो···मैं सब समझती हूं।'

'बेला···!' जुगल ने उसे अपने पास खींच लिया—'मत। इस बार तुझे नहीं ले चल रहा हूं, परन्तु दूसरी बा जरूर ले चलूंगा—भला न ?'

'अच्छा जी···।' बेला आधी हंसती, आधी रोती हुई बो —'देखो भूलना मत अपनी बात।'

'भूलूंगा नहीं !' और बेला को सावधानी से रहने

आदेश देकर जुगल घर चला आया।

दूसरे दिन प्रातःकाल वह पैदल ही छोटे-से स्टेशन पर आया और पांच आने का टिकट लेकर गाड़ी पर जा बैठा। शहर यद्यपि वहां से दस-बारह मील पर ही था, परन्तु रेलगाड़ी को छोड़कर किसी अन्य सवारी का मिलना असम्भव होने से, जुगल सदैव रेलगाड़ी से ही आता-जाता था। गांव वाले तो इतना रास्ता पैदल ही टीप देते थे।

दूसरे दिन जब जुगल नहीं आया, तो बेला का मन छटपटाने लगा। रह-रहकर हृदय एक अव्यक्त पीड़ा से आप्लावित हो उठा। आंखें अनायास ही दरवाजे की ओर उठ जातीं, शायद इसलिए कि वह शहर न जा सका होगा तो आता ही होगा। परन्तु आंखें जहां तक दौड़ लगा सकती थीं, वहां तक जुगल की सूरत दिखाई न पड़ती।

नाभि में स्वयं कस्तूरी धारण किए उसकी सुगन्ध से व्याकुल होकर जैसे मृग भटकता है वैसे ही बेला भटक रही थी—नहीं समझती थी कि जुगल की सूरत तो उसके हृदय में ही है।

अनुभवहीन बेला जुगल को अपनी पुतलियों में खोज रही थी। क्या जान सकती थी वह कि सूरतें कभी-कभी पुतलियों के रास्ते दिल तक उतर जाती हैं—फिर वे वहां स्थिर होकर एक अद्भुत पीड़ा का सृजन करती हैं। उस पीड़ा में दुख नहीं एक मादक अनुभूति होती है—एक अव्यक्त लालसा, हार्दिक उत्साह और सुखद अभिलाषा होती है।

दोपहर का खाना नहीं बनाया उसने। जुगल के बिछोह से व्याकुल पड़ी रही, चुपचाप। कुछ समझ में नहीं आता था कि क्या करे।

'बेला रानी···। ओ बेला रानी।' किसी ने बाहर से पुकारा।

'आती हूं···' बेला चिल्लाकर बोली।

जब बाहर आई तो देखा रामसरन खड़ा था मुख पर पैशाचिक मुस्कराहट लिए हुए।

'क्या है जी ?' बेला ने पूछा।

'ऐसे ही चला आया, बेला रानी···।' रामसरन मचिया पर बैठता हुआ बोला—'बैठ जाओ तुम भी···एक बात कहनी

है।'

बेला तुनक कर जमीन पर बैठ गई और बोली—'कहो, क्या कहते हो ?'

'आज तो अकेली हो न…? मैंने सुना है जुगल शहर चला गया है तुम्हें छोड़कर…? कैसे शहर चला गया वह…? क्या तुम दोनों में खटपट हुई थी, बेला रानी…!'

'नहीं जी, उन्हें काम था, इसलिए चले गये…शहर गये हैं, कुछ मेरे लिए लायेंगे ही।'

'तुम बड़ी भोली हो बेला…। जरा आंख खोलकर देखो तो तुम जान सकोगी कि दुनिया में कितने विषैले सांप हैं—एकदम विषैले…।'

'होते होंगे…। मुझे क्या…? कोई मुझे काटने आएगा तो फन पकड़कर मसल दूंगी…।'

'तुम्हें तो सांप काट चुका है, बेला ! और तुम्हें खबर ही नहीं…।'

'अरे जाओ जी ! काटे तुम्हें…। मुझे क्या काटेगा मुआ ?'

'तुम तो कुछ समझती ही नहीं, बेला…। इतनी भोली न होती तो तुम्हारे बापू-माई इतनी जल्दी थोड़े ही मर जाते।'

'तो क्या मैंने उन्हें मार डाला ?'

'अरे नहीं बेला रानी। तुम क्या उन्हें मारोगी, उन्हें तो दूसरे ने मार डाला।'

'क्या कहते हो जी तुम ? मेरी समझ में पत्थर नहीं आता।'

'बेला, आज सारे गांव में यही चर्चा है तेरे बापू-माई जहर देकर मार डाले गये।' मुखाकृति गम्भीर बनाकर रामसरन ने कहा।

'जहर देकर…? इतना झूठ मत बोलो, रामसरन।'

'झूठ नहीं बोलता मैं, समझो बेला ! जहर न दिया गया होता तो एक साथ दोनों कैसे मर जाते ?'

बेला चुप हो रही। एकाएक चेहरा स्याह पड़ गया। रामसरन का तीर ठीक निशाने पर बैठा था।

थोड़ी देर बाद बेला ने पूछा—'उन्हें किसने जहर दिया, रामसरन ?'

'उसका नाम तो गांव का बच्चा-बच्चा जानता है, बेला…।

अचरज है कि तुमने अब तक नहीं सुना। अरे झबुआ, इधर आ तो···।' रामसरन ने जाते हुए दस बरस के एक लड़के को पुकारा।

'लो इसी से पूछ लो···। क्यों अपनी जबान से वह नाम लूं ?' रामसरन ने कहा और उस लड़के की ओर इशारा कर दिया।

'तुम्हीं पूछ लो।' बेला ने कहा।

'क्यों रे झब्बू···?' रामसरम उस लड़के से बोला—'बड़कू कैसे मरा, कुछ सुना तूने ?'

'कबका कहते थे ठाकुर, कि बड़कू बब्बा को जहर भीन गया था।' लड़का बोला।

सुनकर चैतन्य हुई बेला। आश्चर्य हुआ उसे कि जिस बात को एक छोटा-सा बालक जानता है, वह क्यों नहीं जान पाई ?

'किसने जहर दिया था झब्बू ?' रामसरन ने पूछा।

लड़के ने एक बार बेला के मुख की ओर देखा, फिर बोला—'बेला बहन मारेगी ठाकुर।'

'तू बता न ? मारूंगी क्यों ?' बेला ने कहा।

'जुगल पण्डित ने जहर दिया था।' कहता हुआ लड़का भाग गया।

जुगल···! जुगल ने जहर दिया था···? और उसके बाप को ?

बेला को लगा, जैसे सैंकड़ों सांपों ने उसे एक साथ डंस लिया हो—जैसे धधकता हुआ अंगारा किसी ने उसके कलेजे पर रख दिया हो।

जुगल भैया ने उसके बापू को जहर देकर मार डाला—और उसकी माई को भी···तो क्या जो दवा जुगल ने खिलाई थी वह जहर की गोली थी ?

हजारों विचार बेला के हृदय में एक साथ उठ रहे थे—छोटे दिल में भयानक तूफान उठ खड़ा हुआ था।

'सुन लिया न बेला रानी···?आजकल जिसे अपना समझो वही दुश्मन बन जाता है···' रामसरन बोला—'मैं तुमसे कभी यह बात नहीं कहता, मगर यह देखकर कि तुम्हें भी वह बर-

बाद करने पर तुला हुआ है तो मुझे कहना ही पड़ा। जुगल ने यह जहर खुद मेरे सामने खरीदा था, बेला रानी।'

'उन्होंने बापू को क्यों मार डाला, रामसरन? बापू-माई ने उनका क्या बिगाड़ा था?' बेला सिसकने लगी थी।

'बिगाड़ा क्या···? तुम्हें पाने के लिए उसने यह सब किया।'

'मगर मुझे विश्वास नहीं आता इस बात पर?'

'विश्वास नहीं आता, तो ज़रा उठकर गांव घूम लो··· देखो, हर आदमी यही बात कहता है या नहीं। सच बात कभी छिपाये नहीं छिपती, बेला रानी।'

'हाय रे करम?' असीम शोक एवं पश्चात्ताप से भरकर बेला ने अपना मस्तक पीट लिया।

'ठाकुर ने जब यह सुना, तो मुझसे कहने लगे—रामसरन, यह छोकरा तो पिचास निकला। तब मैंने कहा—सरकार! हुकुम मिले तो साले का गला काट लूं, तब जानती हो उन्होंने क्या कहा?'

'क्या कहा उन्होंने?'

'उन्होंने कहा कि रहने दो, रामसरन! उसे मारने से बेला को दुःख होगा···वह हमें ही बुरा समझने लगेगी। देखा न, हमारे राजा को तुम्हारा कितना ख्याल है? कहते हैं कि बेचारी बे-मां-बाप की हो गई, अब हमें छोड़कर उसका कौन सहारा रह गया है।'

सुन रही थी बेला! रामसरन की बातों का उस भोली बालिका पूरा-पूरा असर हो रहा था।

'उस दिन गांव का कोई आदमी प्लेग के डर से लाश उठाने नहीं आया। सरकार ने सुना तो तुरन्त मुझे भेजा—कहा कि देख आओ, किसी चीज की जरूरत हो तो कहना। अगर हम लोग ठाकुर के हुकुम से उस दिन न आये होते, तो अकेला जुगल क्या दाह-संस्कार कर लेता? लाश जलाने के लिए लकड़ी दिया था···बांस दिया था सरकार ने।'

'अच्छा···जुगल ने मुझसे नहीं बताया यह सब।' बेला बोली।

'बताता कैसे? तुम्हारी दृष्टि में तुम्हारा हितैषी कैसे

बनता वह, बेला रानी। बचकर रहना उससे।'

'बच के क्या करना है···? अबकी आयेंगे तो कहूंगी कि मुझे भी दे दो जहर···।'

'ऐसा न कहना, बेला रानी। सरकार तुम्हारी पीठ पीछे हैं, जो जरूरत पड़े तो हमसे कह दिया करो—तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। खाना-पीना हो गया या नहीं?'

'अभी नहीं···क्या होगा खा-पीकर आज? जो आग लग गयी है मेरे बदन में वह बुझाये न बुझेगी, रामसरन।'

बेला पुन: सिसकने लगी। रामसरन उसे धैर्य बंधाने लगा। जब वह चुप हो गई तो उठता हुआ बोला वह—'अब चलूं बेला। फिर आऊंगा···'

और अपनी लगाई हुई आग की लपटें देखता हुआ रामसरन खुशी-खुशी चला गया।

कुछ देर तक बेला वहीं पत्थर की प्रतिमा जैसी स्थिर बैठी रही, फिर उठकर भीतर आई और खटोले पर कटी डाल की तरह गिरकर रोने लगी, तड़पने लगी।

अब तक वह जिस पर अगाध विश्वास रखती आ रही थी, उसी ने उसके साथ विश्वासघात किया था—उसकी सुख-शांति नष्ट कर दी थी, एक तरह से उसे उजाड़ डाला था उसने। जुगल इतना नीच कैसे हो गया? उसके हाथों में इतनी पैशाचिक शक्ति कैसे आ गई? बेला रोती रही और सोचती रही।

आज उसका अन्तिम सम्बल भी उससे छूट गया था—यह उसके लिए कितने दुःख की बात थी?

रोते-रोते उसे नींद आ गई और वह कब तक सोती रही, कुछ पता ही न चला। जब उठी, तो उसने देखा रात हो चली थी—अन्धेरा छा गया था। चारों ओर जलते हुए कुछ छोटे-छोटे दीपकों की पतली लौ, कहीं-कहीं कांप रही थी। बेला ने दीपक नहीं जलाया—जलाती भी क्यों? हृदय के भीतर चिन्ता एवं जुगल के प्रति घृणा की जो आग जल रही थी, उसकी लपटों का प्रकाश क्या कम था?

अंधेरे में ही वह दरवाजे पर आ बैठी। हाथ हिल जाने से कलाई में पड़ी हुई चूड़ियां झनझना उठीं। बेला को लगा, जैसे पतली रस्सी के अनेक छोटे सांप, गेरुड़ी बनाकर उसकी

कलाइयों से लिपटे हों। जुगल की दी हुई उन चूड़ियों की झनझनाहट से बेला का रोम-रोम प्रकम्पित हो उठा। दुःख का भार सम्हालना कठिन हो गया।

ये चूड़ियां···। जब तक ये चूड़ियां बेला की कलाइयों में पड़ी रहेंगी तब तक उसका अन्तर जलता रहेगा, उसके हृदय पर सांप खेलता रहेगा, उसकी घृणा उस कपटी जुगल की याद दिलाती रहेगी, उसका दिल रह-रहकर तड़प उठता रहेगा—तो इन्हें हाथ में रखने से लाभ ही क्या ?

पास में ही पत्थर का टुकड़ा पड़ा था। उसे उठाकर उसने क्रमशः दोनों कलाइयों पर दे मारा। कांच की चूड़ियां पत्थर की मार खाकर चीख उठीं—तड़प उठीं। स्नेह का बन्धन खण्ड-खण्ड होकर टूट गया—रक्त से सने हुए शीशे के टुकड़े झनझनाकर जमीन पर बिखर गये—अंधेरी रात ने खून बहती हुई उन कलाइयों पर काला परदा डाल दिया।

आज बेला विक्षिप्त जैसी हो गई थी। उसने कांच के उन टुकड़ों को उठाकर उपेक्षापूर्वक दरवाजे से बाहर फेंक दिया।

आंख से आंसू न बहे—बचपन के साथी की वह निशानी तोड़ते हुए उसे तनिक भी दुःख नहीं हुआ। होता कैसे ? हृदय में तो सन्देह का अम्बार लग गया था।

जुगल के शरीर से लता की तरह लिपटी रहने वाली बेला इस समय सोच रही थी कि वह अब तक सांप से खेलती रही थी और उस काले सांप ने अवसर पाकर उसे डंस लिया।

रात जब अधिक चली गई, तो बेला को सर्दी लगने लगी। वह उठ खड़ी हुई। गांव तब तक सुनसान हो चला था। कहीं-कहीं कौड़ा तापने वालों की क्षीण हंसी सुनाई पड़ जाती थी—सधवा चमार के घर से सोहर का गीत सुनाई पड़ रहा था··· शायद उसकी स्त्री को बच्चा पैदा हुआ था।

बेला को सोहर बहुत प्रिय थे। वह ध्यान से सुनने लगी।

थोड़ी देर तक खड़ी-खड़ी बेला वह गीत सुनती रही—फिर भीतर आकर खटोले पर पड़ गई।

आज दिन भर से उसने एक दाना भी मुंह में नहीं रखा था—खाली पेट होने के कारण नींद भी नहीं आ रही थी।

ख उसे जोरों से लगी हुई थी, परन्तु क्षोभ और चिन्ता ने उसे उठने नहीं दिया।

आधी रात के लगभग सधवा चमार के यहां का सोहर बन्द हुआ। बेला अब तक जाग रही थी। सोहर बन्द होते ही चारों ओर सन्नाटा छा गया। बेला को अकेले भय लगने लगा। सोचने लगी वह—जुगल को छोड़कर अकेले उसके दिन कैसे बीतेंगे···? उंह! ठाकुर तो हैं ही उसके शुभचिन्तक—क्यों न उनके यहां नौकरी कर ले? पेट भर ही जायगा किसी तरह से और हवेली में रहने से उसका एकाकीपन भी दूर हो जायगा। परन्तु थोड़ी देर क सोचते रहने के बाद विचारों में शिथिलता आ गई। स्वतः से बोली—क्या होगा नौकरी करके? बगीचे फलों से पेट भर जायगा—थोड़ा-बहुत जो कुछ घटेगा, ठाकुर से मांग लेगी। जुगल का सहारा छोड़कर, बेला अब ठाकुर का सहारा पाना चाहती थी। उसे यह अनुभव कर आश्चर्य हो रहा था कि हर अभाव की पूर्ति के लिए एक पुरुष की सहायता लेना क्यों आवश्यक हो जाता है?

तो क्या नारी स्वयं एकाकी कुछ नहीं कर सकती?

क्या नारी के लिए पुरुष का साथ आवश्यक है?

हर बार उसका अन्तस्थल उत्तर देता—नहीं, नारी एकाकी के कुछ नहीं कर सकती···नारी के लिए पुरुष का सहारा अत्यन्त आवश्यक है···नारी में अपूर्णता ही अधिक है और पूर्णता कम।

भय लग रहा था, सो वह करवटें बदलती हुई जागती रही।

जब बेला का बड़ा-सा मुर्गा बांग देने लगा, तब बेला ने समझा कि अब सबेरा हो चला है। थोड़ी देर तक और बेला खटोले पर पड़ी रही। जब कुछ उजाला हो गया तो उठी और दरवाजा खोलकर बाहर आई। उसने देखा कि बाहर पड़ी हुई उसके बापू की चारपाई पर कोई चादर ओढ़े सो रहा है।

'कौन सोया है···?' उसने पुकारा।

सोने वाला तनिक सजग हुआ। बोला—'अरे मैं हूं, बेला रानी।'

'रामसरन, तुम···! यहां कैसे सोये हो आज···?' बेला ने

पूछा।

'सरकार के हुक्म से तो मैं परेशान रहता हूं, बेला...।' रामसरन कहने लगा— 'रात हवेली में सोया था। रजाई ओढ़े ऐसी अच्छी नींद आ गई थी कि क्या बताऊं...एकाएक आधी रात के समय सरकार सोते-सोते उठकर मेरे पास आए। कहने लगे—बेला अकेली होगी रामसरन, तुम जाकर उसके दरवाजे पर सो रहो...क्या करता बेला रानी! मुझे आना ही पड़ा। सरकार तो सोते-जागते तुम्हारा ही ध्यान किया करते हैं... अब उनके लिए बस, तुम ही तुम हो बेला।'

'अच्छा जी! वह तुम्हारे सिरहाने गठरी कैसी रखी है?'

'कुछ मत कहो, बेला! कुछ मत पूछो...।' बोला रामसरन—'कल हवेली में कई मेहमान आये थे। खूब जसन रहा, खूब मिठाइयां बनीं। पूरी-कचौड़ी के झावे तो अब तक तहा कर रखे हैं। और रात में आने लगा तो सरकार ने कहा— बेला के लिए भी तो कुछ लेते जाओ। सुनते ही मैंने बड़ी-सी गठरी बांध ली। सोचा बेर-बेर मिठाइयां खाने को थोड़े ही मिलती हैं...।'

'पूरी-कचौड़ी आज खा लेना—फिर मिठाइयां धीरे-धीरे खाती रहना। हमारे राजा की तुम पर कृपा है, समझी? आंख मूंदकर लेती चलो, जो सरकार दें। देखती रहना, कुछ दिन में रानी न बना दूं तो कहना। हवेली उठ जायगी, हवेली ...यह झोंपड़ी थोड़े ही रहेगी कुछ दिनों बाद...'

'अच्छा जी...! तब तो बड़ा मजा रहेगा, रामसरन...। है न?'

'सो तो रहेगा ही...मगर अभी सपना मत देखो, बेला रानी। यह लो, इसे सम्भालो। मैं चलता हूं...सवेरा हो गया है, तुम भी नहाओ-धोओ और पूरी-कचौड़ी का नाश्ता कर लो, समझो कि सूरज पच्छिम से निकल रहा है...'

कहकर रामसरन उठ खड़ा हुआ और चलता बना।

बेला ने वह गठरी लाकर भीतर रख दी और झाड़ू लेकर घर बुहारने लगी। रह-रहकर उसे बीच-बीच में जुगल की याद आती जा रही थी और उसका छोटा-सा दिल असीम घृणा से भर-भर उठता था।

और जुगल…! बेला के इस आकस्मिक परिवर्तन से अनभिज्ञ, शहर में अपने मित्रों के बीच पड़ा था। खेल-कूद, हंसी-मनोरंजन और सिनेमा-थियेटर में ही चार दिन बीत गये —और आया था केवल दो दिन के लिए। पांचवें दिन गांव के पास वाले छोटे स्टेशन पर बड़े तड़के ही पांच मित्रों की टोली उतरी। हृदय में बेला से शीघ्र मिलने की अभिलाषा लिए, जुगल सबसे आगे था। उसके पीछे था गिरीश—लम्बा छरहरा बदन, बाईस-तेईस साल की उम्र, हंसता हुआ सुन्दर चेहरा, एक हाथ में मासिक पत्रिका।

गिरीश के बाद था प्रेमचन्द…। भारी-भरकम शरीर वाला तगड़ा रोबीला जवान, दांत निकालकर हमेशा हंसता रहने वाला, पैरों में पाजामा और बदन पर खाकी कमीज। उसके बाद था विपिनबिहारी—चश्मे के भीतर से झांकती हुई दो सरल आंखें, खूब गोरा और मंझोला कद का शरीर, सूटेड-बूटेड और पैर में बाटा की चप्पल। और उसके पीछे था नटवर —पढ़ाई के बोझ से झुकी हुई कमर, हाथ में चमकीली छड़ी, कलाई में सत्रहवीं शताब्दी की बड़ी-सी घड़ी, और कंघी फेरने पर भी कांटे जैसे खड़े रहने वाले बाल।

पांचों मित्र, पैदल ही पगडण्डी की धूल फांकते हुए गांव की ओर बढ़ चले।

'क्यों जुगल…?' गिरीश बोला—'भाई तुम्हारा गांव भी अजीब है…एक भी सवारी नहीं, कैसे रहते हो तुम लोग यहां?'

'सवारी नहीं मिली तो हाय-तौबा मचाने लगे, इसी बल पर गांव का उद्धार करने आये हो?' जुगल ने कहा।

'गांव का उद्धार करने से पहले यहां धूल फांको, गिरीश भैया। समझते हो न…।' सबसे पीछे आता नटवर जरा तेज स्वर में बोला, ताकि सबसे आगे चलते हुए जुगल के कान भी व्यंग को भली प्रकार सुन लें।

'गिरीश भैया तो डाक्टरी पढ़ते हैं।' प्रेमचन्द ने कहा—'ये कुर्सी पर बैठे इंजेक्शन दिया करेंगे…धूल तो हम कम्पाउण्डरों को फांकनी पड़ेगी…।'

'तब तो हो चुका…।' गिरीश बोला—'पहले ही झगड़ने

लगे तुम लोग···। क्यों जुगल ! यही तुम्हारा गांव है सामने ?'

'हां···' जुगल ने कहा।

'खेतों में इतनी झोंपड़ियां क्यों लगी हैं ?'

'कहा था न कि प्लेग फैला है जोरों से···।' जुगल बिगड़ कर बोला—'छोटी-छोटी बात भी याद नहीं रहती तुम लोगों को।'

गांव आ गया था। सब लोग भीतर घुसे। गांव वाले इन्हें आश्चर्य में भरकर देखने लगे। जुगल को भी साथ पाकर लोगों ने समझ लिया कि अब एक नहीं, पांच-पांच जहर देने वाले आ पहुंचे हैं—देखें, कोई बचता है या पूरा गांव ही साफ हो जाता है।

रशीद का घर सामने ही था। झोपड़ी में तकलीफ होने के कारण वह पुनः घर में आ गया था।

जुगल लपककर दरवाजे के पास आया और पुकारा—'भाभी···।'

जमीला घर के अन्दर से ज्यों की त्यों निकल आयी। गोबर से हाथ सने थे।

'या अल्ला। तुम तो पूरी बारात लेकर आये हो।' जमीला ने आश्चर्य भरी मुस्कान के बीच कहा।

'तुम्हारे मेहमान हैं ये, भाभी ! लो सम्हालो इन्हें।' जुगल हंस कर बोला।

'हां भाई ! मैं इन्हें सम्हालूं और तुम चलो बेला के घर।' जमीला ने व्यंग किया।

'अरे छोड़ो भाभी, बेला-जूही की बात।' गिरीश ने बीच ही में बात काटते हुए कहा—'ले चलकर हम लोगों को बिठाओ और जुगल को जाने दो।'

'तुम लोग तो बड़े अच्छे हो भाई। आते ही मुझे भाभी बना लिया···।' मीठी हंसी हंसकर बोली जमीला।

'जुगल ने हमें तुम्हारे बारे में बहुत-कुछ बताया था, भाभी ! यह भी बताया था कि हम लोग तुम्हारे ही घर 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' की तरह रहेंगे···' प्रेमचन्द ने कहा।

'मुझसे भी जाते वक्त कह गये थे कि तुम्हारे घर कई मेहमान आयेंगे। घर सजाये रखना, इसीलिए तो हम लोग झोंपड़ी

छोड़कर घर में चले आये हैं···आओ भाई आओ। या बाहर ही खड़े रहोगे।'

जमीला हंसते हुए भीतर चली तो चारों दोस्त उसके पीछे-पीछे एक छोटे-से कमरे में आये।

जमीन पर पुआल बिछाकर सोने के लिए गद्देदार फर्श तैयार की गई थी। पोतनी मिट्टी से लिपा हुआ घर, खाकी कपड़े की तरह दीख रहा था।

'लो गिरीश! यहीं रहना है तुम लोगों को···' जुगल ने कहा।

'अरे, तुम अभी तक यहीं हो क्या? मैंने सोचा चले गये होगे···।' गिरीश ने कहा—'जाओ भाई···। हमें जो घटेगा भाभी से मांग लेंगे'

सब लोग कपड़े उतारकर पुआल पर जा बैठे। देहाती शय्या देखकर शहर में रहने वाले ये युवक गद्गद हो गये।

गांव में आने का यह पहला अवसर था उनके लिए। चारों ओर नवीनता ही दृष्टिगोचर हो रही थी।

'भाभी···!' गिरीश ने कहा—'हम तो पहले मट्ठा पीयेंगे···।'

'और हम गन्ना चूसेंगे।' प्रेमचन्द ने कहा।

'और तुम नटवर···?' नटवर को चुप देखकर जुगल ने कहा।

'मैं क्या कहूं—?'

'तुम भी कुछ पियोगे या चूसोगे···?'

'यही तो मैं बड़ी देर से सोच रहा हूं। परन्तु समझ में नहीं आता कि क्या बताऊं···। देहाती चीजों का नाम मैं जानता नहीं···अच्छा मैं अमरूद खाऊंगा।' नटवर बोला।

'अमरूद नहीं, तमाचे खा लो नटवर। दोनों तरफ गाल लाल हो जायंगे···।' प्रेमचन्द ठहाका मारता हुआ बोला—'भाभी तमाचे होंगे भी बड़े मीठे···दो न भाभी इसे एक?'

'चुप भी रहो। तमाचे खाने आये हो क्या शहर से!' मुंह पर हाथ रख हंसने लगी जमीला।

'रशीद भाई कहां गये, भाभी?' जुगल ने पूछा।

'लो मैं आ गया···।' रशीद ने भीतर प्रवेश करते हुए

कहा—'वल्लाह ! यहां तो पूरा हमला हो गया है मेरे गरीब-खाने पर ।'

'अजी नहीं, भाईजान···।' नटवर बोला—'पैदली हमले से डरने की कोई बात नहीं—आजकल तो जमाना हवाई हमले का है ।'

सभी हंस पड़े ।

जुगल ने रशीद और जमीला से अपने मित्रों के बारे में पहले ही सब-कुछ बता दिया था···और मित्रों को रशीद और जमीला की प्रकृति की पूरी जानकारी करा दी थी। इसीलिए बिना किसी भूमिका या आडम्बर के ही बातचीत का सिलसिला चल निकला ।

'अरे जुगल ! मेरा सूटकेस क्या हुआ···?' गिरीश चिल्लाया ।

'वह कोने में क्या रखा है···। चिल्लाते क्यों हो ?' जुगल ने कहा ।

'चिल्लाऊं कैसे नहीं ? उसी में सारी दवायें हैं। कहीं खो गया तो ?'

'गिरीश भैया···।' नटवर ने बात काट दी—'पहले एक काम करो···यहां जितने है सभी को एनाक्यूलेट कर दो । प्लेग का जमाना है, डर छट जायगा···।'

गिरीश ने अपना सूटकेस उठा लिया। उसे खोलकर इन्जेक्शन लगाने का पूरा सामान बाहर निकाला ।

सिरिन्ज में दवा भरकर तैयार हो गया ।

'पहले भाभी को···।' जुगल ने कहा ।

'ना बाबा । इतनी बड़ी सुई । अल्ला रे अल्ला···।' जमीला डरती हुई बोली और पीछे हटने लगी ।

'भाभी ऐसे नहीं मानेंगीं, गिरीश···।' जुगल बोला—'तुम इधर आ जाओ । मैं पकड़ता हूं, तुम इन्जेक्ट करो···।'

जुगल ने जमीला को पकड़ा और गिरीश ने प्लेग की दवा इंजेक्ट कर दी। इसके बाद रशीद, जुगल, नटवर, प्रेमचन्द, बिपिनबिहारी सभी ने क्रमशः सुइयां लगवा लीं ।

अन्त में गिरीश ने स्वयं अपने हाथ से ही अपनी बाईं बांह में सुई लगा ली ।

'अच्छा भाई, मैं चलता हूं—।' जुगल उठता हुआ बोला।

'कब आओगे···?'

'अब आज और कल तुम लोग आराम करो, फिर अपना काम आरम्भ किया जायगा, मैं कल सुबह आ जाऊंगा···।'

कहकर जुगल चल पड़ा।

आज चार दिनों के बाद वह बेला के घर की ओर जा रहा था।

सोच रहा था—बेला उससे रूठेगी, जली-कटी सुनायेगी, कहेगी कि दो दिन के लिए गये और चार दिन लगा दिये। इस समय बेला को रूठा हुआ देखने के लिए वह लालायित हो रहा था।

बेला का घर दिखाई पड़ा तो उसे लगा जैसे दूज का चन्द्रमा दिखाई पड़ा हो—उसे देखकर ही उसका आनन्द सीमाहीन हो गया। दरवाजे के पास आया, तो नीचे की जमीन पर कोई वस्तु जरा-सी चमकी। उसने झुककर उसे उठा लिया। कांच का एक छोटा-सा टुकड़ा था वह, धूल में लिपटा हुआ—अत्यन्त उपेक्षित।

जुगल के पैर क्षण के लिए कांप उठे। गिरते-गिरते बचा वह। वहीं चित्रलिखित-सा खड़ा रहा। इधर-उधर दृष्टि डाली तो जमीन पर वैसे कितने ही टुकड़े नजर आये। असीम वेदना से भरकर वह उन टुकड़ों को उठाने लगा।

जितने भी टुकड़े मिल सके, उन्हें उठाकर हाथ में पकड़े वह खड़ा हो गया।

उसके उपहार की इतनी उपेक्षा क्यों की गयी? बेला की कलाइयों से ये चूड़ियां निकल क्यों आयीं और टूट कैसे गयीं। कहीं किसी अत्यचारी ने बेला और उसकी चूड़ियों पर अत्याचार तो नहीं किया···। जुगल का कलेजा धड़कने लगा। हथेली में उन टुकड़ों को कसकर पकड़े वह झोंपड़ी के भीतर घुसा। दरवाजे की ओर पीठ किए बेला खटोले पर बैठी मिठाई खा रही थी।

'बेला···!' जुगल ने पुकारा।

चौंककर बेला ने पीछे मुड़कर देखा, धीरे से वह खटोले के नीचे उतर गयी···। और दिनों की तरह वह 'जुगल भैया' कहती

हुई दौड़कर उसके सामने नहीं आ खड़ी हुई।

जुगल ने देखा—

इन चार दिनों में ही बेला का मुख बहुत-कुछ सूख गया है और उसकी सूनी कलाइयां देखकर तो जुगल का हृदय हाहाकार कर उठा।

'बेला···!' जुगल ने पुन: पुकारा।

बेला फिर भी कुछ न बोली। आंखों से आंसुओं की धार निकल कर गालों पर से बह चली बहती रही। अन्तर में उसके झंझावात उठ रहा था, जिससे उसकी जीभ शिथिल पड़ गयी थी।

आगे बढ़कर जुगल ने उसका हाथ पकड़ लिया तो उसने जोरो से झटक दिया, जैसे सांप छू गया हो।

'क्यों आये हो तुम यहां···?' बड़े कष्ट से बेला ने पूछा।

'रूठ गई बेला···। मुझे देर हो गई लौटने में, अभी-अभी चला आ रहा हूं···।'

'मुझे भी जहर देना चाहते हो तुम?' बेला तीखे स्वर में बोली।

'बेला···।' जोर से चिल्लाया जुगल। बेला के मुख से जहर की बात सुनकर उसे घोर आश्चर्य हुआ था।

'माई बापू को मारकर मेरी जान लेने का इरादा है।'

'क्या कह रही है, बेला···! होश में आकर बातें कर।'

'मैं पूरे होश में हूं बेहोश तुम हो···मुझे उजाड़कर, बरबाद कर, अब क्या करने आये हो तुम यहां···।'

'बेला···!' पहले से भी अधिक जोर से चिल्लाया जुगल।

'कहो तो अपनी जान भी निकालकर तुम्हारे हाथों पर रख दूं, ठण्डा कर लो अपना कलेजा! यह न समझो कि मैं कुछ जानती नहीं···।'

जुगल,बेला के मुख से अपमानजनक बातें सुनकर उत्तेजित होता जा रहा था। जरा-सी यह छोकरी उसे अकारण अपराधी ठहरा रही थी।

'गांव का बच्चा-बच्चा जानता है कि तुमने बापू-माई को जहर देकर मार डाला---सिर्फ इसलिए कि तुम मुझे पा सको ···कितने नीच हो तुम···!'

'बेला…!' चिल्लाकर बोला जुगल और उत्तेजना को सम्हाल न सकने के कारण एक तमाचा जड़ दिया उसके मुंह पर।

वह तपाक से उठ खड़ी हुई और द्रुत वेग से जुगल के मुंह पर तमाचा जड़ दिया उसने। बोली—'तमाचा मारने आये थे तुम मुझे ?'

जुगल की रक्तवर्ण हो गयी मुखाकृति वेदना से पीली पड़ गयी। बेला के उस तमाचे में पहले जैसी स्नेह की चोट नहीं थी, वह थी क्रोध से उत्पन्न प्रचण्ड चोट। ग्लानि से जुगल का हृदय रो उठा।

तेजी से घूम पड़ा वह। बोला—'खुश रहो बेला ! मैं चलता हूं…आज से सारा बन्धन टूट गया समझो।'

झोंके के साथ जुगल बाहर चला गया। उसके जाते ही बेला की दृढ़ता पानी बनकर बह गई। वह जमीन पर गिर पड़ी और रोने लगी। बचपन के साथी से आज नाता टूट गया था।

दोनों एक-दूसरे को बहुत चाहते थे, परन्तु नियति के क्रूर हाथों ने उन्हें एक-दूसरे से कितनी दूर ला पटका था।

बेला विक्षिप्त-सी हो रही थी। उसने मिठाई का दोना झटक कर नीचे गिरा दिया और पैरों से रौंद-रौंदकर धूल-धूसरित कर दिया।

नहीं खायेगी वह मिठाई। आज रोयेगी जी भर कर दिन भर रोयेगी।

उधर टूटी हुई चूड़ियों के उन टुकड़ों को हथेली में बन्द किए जुगल घर की ओर चला जा रहा था। उसे अथाह आन्तरिक वेदना हो रही थी। बेला से ऐसी आशा उसे कभी न थी।

पुरोहित ने दरवाजे पर ही उसे देखा। आगे आकर बोले —'आ गए बेटा ?'

'हां पिताजी…!' उखड़े-उखड़े स्वर में जुगल ने कह दिया।

'तुम्हारे मित्र आये !'

'जी हां। रशीद के घर ठहरा दिया है…यहां उन्हें तकलीफ होती न।'

'मगर पहले यहां लाना चाहिए था उन्हें'''मैं परिचय तो उनसे प्राप्त कर लेता'''। 'पुरोहित ने कहा।

'आ जायंगे कभी'''।' कहकर जुगल भीतर चला गया और बिना कपड़े उतारे ही चारपाई पर जा लेटा।

जुगल की यह दशा देखकर पुरोहित को आश्चर्य हुआ। आज वह ठीक से बोला भी न था और आते ही चारपाई पर जा पड़ा था।

७

'बेला रानी !' रामसरन ने दरवाजे पर से पुकारा।

बेला बाहर आयी। जब से जुगल गया था, तब से वह खटोले पर पड़ी हुई सिसक रही थी। आंखें लाल हो उठी थीं। मुंह सूजा हुआ-सा लग रहा था।

'अरे ! तुम रो रही हो···? राम-राम ! आंखें तो देखो अपनी, जैसे उनमें गुलाबी बुकनी डाल रखी है तुमने···अब इतना रोने से क्या फायदा—? अरे हां, सुना है जुगल आ गया शहर से और अपने साथ चार आवारों को भी लेता आया है।'

'लाये होंगे···। यहां तो अकेले ही आगे थे।' बेला ने उपेक्षित भाव से कह दिया।

'अच्छा ! आया था यहां ?' आश्चर्य से भरकर बोला रामसरन—'क्या कहता रहा तुमसे···? और तुमने क्या कहा ?'

'पूछा नहीं···! मैं बोली ही नहीं, तो वे चल दिये।'

'देखो बेला ! अब भी बचकर रहना उससे—नहीं तो बरबाद हो जाओगी···चलो, तुम्हें सरकार ने बुलाया है।'

'किसलिए···?' बेला ने पूछा।

'अरे ! यह भी कोई पूछने की बात है, बेला रानी···! होगा कोई काम ! शायद बाग-बगीचे में पेड़-बेड़ लगाने हों। तुम्हारे बापू के ऊपर रुपये भी तो बाकी हैं न ? उनके बारे में भी कुछ कहेंगे ठाकुर···चलो-चलो, अपने काम से खुश कर दो सरकार को। तुम्हारे ऊपर का कर्जा माफ हो जायगा।'

'जरा ठहरो, मैं अभी चलती हूं···'

कहकर बेला अन्दर गई और कपड़े बदलकर वापस आई।

बोली—'चलो···'

रामसरन लट्ठ लिए हुए आगे-आगे चला और बेला उसके पीछे।

दिन का तीसरा पहर ढल रहा था। सन्ध्या होने में घण्टे भर की देर थी। अपने दरवाजे पर बैठे हुए पुरोहित कोई

पुस्तक पढ़ रहे थे और जुगल भी उनके पास बैठा हुआ जटिल प्रश्नों के विषय में उन्हें समझा रहा था।

बेला उधर से ही जा रही थी। जुगल ने सर उठाकर देखा तो बेला ने मुंह फेर लिया। वह धड़कते हृदय से लठैत के पीछे जाती हुई बेला को देखता रहा। वह समझ गया कि बेला अब धीरे-धीरे विनाश की ओर खिंचती चली जा रही है।

जुगल ने उधर से मुंह फेर पिता की ओर देखा। पुरोहित भी कदाचित बेला को देख चुके थे। बोले—'बेला जा रही है, जुगल···!'

'हां पिताजी···' करुण स्वर में केवल इतना ही कह सका वह।

परन्तु पुरोहित की समझ में नहीं आया कि आज बचपन के साथियों में इतनी दूरी कैसे हो गई।

बेला हवेली में पहुंची तो ठाकुर दरवाजे पर मिल गये।

'आओ बेला रानी···? बहुत दिनों पर इधर आई हो। कहो, अच्छी तो हो?' ठाकुर ने पूछा।

'अच्छी हूं···मुझे यह बताइये कि किसलिए बुलाया है?'

'ओह···हां···! बाग में थोड़े-से अमरूद के पेड़ लगाने हैं, बेला! इसीलिए बुलाया गया है···यह काम खतम कर मुंशीजी के पास जाकर अपने कर्जे का हिसाब समझ लो···' बोले ठाकुर।

बेचारी बेला क्या जाने कि उसके बाप ने कर्ज लिया था—वह तो क्रूर मुन्शी की भयानक चाल थी।

बेला सन्ध्या हो जाने तक ठाकुर के बाग में अमरूद के पेड़ लगाती रही और रामसरन उसके पास खड़ा हुआ जमीन-आसमान की बातें करता रहा। सन्ध्या हो चली तो बेला ने कहा—'अब रहने देती हूं—बाकी कल आकर रोप दूंगी।'

'अरे नहीं बेला रानी! थोड़े-से पौधे ही तो और रह गये हैं, इन्हें भी रोप दो इस भर में···रोज-रोज कहां झंझट करती फिरोगी।'

'रात हो जायगी।'

'चन्द्रमा निकल आया है, उजाला तो रहेगा ही।'

'अच्छा जी! तुम चाहते हो कि मैं सारा बेहन आज ही

रोप दूं, ताकि तुम्हें रोज-रोज मेरे पास दौड़ना न पड़े—है न ?' बेला ने हंसते हुए कहा।

'तुम तो खुद ही समझदार हो, बेला···देखती नहीं, मैं दौड़ते-दौड़ते कितना पस्त हो जाता हूं···हवेली का काम है कि ओराता ही नहीं कभी।'

'अच्छा लो, मैं आज ही सब काम किये देती हूं, मगर खड़े रहना यहीं रामसरन। जाना मत, नहीं तो रात में मुझे डर लगेगा···'

'मैं तुम्हें छोड़कर कैसे जा सकता हूं, बेला रानी ! कहो तो कुछ तुम्हारी मदद कर दूं····'

'तब तो बड़ा अच्छा होगा···।' बेला ने कहा—'मैं पेड़ रोपती जाती हूं, तुम पीछे-पीछे पानी डालते चलो···दन्न से काम खत्म कर देती हूं···'

बेला पौधे लगाने लगी—और रामसरन पानी देने लगा।

बहुत जल्दी करने पर भी, दो घण्टे रात गये काम समाप्त हुआ। बेला ने हाथ धोकर ठण्डी सांस ली, जैसे ठाकुर ने उस पर जो ढेर से अहसान किये थे, उनका बोझ बहुत हल्का हो गया है। फिर उसने खिले हुए चन्द्रमा की ओर देखा, जो आकाश में जोश-खरोश के साथ चमक रहा था और दिन जैसा प्रकाश बिखेर रहा था।

'चलो रामसरन !' बोली वह—'अब मैं घर चलूं ?'

'अभी···? अभी तो मुन्शीजी के पास चलना पड़ेगा तुम्हें ···लगे हाथ अपना हिसाब भी समझाती जाओ···' रामसरन ने कहा।

'फिर किसी दिन आकर समझ लूंगी।'

'नहीं-नहीं बेला रानी ! हिसाब-किताब की बात ठहरी। इसका साफ रहना ही ठीक है···मुन्शीजी खाता लेकर तुम्हें जोहते होंगे।'

'अच्छा चलो, मगर ज्यादा देर न लगे···'

'देर लग जायगी तो क्या···? मैं तो हूं न ? तुम्हें घर तक पहुंचा ही दूंगा···।'

अपने कमरे में बहीखाता खोले मुन्शीजी कुछ लिख रहे थे।

बगल में कड़वे तेल का दीपक जल रहा था, जिसमें पांच बत्तियां पांच ओर से प्रकाश कर रही थीं।

मुन्शीजी का चश्मा रह-रहकर आंख पर से खिसक रहा था और वे उसे बार-बार ऊपर उठाते-उठाते परेशान हो रहे थे।

'धत् तेरे की···!' कहकर मुन्शीजी ने चश्मा उतार कर नीचे रख दिया और बड़बड़ाये—'नाक पर बैठना नहीं चाहता साला!'

तभी आ पहुंचा रामसरन—'जैराम सरकार···!' उसने कहा और आंख मारकर पीछे की ओर इशारा किया।

मुन्शीजी ने उचककर देखा तो सिमटी-सिकुड़ी बेला खड़ी थी।

देखकर भयानक ढंग से मुस्कराये मुन्शीजी।

'आओ बेला रानी! बहुत दिनों पर भेंट हुई···। कली तो खिल गई है, रामसरन?'

'हां सरकार! क्या यह भी कहने की बात है···?' बोला रामसरन। कली के खिलने की बात बेला की समझ में नहीं आई। वह निर्द्वन्द खड़ी रही।

'इधर आकर बैठ जाओ, बेला···!' मुन्शीजी ने कहा—'अभी मैं तुम्हारा ही हिसाब देख रहा था···थोड़ा और बाकी है, उसे भी दम भर में पूरा किये देता हूं···तुम बाहर चलकर बैठो, रामसरन।'

बेला बैठ गई और रामसरन बाहर चला गया। मुन्शीजी पुनः कुछ लिखने-पढ़ने लगे। पता नहीं कि वे सचमुच कोई हिसाब लगा रहे थे या झूठ-मूठ समय बिताने के लिए कागज काला कर रहे थे।

घंटों बीत चले तब बैठे-बैठे बेला ऊब गई।

'बड़ी देर हो रही है, मुन्शी बाबू!' धीरे से बोली वह।

उस समय रात का सन्नाटा चारों ओर छा रहा था। लगता था जैसे नौ बजे ही गांव सोने चला गया है।

'जरा-सा ठहरो बेला, अब खतम हुआ ही समझो!' कहकर मुन्शीजी पुनः लिखने लगे।

आधे घंटे बाद उन्होंने सर उठाया, अंगड़ाई ली और क्रूर

नेत्रों में अगम प्यास भरकर बेला की ओर देखा।

बेला उस हिंसक पशु की भंगिमा देखकर अपने ही में कांप उठी।

'मेरा हिसाब बताओ, मुन्शीजी, नहीं तो मैं जाती हूं।' तीखे स्वर में बोली वह।

'इतनी जल्दी क्या है, बेला रानी ! तनिक ठहर जाओ···' मुन्शीजी ने हाथ बढ़ाकर नीचे बैठी हुई बेला की कलाई पकड़ ली और उसे उठाकर गद्दी पर बैठाना चाहा।

तभी बेला ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया और बोली—'शर्म नहीं आती तुम्हें ? बाप बराबर हो गए और···'

'और तुम्हारी हरकत नहीं गई, यही कहना चाहती थीं न तुम, बेला रानी ! तुम नाहक खफा होती हो···हाथ पकड़ने से मेरा मतलब यह था कि उठकर खड़ी हो जाओ और अपना हिसाब समझ लो···'

'तो बताओ फिर ?' कहकर बेला उठ खड़ी हुई।

'देखो।' मुन्शीजी ने एक कागज दिखाते हुए कहा, 'तुम्हारे बाप ने चार सौ कर्ज लिया था···'

'चार सौ ?'

'हां···परसाल ! ब्याज समेत इस वक्त हमारे नौ सौ रुपये हैं, बेला···! बोलो, ये रुपये कब देती हो ?'

'मेरे पास रुपये कहां हैं ?' बेला ने कहा।

'रुपये नहीं तो समझ लो कि तुम्हारा बगीचा और झोंपड़ी कुर्क कर ली जायेगी और तुम्हें निकाल बाहर किया जाएगा।'

'तो मैं रहूंगी कहां···?'

'चाहे जहां रहो जी···मैं क्या जानूं ? हमें तो अपने रुपयों से मतलब है···नहीं दोगी, तो कड़ाई की जाएगी।'

'कुछ तो कम कर दो, मुन्शी बाबू···? मेरे आगे-पीछे अब है ही कौन ?'

'कम तो एक कौड़ी भी होने की नहीं, कमी तो एक तरीके से हो सकती है।'

'किस तरीके से ?' बेला ने पूछा।

'देख···। इधर देख···।'

बेला ने उनकी ओर देखा—मुन्शीजी ने जबान निकालकर

अपने होंठ चाटे।

'बहुत नीच हो तुम, मुन्शीजी···! जरा पोखरे के पानी में अपनी सूरत तो जाकर देखो···' बेला तमक कर बोली।

'तो तुम जानो और तुम्हारा काम जाने, मैं नहीं जानता। जाकर सरकार से कहो, जो कुछ कहना हो।'

'ठाकुर से क्या कहूं, मुन्शी !' बेला जरा नम्र होकर बोली—'तुम्ही दया करो···तुम्हारी कलम में ही सब-कुछ है, चाहो तो मुझ अभागिन को उबार सकते हो।'

'मैंने तो रास्ता बता दिया। बोलो, तैयार हो उस पर···?' मुन्शीजी की क्रूर मुखाकृति पर क्रूर मुस्कान खिल उठी।

'यही सब करना होता, मुन्शी बाबू। तो आज इस तरह रोती क्यों? मरे हुए को तुम भी मारना चाहते हो, तो मार दो।'

'मानती हो मेरी बात?'

'नहीं, हजार बार नहीं, मर जाऊंगी, पर सत नहीं बेचूंगी।' बेला ने दृढ़ स्वर में कहा।

'रामसरन···।' मुन्शीजी ने पुकारा।

'आया सरकार···!' रामसरन भीतर आया—'क्या पटरी नहीं बैठी, मुन्शी बाबू?'

'नहीं···। यह सीधे से नहीं मानेगी—ले जाओ इसे सरकार के पास।'

'चलो बेला···।'

'मैं ठाकुर के पास इस बखत नहीं जाऊंगी—मुझे घर पहुंचा दो, रामसरन! तुम्हारे पैर पड़ती हूं मैं।'

'सीधी तरह चलती है या नहीं?'

लपक कर रामसरन ने बेला की कलाई पकड़ ली और उसे खींच ले चला।

ठाकुर बाहर चौपाल में चारपाई पर शराब के नशे में मस्त होकर झूम रहे थे। रामसरन ने बेला को पकड़कर भीतर धकेल दिया और बाहर से द्वार बन्द कर दिया। भयभीत हिरणी की तरह कांपती खड़ी रह गई बेला। और ठाकुर, वासनापूर्ण दृष्टि से उसके अंगप्रत्यंग पर आंख फेरने लगे, जैसे बेला की खिली हुई कली उनके सामने हवा के झोंकों से कांपती हुई खड़ी हो।

'वाह, बेला रानी…!' ठाकुर लड़खड़ाते पैरों से उठे—
'आओ…आओ…बड़े दिनों से बाट देख रहा था तुम्हारी।'

आगे बढ़ते हुए ठाकुर को देखकर बेला और भी सिमट गई। कलेजा हाथ-हाथ भर उछलने लगा उसका, शरीर का कंपन बढ़ गया।

जब मदमस्त ठाकुर ने उसकी कलाई पकड़ ली, तो बेला चीख पड़ी—'मुझे जाने दो ठाकुर! मैं मर जाऊंगी सरकार! मेरी इज्जत न लूटो माई-बाप!'

'बेला रानी! डरो नहीं…मैं कोई बाघ नहीं जो तुम्हें खा जाऊंगा, जरा अपनी सूरत तो देखो, कुलबेरा की कली लग रही हो तुम।'

ठाकुर ने बेला को खींचते हुए पलंग पर ला बिठाया और बेला के छटपटाते हुए शरीर को बाजुओं में समेटकर पीस डाला …बेला समझ गईं कि इस भयानक नरक से उसका छुटकारा असम्भव है। उसने मन को मजबूत किया और मुक्ति का उपाय सोचने लगी।

सोचकर बोली वह—'ठहरो ठाकुर! अभी से उतावले न बनो।'

'मैं तुम्हारा दास हूं रानी। कहो तो तुम्हारे सामने अपनी जान दे दूं।'

'अरे ऐसा न कहो, सरकार!' बेला ने कोमल हाथों से ठाकुर का भयानक मुख छूते हुए कहा—'मैं किसके सहारे रहूंगी, मालिक?'

'मालिक! बेला तुमने मुझे मालिक कहा…हाय-हाय बेला रानी! मैं मर गया तुम्हारी इस बात पर।'

'मगर जरा दूर से बातें करो जी। चढ़े आ रहे हो ऊपर, बिलकुल सबर नहीं है तुममें…।' बोली बेला। अब उसकी धड़कन कम हो चली थी।

'लो ठहर जाता हूं, बेला रानी! बोलो क्या चाहती हो? क्या लोगी…?'

'दोगे ठाकुर…? जो मागूंगी, दोगे वह?' बेला ने पूछा।

वह एकटक खिड़की की ओर देख रही थी कि उसे खोलकर भागा जा सकता है या नहीं। खिड़की बन्द थी, परन्तु उसे खोल

लेना आसान था।

'तुम जो मांगोगी, दूंगा···बोलो, क्या चाहती हो ?'

'मुझे नौ सौ रुपये दो, ठाकुर···!'

'हुकुम रानी का और पूरा न हो। अभी अलमारी खोल-कर देता हूं···'

ठाकुर ताली का गुच्छा लेकर अलमारी की ओर बढ़े। ताले में ताली डालकर घुमाने लगे, परन्तु वह घूमी नहीं। घूमती कैसे ? नशे की झोंक में दूसरी ताली लगा दी थी ताले में।

वे बरबस उसे खोलने की कोशिश करने लगे, परन्तु ताला खुला नहीं। जोर का झटका दिया। ताली अन्दर ही टूट गई।

'अरे, ताली तो टूट गई, बेला रानी···! अब क्या करूं ?'

कहते हुए ठाकुर पीछे घूमे तो देखकर सहम गए—कमरे में कोई न था, जैसे बेला हवा बनकर उड़ गई थी।

'रामसरन···।' ठाकुर ने जोर से पुकारा।

'अभी आया सरकार।' दरवाजा खोलकर रामसरन भीतर आया—'अरे ! बेला कहां गई, राजा···?'

'मालूम होता है भाग गई, रामसरन···।'

'भाग गई···?' आश्चर्य से रामसरन बोला—'मैं तो दर-वाजे पर ही बैठा था, सरकार। दरवाजा बाहर से बन्द था। छोकरी बहुत चालू मालूम पड़ती है।'

'चारपाई के नीचे तो देखो, रामसरन···।' ठाकुर ने कहा।

रामसरन ने नीचे झुककर देखा। बोला—'यहां कोई नहीं है, मालिक···! अरे वह खिड़की खुली पड़ी है सरकार···!'

'पकड़ो-पकड़ो, रामसरन। वह उसी से भागी है।' ठाकुर ने हाथ मलते हुए कहा।

उसी समय घबड़ाये हुए मुन्शीजी दौड़े आये। मुंह खून लाल हो रहा था—आगे का शायद एक दांत टूट गया था।

'तुमने उसे देखा, मुन्शीजी ?' ठाकुर ने पूछा।

'देखा ही नहीं, पकड़ा भी था सरकार···।' मुन्शी ने कहा—'मगर कम्बखत ने मुझे ऐसा हाथी मार धक्का दिया कि मैं मुंह के बल गिर पड़ा··· यह देखिये सरकार ! एक दांत···।'

'कहां थे तुम ?'

'उसी खिड़की के नीचे था, सरकार···! मैं समझ गया था

कि वह भागेगी जरूर···इसीलिए वहां खड़ा था—मगर क्या बताऊं, सरकार···! हाथ में आकर निकल गई बेईमान।'

मुन्शीजी उस खिड़की के नीचे इसलिए खड़े थे कि देखें ठाकुर और बेला में कैसी निपटती है।

'मैं अभी जाता हूं, सरकार! घर नहीं पहुंची होगी···! बीच ही से पकड़ लाता हूं।' रामसरन ने कहा।

'दौड़ते जाना रामसरन···।' बोले ठाकुर।

लपकता हुआ रामसरन चला गया।

'तुम्हारे मुंह से खून बह रहा है, मुन्शीजी।' ठाकुर मुन्शी जी की ओर घूमे।

'क्या करूं, सरकार···! वह अभी जवान है और मैं बूढ़ा। धक्का सम्हाल नहीं सका···मिरगी ने मुझे और भी कमजोर कर दिया है, राजा!'

'मुंह धो डालो, मुन्शीजी।'

'मुंह क्या धोऊं, सरकार! कौर तो मुंह में गया ही नहीं। खैर! मैं समझ लूंगा उस छोकरी से···कल उसके बाग, घर, जमीन सबकी कुर्की हो जानी चाहिए, सरकार!'

'अभी नहीं, मुन्शीजी। बेला अभी नादान है—उसे एक बार फिर सुनहरे जाल में फंसाने की कोशिश की जाएगी।' ठाकुर ने कहा।

'वह मानेगी नहीं, राजा···।'

'नहीं मानेगी, तो जाएगी कहां···? चाहे जब कुर्की कर सकते हैं···न कल, चार दिन बाद ही सही।'

'जब दर-दर की भीख मांगने लगेगी तब उसका दिमाग दुरुस्त होगा, सरकार। शैतान ने मेरे दांत भी तोड़ दिए···और एक टूटा-सा चश्मा था, वह भी न जाने कहां जा गिरा। पढ़ने-लिखने में अब बड़ी दिक्कत होगी, सरकार···!'

तभी दौड़ता-हांफता रामसरन पहुंचा।

'मिली या नहीं?' जल्दी से ठाकुर ने पूछा।

'नहीं सरकार।' निराश स्वर में रामसरन ने उत्तर दिया।

'उसके घर गये थे···?'

'गया था मालिक। घर का कोना-कोना छान मारा···।'

'बिल्ली बनकर कहीं दुबक गई होगी।' मुन्शीजी ने कहा।

'तुम्हारी तरह मुझे चश्मा थोड़े ही लगता है, मुन्शी बाबू ! सुई भी बनकर लेटी होती तो भी मैं खोज लेता।' रामसरन बोला।

'शायद जुगल के घर न चली गई हो ?'

'उसके यहां क्या जाएगी, सरकार···? उसे तो वह सवेरे ही तमाचा मार चुकी है।'

'फिर भी तुम्हें वहां देख लेना चाहिए था···।' ठाकुर ने कहा।

'मैं कोई काम अधूरा नहीं छोड़ता सरकार···! वहां भी गया था। देख-दाखकर लौट आया···कोई नहीं था वहां।'

'कोई नहीं···? क्या पुरोहित और जुगल भी नहीं थे ?'

'वे दोनों तो थे सरकार ! अलग-अलग चारपाइयों पर सो रहे थे और घर का किवाड़ बन्द था। बेला वहां गई होती, तो उन्हें जगाती जरूर।'

'ठीक है, अब जाओ तुम लोग। कल सवेरे छिपे-छिपे उसकी खबर लेना—देखना, घर पर रहती है या नहीं ?' बोले ठाकुर।

रामसरन और मुन्शीजी बाहर आये। ठाकुर चारपाई पर जा लेटे।

बेला। सर और हाथ पर अस्मत लेकर भागी, तो सीधे भागती ही गई। इस समय उसके सामने विराट प्रश्न था। वह जानती थी कि ठाकुर के लठैत उसके पीछे दौड़ते हुए आते ही होंगे—और यदि वह सीधे घर गई तो कभी बच न सकेगी। उसने जिन्हें रक्षक समझा था, उन्हीं की वासना उसे भक्षण करने पर तुल गई।

वह भागती जा रही थी···और साथ ही भागते जा रहे थे भय उत्पन्न करने वाले उसके विचार।

सारा गांव निद्रा में निमग्न, उसके भागने की ओर से बेफिक्र था।

सुबह के अपने कार्य पर बेला पश्चात्ताप कर रही थी जुगल के गाल पर लगा हुआ बेला की कोमल हथेली का तमाचा, इस समय उसी के हृदय पर तड़-तड़ पड़ता मालूम पड़ा। अपनी भूल वह समझ गई थी। पैर भाग रहे थे और आंखें अश्रु-वर्षा कर रही थीं। पैर धूल से नहा रहे थे और गाल आंसुओं से भीग उठे

थे।

जुगल, बेला की इस विपत्ति से अनभिज्ञ घर के ओसारे में चारपाई पर लेटा था और निद्रा में सो रहा था।

पुरोहित की नींद घण्टा भर रात रहे खुल जाती थी। आज भी वे उसी समय उठे और नित्यक्रिया तथा स्नानादि से निपटकर आधे घंटे तक सध्या करते रहे। सन्ध्या से निवृत्त हो पुरोहित उठे और मिर्जई पहनकर टहलने चल दिये।

जुगल तब तक सोया ही था। थोड़ी देर बाद उसकी नींद उचट गई। उसे लगा जैसे उसकी चारपाई को कोई हिला रहा है। उसने सर उठाकर अपने पिता की चारपाई की ओर देखा। उन्हें उस पर न देख, वह समझ गया कि वे निवृत्त होकर प्रातः भ्रमण के लिए चले गये हैं।

उसकी चारपाई पुनः हिली··· शायद यह उसका भ्रम हो, यह सोचकर वह चुपचाप चारपाई पर उठकर बैठ गया।

थोडी देर बाद चारपाई पुनः हिली, जैसे कोई उसे हिला रहा हो। जुगल खाट से नीचे उतरा, यह देखने के लिए कि खाट के नीचे क्या है—कुत्ता या और कुछ।

उसने देखा—बोरे में सिमटी हुई कोई चीज हिल रही थी।

उसे आश्चर्य हुआ—क्या है यह ? इतने में ही वह गठरी पुनः हिली और एक ओर से दो पैर उसमें से निकल पड़े।

'कौन है···? पुकारा जुगल ने।

इस बार गठरी में कुछ अधिक कम्पन हुआ। बोरे का आवरण हटाकर एक सलोनी आकृति, चारपाई के नीचे से बाहर आ रही।

जुगल ने देखा तो देखता ही रह गया। उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। बेला खड़ी थी उसके सामने, सर नीचा किए हुए।

तो यह बेला कब और कैसे आ गई यहां और उसकी चारपाई के नीचे क्यों सो रही थी ?

'तू यहां कैसे···?'

बेला कुछ बोली नहीं, पांव के अंगूठे से जमीन कुरेदने लगी।

'बोलती क्यों नहीं···?' जुगल के स्वर में डांट-फटकार का

मिश्रण था।

'क्या बोलूं भैया···?' बेला की आवाज सवेरे के ओस की तरह भीग गई थी।

'यहां क्यों आई?'

'तब कहां जाती?'

'तेरा घर क्या हुआ जो यहां आकर पड़ गई···? कब आई थी यहां···?'

'बहुत रात के गए, जुगल भैया!'

'क्यों···?' जुगल प्रश्न पर प्रश्न करता जा रहा था।

'ठाकुर के लठैत मेरे पीछे पड़े थे···।' रुआंसे स्वर में बेला ने कहा।

बेला हवेली से भाग कर जुगल की चारपाई के नीचे छिप गई थी, क्योंकि वह जानती थी कि संसार में वही एक स्थान है, जहां उसे संरक्षण मिल सकता है और जुगल ही एक ऐसा व्यक्ति है जो उसकी सहायता कर सकता है।

'ठाकुर तो तेरा हितू है न! चल हट···जा उसी के पास।' बिगड़कर बोला जुगल।

'मैं नहीं जाऊंगी, जुगल भैया! मुझे माफ कर दो।'

'मैं तेरी सूरत तक नहीं देखना चाहता···।' जुगल तीव्र स्वर में बोला—'मेरी आंखों के सामने से दूर हो जा।'

'मैं नहीं जाती।'

'देखूं, कैसे नहीं जाती है···?' कहकर जुगल ने बेला के गालों पर जोर-जोर से कई तमाचे जड़ दिए।

बेला ज्यों की त्यों खड़ी रही। बोली—'मुझे मार डालो जुगल भैया, मैं नहीं जाऊंगी। आज मैं भली प्रकार जान सकी हूं कि मैं तुमसे विलग रहकर नहीं जी सकती।' कहते-कहते उसका गला भर आया। रुके हुए आंसू गालों पर बह चले।

जुगल ने अपना मुख दूसरी ओर फेर लिया। उपेक्षा से मर्माहत बेला ने जमीन पर लोटकर जुगल के पैर पकड़ लिए। कहने लगी—'मुझे माफी दे दो, जुगल भैया! तुम्हें छोड़कर मैं जाऊं तो कहां जाऊं? सभी तो मेरे लिए बाघ हो रहे हैं।'

आंखों से दो आंसू टपक कर जुगल के पैर चूमने लगे तो उसका सिंहासन डोल गया। उफ्···! ये आंसू। और उसके पैर

पर !

कहां तो वह उन आंसुओं को अपनी पलकों से पोंछा करता था—और कहां आज वही आंसू उसके पैर धो रहे हैं।

सम्हाल नहीं सका अपने को जुगल। बांह पकड़कर उसने बेला को उठाते हुए कहा—'चल उठ। मानेगी थोड़े ही···कल हाथ से तमाचा मारा था और आज आंखों से आंसू बहाकर तमाचे मारने आ पहुंची···अच्छा। अब रोना बन्द कर। आंसू आंख से निकला तो मैं तेरी चोटी पकड़कर फिरिहरी-सा नचा दूंगा···।'

अपने जुगल भैया का वही असीम प्यार पाकर बेला से न रोते बना, न हंसते।

'भैया···!' उसके मुख से केवल इतना ही निकला।

जुगल ने, ओसारे के धूमिल कोने में उस कोमल शरीर को अपने पास खींच लिया और स्नेह से भरकर उसके सर पर, उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

'एक दिन भी अकेले नहीं रह सकती तू ?'

'भैया···।' अब तक बेला सम्हल चुकी थी—'तुम्हारी चारपाई के नीचे आकर छिप न जाती तो सर्वनाश निश्चित था। मैं छिपी-छिपी आंखों से देख रही थी. रामसरन मेरा पीछा करता हुआ आया···पहले घर की तरफ गया और वहां मुझे न पाकर लौट आया। तब तुम्हारे ओसारे के पास आकर देखने लगा। जब उसने पंडित काका और तुमको सोते देखा तब निराश होकर हवेली की ओर लौट गया···यदि वह किसी प्रकार की जबरदस्ती करता, तो मैं तुम्हें जरूर जगाती।'

'जगाया होता तो मैं उस शैतान की हड्डी-पसली तोड़ देता। वह अपने को पहलवान बनता है—समझता है कि गांव में उसके जैसा कोई नहीं···वह नहीं जानता कि जुगल उसके जैसे बरसाती मेढकों को अच्छी तरह पानी पिला सकता है···।'

'तो क्या तुम उससे लड़ते, भैया ? बेला ने पूछा।

'और क्या ? लड़ता भी और उसकी लाठी छीनकर उसकी मरम्मत भी कर देता···।'

'अच्छा जी। देखने में तो तुम सनई सरीखे हो, मगर काम बबूल के कांटे का करते, क्यों जुगल भैया ?'

'हां रे हां···। अच्छा जल्दी से दातुन वगैरह कर ले। रशीद के यहां चलना है।' जुगल बोला।

'वहां क्या है···?'

'मेरे चार मित्र आए हैं—कल शाम को उनसे मिलने भी नहीं गया। चलकर देखना, उनमें से एक रामसरन से भी बढ़कर पहलवान है।'

'उतना ही हट्टा-कट्टा जितना जंगल का हाथी?' बेला ने पूछा।

'अरे उससे भी अधिक।' हंसकर बोला जुगल।

'क्या नाम है?'

'प्रेमचन्द···!'

'मैं तब उन्हें भीमचन्द पुकारूंगी भैया! बिगड़ोगे तो नहीं?'

'बड़ा बिगड़ैल है वह, दो-चार चपत लगाये बिना न रहेगा तुझे···।' जुगल ने कहा।

इसके बाद दोनों नित्य-क्रिया में लग गए। एक घण्टे में खाली होकर दोनों ने भीगे हुए थोड़े-से चनों का जलपान किया और चल पड़े रशीद के घर की ओर।

रास्ते में रामसरन मिला, जैसे बेला को जुगल के साथ देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ और वह खिड़की की तरह आंखें खोले हुए उन दोनों की ओर देखता ही रह गया।

बेला ने रामसरन को देखकर जमीन पर थूक दिया और रामसरन इस तरह तिलमिला उठा, जैसे वह थूक सीधे उसके मुंह पर आकर पड़ा हो—मगर जुगल के रहते उसे कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ी और वह दांत पीसता हुआ चला गया।

मस्त चाल से जुगल और बेला आगे बढ़ते गए।

'रामसरन को देखा नहीं, भैया···! ऐसा मुंह उतरा हुआ था, जैसे सैकड़ों जूते लगे हों।' बेला ने कहा।

'जाने दे बेईमान को—तू डरती क्यों है?' जुगल बोला—'पहले तो मैं अकेला ही था, अब तो चार और आ गए हैं—सभी आफत के परकाले हैं—ऐसे पर हाने कि ठाकुर के सभी लठैतों को दमभर में पछाड़ दें···अरे! पिताजी भी यहीं हैं क्या···?'

जुगल रशीद के दरवाजे पर पहुंच गया और पास ही पुरो-

हित का जुगल देखकर ही उसने अन्तिम वाक्य कहा था।

दोनों साथ-साथ अन्दर आए। देखा—चारों मित्र पुआल के गद्दे पर रजाई ओढ़े बैठे हैं, पुरोहित एक मचिया पर आसीन हैं और रशीद, जमीला बोरा बिछाकर सबसे अलग बैठे हैं।

'लो पण्डित काका ! जुगल भी आ गया।' रशीद ने कहा।

'अरे बेला रानी भी सवेरे-सवेरे महकने चली आई हैं···।' जमीला बोली।

मित्रगण बेला को देखकर हंस पड़े।

जुगल मित्रों के पास जा बैठा, और बेला जमीला के पास बैठ गई।

'आप कब आए···?' प्रसन्नतापूर्ण स्वर में जुगल ने पूछा।

'तुम इन्हें घर नहीं ले आए तो मैंने सोचा स्वयं ही चलकर इनसे मिल आऊं, नहीं तो ये सब कहेंगे कि जुगल का पिता बड़ा मनहूस है।'

'आजकल के छोकरे जो न कह दें, पण्डित काका।' रशीद हंसकर बोला।

'सो तो है बेटा···। ये जुगल के मित्र जुगल से कम शैतान थोड़े ही हैं···देखो न—आते ही सुई भौंक दी हाथ में—कहा कि प्लेग की दवा है।'

'अच्छा, तो आपको भी सुई लग गई, पिताजी···?' जुगल विस्मय में भर कर बोला।

'पिताजी को हम लोग छोड़ कैसे देते, जुगल !' गिरीश ने कहा।

उन युवकों के मुख से पिताजी का सम्बोधन पुरोहित को बड़ा ही हृदयग्राही लगा और उन्होंने समझ लिया कि अब उनके एक नहीं पांच बेटे हैं।

सच तो यह है कि जुगल की दी हुई पुस्तकों का अध्ययन करके रूढ़िवादी पुरोहित का हृदय बहुत-कुछ बदल चुका था।

'मैं लगवाता नहीं था—।' पुरोहित ने कहा—'मगर इस प्रेमचन्द ने मुझे ऐसा पकड़ लिया कि हाथ छुड़ाये नहीं छूटा··· और तब तक इस गिरीश ने सुई कोंच दी, परन्तु पीड़ा जरा भी नहीं हुई जुगल।'

'गिरीश, तुम्हारे लिए एक रोगी और लाया हूं—लो इसे

भी सुई लगा दो···' जुगल ने बेला की ओर इशारा करते हुए कहा।

गिरीश अब तक बेला की ओर एकटक देख रहा था और बेला भी कभी-कभी अपनी शर्म से बोझिल पलकें उठाकर उसकी ओर देख लेती थी।

आंखों द्वारा शब्दहीन मूक बातें हो रही थीं—कि जुगल की आवाज सुनकर दोनों चौंक पड़े, जैसे किसी ने उनके प्रेम-व्यापार में अकस्मात् लात मार दी हो।

'क्या कहा तुमने, जुगल···?' गिरीश ने पूछा। शायद वह जुगल की बात ठीक से सुन नहीं सका था।

'इस बेला को भी इनाक्यूलेट कर दो···' जुगल ने पुनः कहा।

'हां हां। अभी लो···'

गिरीश तुरन्त उठा और सिरिन्ज तैयार करने लगा।

'मैं नहीं लगवाऊंगी···' बेला तुनक कर बोली।

'लगवायेगी कैसे नहीं?' जमीला ने कहा—'देख, मैंने भी लगवाया है।'

'परन्तु मुझे तो डर लग रहा है···।'

सिरिंज लेकर आगे बढ़ता हुआ गिरीश बोला—'डर की कोई बात नहीं, तुम बैठी रहो।'

उसने आगे बढ़कर बेला की बांह पकड़ ली। बेला को वह स्पर्श ऐसा मधुर लगा कि वह हिली तक नहीं।

गिरीश ने धीरे से सुई मांस-पेशियों के अन्दर खिसका दी।

बेला चिल्ला उठी—'अरी मैया री···!'

हाथ थोड़ा-सा हिला, तो गिरीश बोला—'इन्हें पकड़ो तो जुगल···?'

परन्तु जुगल के उठने से पहले ही जमीला ने बेला को कसकर बांहों में पकड़ लिया। बोली—'हाय अल्ला? तू तो बात-बात में माई-बप्पा मचाने लगती है, बेला रानी···!'

गिरीश सुई लगाकर पुनः अपने स्थान पर बैठ गया।

'उसे छुओ मत बेला··· ।' गिरीश ने कहा।

उसके मुख से अपना नाम बेला, उसे बड़ा मधुर प्रतीत हुआ। बोली—'अच्छा जी! तुमने मेरा हाथ पत्थर बना दिया,

अब ऊपर से डागडरी झाड़ रहे हो ?'

'अच्छा भाई ! तुम लोग लड़ो-झगड़ो।' पुरोहित जी उठते हुए बोले—'मुझे कथा बांचने जाना है।'

'फिर कब दर्शन होंगे, पिताजी···।' प्रेमचन्द ने पूछा।

'अब तो तुम्हीं लोग घर पर आना, बेटा···।'

'हम तो पहले दिन ही आये होते—मगर जुगल कहने लगा कि हमारा घर छोटा है···।'

'छोटा तो है ही— मगर घड़ी, घण्टे के लिए तो आ ही सकते हो।' पुरोहित बोले।

'अब काम से खाली होकर ही आयेंगे, पिताजी···!' नटवर ने कहा।

पुरोहित उठकर चल दिए।

'कल कहां रह गए थे, जुगल···?' गिरीश ने पूछा।

'कुछ मत पूछो भाई···! कल यह बेला रूठ गई थी···।'

'और ये दिन भर रोते रहे···।' जमीला ने वाक्य पूरा कर दिया।

'वाह भाभी ! खूब कहा तुमने—यही मैं कहने जा रहा था।' प्रेमचन्द जमीला को शाबाशी देने लगा।

'अच्छा छोड़ो इन बातों को···।' गिरीश ने कहा—'आज हमारा प्रोग्राम क्या रहेगा, यह बताओ ?'

'आज हम लोग घूमकर सारा गांव देखेंगे···' प्रेमचन्द ने कहा—'कूड़े-करकट की सफाई के लिए भी प्रबन्ध करना पड़ेगा···इसके बाद हम गांव वालों को सुई लगाना और समझाना आरम्भ कर देंगे···'

'गांव वाले मुझसे जलते हैं···' जुगल बोला—'सीधे से न तो कोई सुई लगवायेगा और न हमारी बात ही सुनेगा।'

'पटक-पटककर सुई लगायेंगे यार ! तब ये सीधी राह पर आयेंगे। हो किस फेर में तुम ?' प्रेमचन्द ने यह वाक्य इस ढंग से कहा कि सभी हंस पड़े।

'तुम लोग नाश्ता-पानी कर चुके ?' जुगल ने पूछा।

'अजी ! यह तो घड़ी रात रहते ही हो चुका···' गिरीश ने कहा।

'तो उठो आज ही से शुरू कर दिया जाय काम।' जुगल

ने कहा।

तुरन्त ही फुर्तीले युवक गर्दन झाड़कर उठ खड़े हुए।

गिरीश ने अपना डाक्टरी वाला बैग कन्धे से लटकाया।

'अरे जुगल ! सफाई के लिए सामान वगैरह तो ले लो...' नटवर ने कहा।

'भाभी !' जुगल बोला—'दो-तीन फरसे और चार-पांच झाबों का इन्तजाम करो...और तुम, बेला और रशीद—सभी हमारे साथ चलो, कूड़ा-करकट ढोना है—'

'चलो जमीला...' हंसकर बोला रशीद—'इन दीवानों से पीछा नहीं छूटेगा...'

थोड़ी ही देर में फरसा, कुदाल और झाबे लिए हुए वे सब निकल पड़े। एक जगह बहुत-सा कूड़ा जमा था, वहीं सब रुक गये। बगल में ही एक कुआं था।

'देखो...।' गिरीश बोला—'यह कूड़ा ले जाकर उस खुली जगह में जमा करो और आग लगा दो—तब तक मैं कुएं में पोटाशियम परमेगनेट छोड़ता हूं।'

फरसे लेकर सब कूड़े के ढेर पर टूट पड़े।

बेला और जमीला झाबे में कूड़ा भर-भरकर मैदान में जमा करने लगीं।

आस-पास के गांव वाले उनका यह पागलपन देखकर हंस रहे थे।

गिरीश कुएं पर चढ़ गया और ढेर-सी बुकनी उसने उसके अन्दर छोड़ दी। प्रेमचन्द भी उसके साथ था।

'प्रेमचन्द...' गिरीश ने कहा।

'हां गिरीश भैया...!'

'मैं सिरिन्ज तैयार करता हूं—तुम इधर से जाते हुए लोगों को पकड़ लाओ—न माने तो घसीट लाओ।'

'अभी लाया, गिरीश भैया !'

कुएं की ऊंची जगत पर से प्रेमचन्द हनुमानजी की तरह नीचे कूद पड़ा। जाते हुए दो ग्रामीणों को पकड़ा उसने और गिरीश के पास घसीट लाया।

बेचारे ग्रामीण उन युवकों की वेष-भूषा देखकर डर रहे थे।

जब गिरीश सिरिन्ज लेकर आगे बढ़ा, तो वे और भी डरे—परन्तु प्रेमचन्द ने उन्हें पकड़ लिया और गिरीश ने सुई लगा दी।

इसी प्रकार क्रम चलता रहा।

कूड़े का ढेर भी साफ हो गया था और उसमें आग लगा दी गई थी। दीवानों की टोली हंसते-कूदते वहां से आगे बढ़ी।

'देखो ! यह एक मरा चूहा पड़ा है—इसे भी उठाकर उस आग में डाल दो···' गिरीश ने कहा और नटवर ने उसकी पूर्ति की।

इसी प्रकार वे लोग लगभग शाम तक इस काम में लगे रहे। दो-तीन जगह के कूड़े साफ हुए और बीस-बाईस आदमियों को जबरदस्ती सुइयां लगाई गईं। शाम होने से एक घंटा पहले, सब लोग वापस लौटे और नाश्ता-पानी करके आपस में बातें करने लगे। सभी थक गये थे—परन्तु उत्साह ज्यों का त्यों था।

'गिरीश भइया !' प्रेमचन्द बोला।

'क्या है···?'

'गांव में एक शराबखाना है—देखा नहीं तुमने ?'

'देखा तो है···'

'कहो तो आज शाम को वहां पिकेटिंग की जाय···' प्रेमचन्द ने कहा—'गांव वाले शराब पी-पीकर और भी बरबाद होते जा रहे हैं।'

'हां यार ! अच्छी है यह तुम्हारी योजना।' विपिनबिहारी ने समर्थन किया।

'तो चलो फिर।' गिरीश ने कहा।

'मगर मैं बहुत थक गया हूं, भाई···!' जुगल बोला—'अब मुझसे नहीं चला जायगा···।'

'मैं जानता हूं तुम्हारी बात···।' प्रेमचन्द ने कहा—'बेला को लेकर तुम सरको यहां से—हम अपना काम अपने आप कर लेंगे।'

सब लोग बाहर आये। रशीद और जमीला खाने का प्रबंध करने के लिए वहीं छोड़ दिये गये।

गिरीश, प्रेमचन्द, नटवर और विपिनबिहारी चल पड़े

होली की ओर। बेला का हाथ पकड़कर जुगनू उसके घर की ओर चल पड़ा।

उस दिन होली में और दिनों की अपेक्षा अधिक भीड़ थी। वहां भी आज इन अलमस्त युवकों की जोरदार चर्चा चल रही थी।

कोई उनके काम पर हंस रहा था और कोई उनकी सुई को जहर से बुझी बता रहा था... शराब के नशे में वे मस्त थे।

कुछ वहीं बैठे हुए गप्पें लड़ा रहे थे, कुछ ताश खेल रहे थे, कुछ कौड़ियां खटका रहे थे और कुछ पीने जा रहे थे।

तभी चार युवकों की यह टोली-धड़धड़ाती हुई अन्दर पहुंच गई।

आगे-आगे प्रेमचन्द था। उसका हट्टा-कट्टा शरीर देखकर सभी भयभीत हो उठे। शिवपूजन हड़बड़ाकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

'का हुकुम है सरकार ?' बोला वह—'बिलायती नहीं है, कहिये तो अच्छी-सी देशी बोतल दे दूं...।'

'देशी बोतल की ऐसी की तैसी...!' प्रेमचन्द कड़ककर बोला—'इस शराब खाने को अभी बन्द करो।'

'सरकार, हमारी रोजी है यह...!' शिवपूजन गिड़गिड़ाते हुए बोला। परन्तु प्रेमचन्द ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और लपकता हुआ शराबियों के बीच आ खड़ा हुआ।

'तुम लोग शराब पीने आते हो यहां...?' गरजकर बोला वह—'याद रखो ! कल से अगर कोई यहां दिखाई पड़ा तो एक-एक की हड्डी-पसली चूर कर दूंगा।'

प्रेमचन्द का यह दरोगाना रोबदाब देखकर गिरीश आदि अलग खड़े मन-ही-मन हंस रहे थे। उनके बदन पर खाकी कमीज देखकर वे उसे पुलिस का आदमी समझ रहे थे।

प्रेमचन्द जानता था कि सदियों से पिसे हुए ये ग्रामीण, भइया-बाबू कहकर समझाने से नहीं मानेंगे। पहले उन्हें डराना-धमकाना होगा और फिर बाद में सहानुभूति प्रदर्शित कर अपनी ओर आकर्षित करना होगा।

धीरे-धीरे करके सारे शराबी दुम दबाकर चम्पत हो गये।

प्रेमचन्द आदि शराबियों को धमका रहे थे कि ठाकुर का लठैत बुल्ला धीरे से हौली में आया। शिवपूजन ने आंख बचा-कर बोतल उसे पकड़ा दी और वह जाने लगा।

तब तक प्रेमचन्द की दृष्टि उस पर पड़ गई। लपककर उसने बुल्ला का गला धर दबाया और बोतलें छीनकर जमीन पर पटक दीं।

'उसे मत छेड़ो सरकार···! वह ठाकुर का लठैत है।' शिवपूजन ने कहा।

'ठाकुर की ऐसी की तैसी···! जाकर कह देना कि अगर अब से शराब छूएंगे तो हवेली को खोद-खादकर खेत बना दूंगा।'

बुल्ला दुम दबाकर भागा वहां से।

'देखो साहू···!' प्रेमचन्द ने शिवपूजन से कहा—'अगर कल तुमने शराबखाने में ताला न लगा दिया, तो तुम्हारी खैर नहीं···'

'मर जाऊंगा मालिक···! कुछ ले लो, मुझे अपना पेट भरने दो···'

'दो···क्या देते हो···?'

शिवपूजन सन्दूक से पचास रुपये निकालकर देने लगा, तो प्रेमचन्द ने उसके मुंह पर कई झापड़ जड़ दिये।

'बेईमान कहीं का ! मुझे रुपये दिखाता है, घूस देता है।'

चारों मित्र जब हौली से निकलकर पगडण्डी पर आये, तो प्रेमचन्द के अभिनय पर खूब कहकहा लगा, खूब हंसी हुई।

'यह प्रेमचन्द न होता, तो गांव में इतनी जल्दी सफलता नहीं मिलती, गिरीश···।' विपिन ने कहा।

'तुम अपना चश्मा सम्भालो—तुमसे कुछ होना-जाना नहीं···' प्रेमचन्द ने कहा।

सभी मित्र रशीद के घर आकर खाना खाने के बाद सो रहे।

चौपाल में बैठे हुए ठाकुर आज काफी चिंतित थे। उन्होंने जुगल के मित्रों की खुराफात सुनी थी और उन्हें लग रहा था, जैसे उन उत्पाती युवकों के आगे उनकी सारी शक्ति फीकी

पड़ी जा रही हो।

बुल्ला को उन्होंने शराब लाने के लिए हौली भेजा था, वह भी बड़ी देर हुई अब तक नहीं आया था।

ठाकुर सोचने लगे कि इस उत्पात का किस प्रकार अन्त किया जाय ? तभी खाली हाथ बुल्ला ने वहां प्रवेश किया।

'लाये…?' ठाकुर ने पूछा।

'नहीं सरकार…! वे शैतान हौली में पहुंच गये थे…।' बुल्ला ने कहा—'एक-एक की गर्दन पकड़कर बाहर निकाल दिया। सभी अफसर जैसे लगते हैं, मालिक ! और उनमें से एक तो पूरा भीम है। मेरे पास कूदकर आया और मेरी गर्दन पकड़कर दोनों बोतलें छीन लीं। मैं तो हक्का-बक्का रह गया, सरकार…! भीतर की जान ऊपर आकर अब-तब करने लगी…'

'अच्छा…!' ठाकुर शांत होकर सुनते रहे। वे जानते थे कि इस समय तैश में आना समयानुकूल न होगा।

'उस भीम ने कहा कि ठाकुर अगर शराब छुएंगे तो हवेली को खोदकर खेत बना दूंग।…'

'देखना है जीत किसकी होती है…। तुम जा सकते हो।'

बुल्ला चला गया। थोड़ी देर बाद ही रामसरन आया। बोला—'सुनते हैं कि हौली बन्द हो गयी सरकार ! हुकुम हो तो जाकर खुलवा दूं…।'

'नहीं…! मौका देखकर काम करो, रामसरन ! नीति से नहीं चलोगे तो सारा बल हवा हो जायेगा। कल मुन्शीजी को लेकर बेला का सारा सामान कुर्क कर लो।' ठाकुर ने कहा।

'यह तो होगा ही सरकार…! मगर इस वक्त मजेदार खबर लाया हूं…।' बोला रामसरन।

'क्या…?'

'बेला और जुगल किवाड़ बन्द करके शाम से ही अन्दर हैं। पता नहीं क्या कर रहे हैं ? बाहर से दरवाजे की कुंडी चढ़ा आया हूं। गांव वालों को भी इस बात की भनक दे आया हूं। हुकुम हो तो सबको लेकर बेला के घर को घेर लिया जाय और जुगल की पोल खोल दी जाय। गांव वाले भी देख लें कि जुगल कैसा रंगा-सियार है ?'

'ठीक है, ऐसा ही करो।'

आज्ञा पाकर रामसरन तुरन्त बाहर निकला और घर-घर घूमकर इस बात का प्रचार करने लगा। जो भी सुनता उसके साथ हो लेता। गांव वालों को यह देखने की इच्छा जरूर थी कि देखें ऊंट किस करवट बैठता है।

थोड़ी देर में रामसरन ने सैकड़ों की भीड़ अपने साथ कर ली। सब शोर मचाते हुए बेला के घर की ओर बढ़े। रात में भी, दिन जैसा शोर मच गया गांव में।

बेला और जुगल घर के भीतर एक ही खटोले पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। जब अधिक देर हो गई तो जुगल उठते हुए बोला—'अब चलूं बेला…?'

'मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगी, जुगल भइया! जाना चाहते हो तो मुझे भी साथ ले चलो…अकेली मैं इस घर में नहीं रहूंगी।'

'अच्छा चल…! तू भी चल!' बेला भी उठ खड़ी हुई। जुगल दरवाजा खोलने लगा तो खुला नहीं।

'क्या है जुगल भइया…?' बेला ने पूछा।

'दरबाजा नहीं खुलता…लगता है, बाहर से बन्द है…।' जुगल ने कहा।

'मगर बाहर से किसने बन्द कर दिया? हम लोग तो अंदर ही हैं।'

उसी समय बाहरो से जोर का हो-हल्ला सुनाई पड़ा। भीड़ बेला के घर आकर इकट्ठी हो गई थी।

'इसी में हैं…दोनों इसी मे हैं…किवाड़ तोड़ डालो…'

'दोनों को पत्थरों से मार-मार कर जमीन पर ढेर कर दो…गांव में ऐसी बेहमाई नहीं होनी चाहिए।'

'खून कर डालो दोनों का।'

'जुगल बामन का नहीं चमार का बेटा है…जहरी नाग है—गांव भर को जहर देता फिरता है।'

इसी तरह की कितनी ही आवाजें, बाहर से भीतर सुनाई पड़ रही थीं। बेला डर कर जुगल के शरीर से लिपट गई। भयभीत स्वर में बोली—'अब क्या होगा, जुगल भइया?'

जुगल उपस्थित संकट को समझने की चेष्टा करने लगा और बेला के शरीर को अपने कलेजे से लगाते हुए बोला—

'घबड़ा मत तू, कुछ नहीं होगा।'

'तुम अकेले हो जुगल भइया, और वे बहुत हैं...' बेला परिस्थिति की गम्भीरता समझ गई थी।

जुगल भी जानता था कि इस समय क्रोधित भीड़ जो न कर डाले, इसलिए वह अपने हृदय को कड़ा बनाये हुए था।

बाहर से दरवाजे की कुण्डी खटकी। जुगल ने बेला को कलेजे से हटाकर पीठ पीछे कर लिया। बोला—'हमेशा मेरे पीछे रहना तुम...।'

दरवाजा खुला। भीड़ में से कई लालटेनें ऊपर उठ गईं। उनके प्रकाश में जुगल ने सबसे आगे खड़े रामसरन को देखा। तुरन्त ही वह इस खुराफात की जड़ को समझ गया।

'बाहर निकलो।' भीड़ चिल्लाई।

धीरे से जुगल बाहर आया। बेला छाया की भांति उसकी पीठ से सटी रही।

'यही है...चमार का बेटा यही है...।'

'मारो लाठी...शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दो...।'

'पत्थर चलाओ...।'

उत्तोजित भीड़ चिल्लाने लगी।

'खबरदार...!' बादल की तरह गरजा जुगल, कि भीड़ सन्नाटे में आ गयी—'अगर किसी ने कुछ गड़बड़ी की तो एक-एक को मैं समझ लूंगा।'

जुगल का साहस और आत्मविश्वास देखकर भीड़ स्तब्ध रह गयी। आपस में कानाफूसी करने लगे सब।

'यहां क्यों आए हो...?' पुनः गरजा जुगल।

भीड़ में से कोई न बोला। उनकी कायरता देखकर राम-सरन क्रोधित हो उठा। वह आगे आकर बोला—'तुम इस घर में बेला के साथ क्या कर रहे थे?'

'कुछ भी कर रहा था...तुमसे मतलब।'

'मतलब क्यों नहीं...?' चिल्लाया रामसरन—'तुम गांव की बहू-बेटियों को खराब कर रहे हो—गांव वाले इसे कभी बरदाश्त नहीं कर सकते...।'

'गांव वाले अन्धे हैं...उनमें यदि वास्तविकता समझने की शक्ति नहीं तो यह उनका दोष है।'

'तुम अन्धे हो—तुम शैतान हो···।' गला फाड़कर चिल्लाया रामसरन। वह भीड़ में पुनः उत्तेजना लाना चाहता था।

'जबान सम्हाल कर बोलो, रामसरन··।'

'तुम जबान सम्हालो, नहीं तो उसे मुंह से बाहर खींच लूंगा।'

भीड़ का हो-हल्ला सुनकर रामसरन की खूनी लाठी हवा में उठी और सनसनाती हुई जुगल की ओर लपकी।

जुगल बेला को खींचकर कई पग पीछे हट गया और भरपूर ताकत से चलायी गयी लाठी, जमीन का चुम्बन करके बीच से दो टुकड़े हो गयी।

लाठी के टूट जाने से रामसरन और भी क्रोधित हो उठा। इस समय भीड़ उसके हाथ में थी और वह उसका नेता था।

चिल्लाया वह—'मारो···। मारकर इसे जमीन पर सुला दो।'

उसी समय पूर्ण उत्तेजित भीड़ ने पत्थर चलाना आरम्भ कर दिया।

जुगल ने बेला के शरीर को खींचकर अपने नीचे दबा लिया और बैठ गया। पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े आते रहे और जुगल की पीठ पर, सर पर, अविराम गति से गिरते रहे। उसी समय भीड़ में कुछ खलबली मची।

रामसरन ने देखा कि उत्तेजित भीड़ ने ढेले फेंकना बन्द कर दिया है और अन्धाधुन्ध इधर-उधर भाग रही है और भागती हुई भीड़ की पीठ पर लाठियों की आवाज बोल रही है—भद्द ! भद्द !!

'क्या है, कौन भीड़ पर लाठियां चला रहा है ?' रामसरन ने भागते हुए लोगों में से एक से पूछा।

कोई उत्तर नहीं मिला। रामसरन भौंचक्का-सा होकर विमूढ़ बन गया। भीड़ बेतहासा भागती चली जा रही थी—उनकी सारी उत्तेजना काफूर हो चुकी थी।

रामसरन ने दृष्टि उठाकर सामने देखा, तो वह भी भाग चला।

'प्रेमचन्द···।' कोई चिल्लाया—'पकड़ना तो उस हरामी

को। चोर की तरह भागा जा रहा है।'

'अभी पकड़ता हूं, गिरीश भैया !' प्रेमचन्द ने चुटकी बजाते हुए कहा—'कहाँ जायगा भागकर ?'

अपने मित्रों का स्वर कान में पड़ते ही जुगल उठ खड़ा हुआ। उसके सर से लहू टपक रहा था।

उसने देखा—भीमकाय प्रेमचन्द, रामसरन को जमीन पर पटक कर बेतहासा कुटम्मस कर रहा है।

उसके अन्य तीन मित्र भी हाथ में लाठियां लिए, भागती हुई भीड़ पर लाठियां बरसा रहे हैं।

चार शेरों ने सैकड़ों भेड़ों की भीड़ को तितर-बितर कर दिया था।

गिरीश, नटवर और विपिनबिहारी, लाठियां फटकारते हुए जुगल के पास आये।

'अरे प्रेमचन्द ! अब छोड़ दो उसे।' गिरीश ने कहा।

'बोलो मत तुम गिरीश भैया ! साले की जान निकालकर ही दम लूंगा आज···अपने को पहलवान समझता है।'

रामसरन को पटक कर प्रेमचन्द उसपर मुक्के से निरन्तर प्रहार करता जा रहा था। मारे जोश के आंखें मुंद गयी थीं उसकी।

अवसर पाकर जब रामसरन भाग गया, तब भी प्रेमचन्द जमीन पर मुक्के पटकता रहा—'बेईमान ले। जैसी करनी वैसी भरनी···।'

'आयं। भाग गया···?' होश में आकर प्रेमचन्द उठा और मित्रों के पास आकर खड़ा हो गया।

'जुगल को काफी चोटें लगी हैं, गिरीश भैया···! जल्दी से पट्टी बांध दो।' नटवर ने कहा।

'पट्टी बांधने से पहले एक काम करो···।' जुगल ने कहा —'रशीद के घर जाकर तुम लोग अपना सामान यहीं उठा लाओ। अब सबका एक साथ रहना ही ठीक होगा···खाना वहीं चलकर खाया जायगा।'

'यह भी ठीक है···।' गिरीश ने कहा—'तुम तीनों सामान लेने चले जाओ। रशीद को सारी बातें बता देना और बहुत जल्द आना।'

प्रेमचन्द और नटवर तथा विपिनबिहारी चले गये सामान लेने।

'तुम लोग एकाएक कैसे आ गये, यार...?' जुगल ने पूछा।

'गांव भर में शोर हो गया था, जुगल...।' गिरीश बोला —'सभी तुम्हें गाली देते हुए चले जा रहे थे। रशीद ने आकर सारी बातें मुझसे बतायीं, तो हम लोग तुरन्त तैयार हो गए। चलते-चलते भाभी ने हमारे हाथों में एक-एक लाठी पकड़ा दी।'

'बेला...! ओ बेला!'

बेला अभी तक जमीन पर पड़ी थी—शायद बेहोश हो गई थी। जुगल ने उसे हिलाया-डुलाया।

'यह क्या कर रहे हो जुगल?' गिरीश बिगड़कर बोला—'चलो, इसे अन्दर ले चलकर लिटा दें...शीघ्र ही वह होश में आ जायगी।'

झुककर गिरीश ने अकेले उस कोमल शरीर को अपनी बांहों पर उठा लिया और खटोले पर लाकर सुला दिया। पास बैठकर उसकी नब्ज देखने लगा।

'कोई डर नहीं, जरा सी बेहोशी है...थोड़ा पानी लाओ।' बोला वह—जुगल ने लोटे में भर कर पानी दिया। गिरीश उसके मुख पर छींटे देने लगा। उंगलियों से दबाकर उसकी नाक बन्द कर दी, तो बेला को तुरन्त होश आ गया। आंख खुलते ही उसकी दृष्टि गिरीश पर पड़ी, जो उसकी नाक बन्द किए उसके मुख पर झुका हुआ जिज्ञासातुर आंखों से उसे देख रहा था। बेला हड़बड़ाकर उठ बैठी।

'जुगल भैया...! जुगल भैया!' वह चिल्लाई, जैसे जुगल को वह खो बैठी हो।

'घबड़ा मत! मैं इधर खड़ा हूं...।' जुगल उसके पास आता हुआ बोला।

'भैया...!' लपक कर उठी बेला और दौड़कर जुगल के गले से लग गई—'तुम्हें कहीं चोट तो नहीं आयी, जुगल भैया?'

परन्तु उसके हाथ में जब गरम-गरम खून लगा, तो वह एकदम चौंक पड़ी। ध्यान से जुगल का सर देखने लगी। फूटा

सिर देखकर उसका हृदय हाहाकार कर उठा।

'तुम्हारा सर फूट गया है जुगल भैया!' कहकर बेला सिसकने लगी। उसने कभी किसी का खून देखा नहीं था—और आज देखा भी तो स्वयं अपने जुगल भैया का···उसका कलेजा चीत्कार कर उठा।

अलग खड़ा हुआ गिरीश मन्त्रमुग्ध दृष्टि से रोती हुई बेला को देख रहा था और सोच रहा था, कि इन दोनों में कितना निष्कपट, कितना निष्कलंक प्रेम है।

'रोती क्यों है पगली कहीं की?' जुगल ने कहा—'जरा-सा खून देखकर क्यों मरी जा रही है···इसे तो अभी गिरीश बन्द कर देगा।'

और तब बेला ने करुण आंखों से गिरीश की ओर देखा। मूक नेत्र जैसे सजीव भाषा में बोल रहे हों—मेरे जुगल भैया का खून अभी बन्द कर दो।

'घबराओ मत बेला···!' गिरीश ने सान्त्वना देते हुए कहा—'मेरा सामान आ जाने दो, अभी पट्टी बांधकर चंगा कर देता हूं।'

तभी तीनों मित्र सारा सामान कन्धे पर लादे आ पहुंचे।

बड़ा-सा बिस्तर जमीन पर पटकते हुए बोला नटवर—'देखो तो गिरीश भैया! इस भीम जैसे प्रेमचन्द ने मेरे सर पर तो यह बड़ा-सा गट्ठर लाद दिया और खुद तुम्हारा छोटा-सा सूटकेस लेकर आया है··· मैंने गट्ठर लेने को कहा तो कहने लगा—इसमें दवाइयां हैं, तुम लोग तोड़ दोगे तो गिरीश भैया बिगड़ने लगेंगे···।'

'तुम तो कूड़ा ढोने वाले कुली हो···।' प्रेमचन्द बोला—'तुम बोझा न ढोओगे, तो करोगे क्या?'

'और तुम कौनसे नवाब हो?' नटवर चिढ़कर बोला। वह हांफ रहा था बोझा ढोने के कारण।

'बको मत! मैं गिरीश भैया का कम्पाउंडर हूं···।' प्रेमचन्द ने कहा—'झाड़ू उठाकर जल्दी से घर साफ कर सारे बिस्तर लगा दो···।'

'हमीं सब-कुछ करें, तुम कुर्सी लगाकर बैठे रहो? बड़े बाप के बेटे हो न! मैं कुछ नहीं करूंगा··!'

'क्या झगड़ा मचा रखा है, प्रेमचन्द…!' गिरीश ने अपना बैग खोलते हुए कहा—'जल्दी से सब कोई मिलकर सफाई कर लो… तब तक मैं जुगल को पट्टी बांध देता हूं।'

एक घण्टे के अन्दर सफाई हो गयी, पट्टी बंध गयी, बिस्तर भी लग गया और सब लम्बी तानने की तैयारी करने लगे।

जमीन पर ही सब सो रहे। कोने में बेला थी, उसके बाद जुगल था और जुगल के बाद गिरीश, प्रेमचन्द आदि थे।

रात अधिक बीत चली थी अतः थोड़ी देर में ही सब खर्राटे लेने लगे। चोट की पीड़ा से जुगल जाग रहा था और जुगल की पीड़ा से बेला भी…।

दोनों बड़ी देर तक बातें करते रहे। बेला को जुगल के मित्र बड़े पसन्द आये थे। आज उसका घर इतने आदमियों की चहल-पहल से जगमगा उठा था। वह बड़ी प्रसन्न थी।

रात बीतती चली जा रही थी और बेला का बड़ा-सा मुर्गा जाग कर बांग दे रहा था…तब जुगल को सोये थोड़ी ही देर हुई थी।

उसे सोते देखकर बेला कुछ निश्चिन्त हुई और उसकी पलकों में भी नींद आ बैठी।

उस मित्र-मण्डली में गिरीश ही सबसे पहले उठने का अभ्यस्त था। वह जानता था कि जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ और प्रसन्न रखता है। आज भी वह सबसे पहले उठा, परन्तु और दिनों से कुछ आज देर अवश्य हो गयी थी।

झोंपड़ीनुमा उस घर में कुछ-कुछ उजाला हो चुका था। आंख खुलते ही गिरीश की दृष्टि सबसे पहले बेला के सलोने मुख पर पड़ी—

होंठों पर उसके क्षीण मुस्कान झलक रही थी और पलकें नींद के भार से बोझिल होकर बन्द पड़ी थीं। कुछ देर तक गिरीश उसे अपलक देखता रहा, फिर बारी-बारी से उसने प्रेमचन्द आदि को जगाया। सब एक-दो बार हां-हूं करते हुए उठ बैठे।

जुगल और बेला सोये ही रहे। गिरीश ने उन्हें नहीं जगाया क्योंकि कम-से-कम जुगल के लिए सोना अत्यन्त आवश्यक

था।

कुछ देर तक सब लोग धीरे-धीरे बातें करते रहे। इतने में ही बेला जाग पड़ी और जुगल को जगाने लगी।

'उसे सोने दो, बेला···!' गिरीश बोला—'चोट लगी है न, इसलिए सोना जरूरी है।'

'अच्छा जी···।' बेला मुस्कराकर बोली—'तुम अपनी डागडरी अपने पास रखे रहो—भालू की तरह दिन में भी ऊंघते रहना क्या अच्छी बात है···? भैया! ओ जुगल भैया!'

बेला ने जुगल को जगाकर ही दम लिया।

जुगल झल्लाया हुआ उठ बैठा—'क्या है री···? सुबह-सुबह सिर खाने लगी···आज से यहां नहीं सोऊंगा मैं।'

'भला जी भला! मत सोना यहां—बस न···! इस बखत तो उठकर बैठो। बेला ने कहा।

गिरीश को बेला की देहाती बोली—अच्छा जी, भला जी, भुला, आदि बड़ी अच्छी लगी।

रात में रामसरन मार खाकर पूरा बौखला गया था, परन्तु उसने यह बात किसी से बतायी नहीं। सबेरे ही वह मुन्शीजी तथा लठैतों को लेकर बेला के घर की कुर्की करने आया। उसने सोच रखा था कि इस समय अकेली बेला ही होगी घर पर, तो मनमानी लूट-पाट मचेगी।

मित्रगण भीतर बैठे हुए अभी गप-शप कर ही रहे थे कि बाहर से किसी ने पुकारा—'बेला···! अरे बेलवा!'

'कौन···?' प्रेमचन्द्र ताल ठोंककर उठ खड़ा हुआ और बाहर आया।

रामसरन को खड़ा देखकर उसकी भवें तन गईं। रामसरन भी भयभीत हो उठा। वह क्या जानता था कि बेला की झोंपड़ी से यह शेर दहाड़ता हुआ निकल पड़ेगा।

'क्या है···?' कठोर स्वर में प्रेमचन्द ने पूछा।

रामसरन ने मुन्शीजी की ओर देखा और मुन्शीजी ने रामसरन की ओर। दोनों में से कोई भी आगे बोलने को तैयार न था।

'बोलते क्यों नहीं ?'

प्रेमचन्द ऐसा तड़का कि मुन्शीजी की नाक पर टिका हुआ

कान में कसकर न बंधी होती।

'बात यह है? बात यह है कि···।' हकलाते हुए बोले मुन्शीजी—'मैं ठाकुर साहब का मुन्शी हूं···।'

'ठाकुर का कुत्ता कहो ।' फिर गरजा प्रेमचन्द—'बोलो क्यों आये हो?'

'कुर्की करने···।'

'कैसी कुर्की···?'

'बेला पर ठाकुर के नौ सौ रुपये आते हैं···।' मुन्शीजी ने कहा—'झूठ नहीं कहता, यह हिसाब देख लीजिए···।'

मुन्शीजी ने एक कागज उसके आगे बढ़ाना चाहा, तब तक लपक कर प्रेमचन्द ने स्वयं ही वह कागज छीन लिया।

डरकर मुन्शीजी कई कदम पीछे हट गये। उन्होंने समझा कि यह उसकी कुटम्मस करने आ रहा है।

'यही हिसाब है तुम्हारा···?' प्रेमचन्द ने पूछा—'इसी को लेकर कुर्की करने चले हो···?' प्रेमचन्द ने वह कागज फाड़ कर फेंक दिया—'तुम्हारे बाप ने भी कभी कुर्की की थी?'

तब तक अन्य लोग भी भीतर से बाहर निकल आए।

युवकों की पलटन देखकर लठैतों की हिम्मत पस्त हो गयी और मुन्शीजी के पैर घुटनों तक कांपते पत्तों की तरह हिलने लगे—जबान तालू से जा सटी।

'क्या है प्रेमचन्द···?' गिरीश ने पूछा।

'यह देखो गिरीश भैया! उल्लू कभी देखे हैं तुमने···? देख लो—एक नहीं चार-चार हैं कुर्की करने आये हैं।'

'हमारे रुपये दिला दीजिए, साहब! हम चले जायं···।' बड़े साहस से रामसरन ने कहा।

'अबे रुपये के बच्चे! रात की मार भूल गया क्या?' प्रेमचन्द चिल्लाकर बोला—'जाकर अपने ठाकुर से कह दे कि अब इस गांव में मनमानी नहीं चलेगी। रुपये वसूल करने हों तो शहर में आकर कचहरी में दावा करें···उनके बाप की जमीन नहीं है जो कुर्की कर लेंगे···।'

बुल्खा और सरजू लट्ठ सम्हाले खड़े थे। सरजू तो चाहता था कि अधिक बढ़-बढ़कर बोलते हुए इस युवक की पीठ पर

दो-चार लट्ठ जमाकर देखें—परन्तु रामसरन रात में ही उसकी ताकत देख चुका था, अतः उसने सरजू को चुप रहने का इशारा किया।

'तुम लोग ठाकुर की ताकत हो न···?' प्रेमचन्द ने कहा—'इच्छा हो तो लाठी के दो-चार हाथ बज जायें—एक साथ तुम तीनों को मारकर जमीन न सुघा दूं तो कहना···अब से अगर तुम लोगों ने कोई भी शरारत गांव में की, तो समझ लो ! घर के अन्दर से खींचकर मारूंगा और तुम मुर्गी की एक टांग वाले मुन्शीजी ! अब अपनी कलम तोड़ दो, नहीं तो अपने दाहिने हाथ की कलाई कटी हुई समझो···! तुम्हारे अत्याचार के विषय में, मैं जगल से सुन चुका हूं।'

कांपते हुए खड़े मुन्शी जी अपनी दाहिनी कलाई छूकर देखने लगे कि कहीं कट तो नहीं गयी।

'मैं सरकारी आदमी हूं···।' प्रेमचन्द कहता गया—'सरकार ने तुम्हारी शिकायत सुनकर हम लोगों को यहां भेजा है। रात में तुम लोगों ने जो खुराफात मचाई थी, उसके लिए मैं चाहूं तो तुम्हें जेल की हवा खिला सकता हूं, मगर बिल में रहने वाले चूहों और कीड़ों-मकोड़ों से शेर नही लड़ा करते, समझे ! मेरे पास पिस्तौल भी है—दिखाऊं तुम लोगों को···! नटवर, जरा पिस्तौल तो उठाना !'

पिस्तौल तो थी नहीं मगर नटवर यों ही भीतर जाने लगा।

प्रेमचन्द अपनी जेब टटोलकर बोला—'रहने दो नटवर ! मेरी जेब में ही है···।'

उसने कार्क लगी हुई धमाका छोड़ने वाली बच्चों की एक पिस्तौल जेब से निकाली। लठैतों ने कभी मामूली पिस्तौल तक नहीं देखी थी—उस खिलौने को ही पिस्तौल समझकर डर गये। मुन्शीजी के पैर कांपते-कांपते थक गये थे, अब जो पिस्तौल देखा उन्होंने तो 'हनुमान चालीसा' का मन-ही-मन पाठ करते हुए जमीन पर बैठ गये।

'पूरे छः फायर करती है यह···।' प्रेमचन्द ने कहा—'देखो, इसकी आवाज तो देखते जाओ !'

प्रेमचन्द ने पिस्तौल का मुख आकाश की ओर करके घोड़े

पर हाथ रखा। कार्क तो पहले ही लगा हुआ था। घोड़ा दबाते ही ऐसी दन्नाटे की आवाज हुई कि मुन्शीजी जोर से चीखकर जमीन पर लेट गये, जैसे गोली सीधी उनके कलेजे के पार हो गई हो।

लठैतों का भी धैर्य जाता रहा और बेला तो जोरों से चिल्ला उठी। उसने समझा प्रेमचन्द ने मुन्शीजी का खून कर डाला है।

जुगल ने बेला को सम्हाला और धीरे से उसके कान में कहा—'डर मत, वह तो खिलवाड़ कर रहा है।'

अब बेला को तसल्ली हुई। प्रेमचन्द की धमकी से डरे लठैत और मुन्शीजी, दुम दबाकर भाग खड़े हुए।

'देखा···!' प्रेमचन्द ताल ठोकता हुआ बोला।

'बड़ा ब्लफ करता है यह तो···।' जुगल हंसकर कहने लगा —'बेला तो मारे डर के सन्नाटे में आ गयी थी।'

'चलो, भाई! नहाना-धोना, दातुन-कुल्ला होगा या नहीं ?' नटवर ने कहा।

'चलो, हवेली के पास वाले कुएं पर चलें !' प्रेमचन्द ने कहा—'बड़ी अच्छी जगह है, कल मार्क किया था मैंने। क्यों गिरीश भैया ! ठीक रहेगा न···?'

'बिलकुल ठीक···!' गिरीश ने कहा।

सब लोग चटपट तैयार हो गये। घर में ताला लगाकर जुगल ने बेला को भी साथ ले लिया। अलबेले मित्रों की वह टोली ठाकुर के कुएं पर जाकर जम गयी,हवेली से थोड़ी ही दूर पर था वह कुआं।

प्रेमचन्द एक घर में घुसकर रस्सी और घड़ा मांग लाया, साथ ही पानी खींचने के लिए एक आदमी भी पकड़ता आया।

'यह कौन है, प्रेमचन्द···?'

'पानी खींचेगा, भैया···! कहता है चमार हूं, कुएं पर नहीं चढ़ूंगा, ठाकुर का कुआं है···।' फिर चमार की ओर अभिमुख हो बोला—'अरे भाई आ। नीचे ही क्यों खड़ा रह गया···?'

'मुझे माफ करो, सरकार···!' गिड़गिड़ाता हुआ चमार बोला—'ठाकुर वह सामने खड़े दातुन कर रहे हैं···।'

'क्या कर लेंगे ठाकुर···? जोरो से कहा प्रेमचन्द ने, ताकि

ठाकुर भी सुन लें और फिर हाथ पकड़कर चमार को कुएं पर चढ़ा लिया।

ठाकुर ने जब देखा तो दांत पीसकर रह गये। किसमें इतनी ताकत थी कि उन नवयुवकों को रोक सकता?

रामसरन और मुन्शीजी ने कुर्की से लौटकर जो बातें ठाकुर को बतायी थीं, उन्हें सुनकर वे दहल गए थे। सोच रहे थे कि जुगल अपने मित्रों को गांव में लाकर उनसे अच्छा बदला ले रहा है।

एक घण्टे के भीतर ही सब मित्र स्नानादि से छुट्टी पाकर रशीद के घर आये और नाश्ता करके पुनः निकल पड़े। रशीद और जमीला भी साथ थे। कल की तरह आज भी सफाई का काम प्रारम्भ हुआ।

प्रेमचन्द और गिरीश घर-घर घूमकर प्लेग का टीका लगाने लगे।

लोग इनसे डरते थे, अतः उन्हें अपनी ओर से निर्भय करने के विचार से प्रेमचन्द जब कभी दस-बीस आदमी एकत्र हो जाते थे, तो एक छोटा-मोटा भाषण दे डालता था—कहता था वह—

'भाइयो! हम लोगों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं··· हम तो तुम्हारी भलाई करने आए हैं···तुम्हारे गांव में प्लेग फैला हुआ है और तुम लोग अज्ञानता के कारण कीड़ों की तरह मर-खप रहे हो। सफ़ाई करना तुम नहीं जानते—रोग से अपनी हिफाजत तुम नहीं कर सकते—यही सब तुम लोगों को बताने के लिए हम लोग यहां आये हैं। तुम स्वयं देख रहे हो कि हम लोग अपने हाथों से तुम्हारा कूड़ा-करकट साफ कर रहे हैं, ···और तुम लोग डरकर हमसे दूर भागते हो। तुम्हें चाहिए कि हमारी मदद करो, हमारे काम में हाथ बंटाओ! फिर देखो प्लेग भागता है कि नहीं···? यह प्लेग गन्दगी से ही होता है। तुम्हें चाहिए कि अपना घर हमेशा साफ रखो। यह जो टीका हम तुम्हें लगा रहे हैं, यह प्लेग की दवा है, इसे लगवा लेने से प्लेग नहीं होता···।'

ऐसे भाषणों से ग्रामीणों पर अच्छा असर पड़ता। वे काफी भयभीत थे, परन्तु अब स्नेह और सहानुभूति पाकर उनके हृदय

मे उन युवकों के प्रति सद्भावना जाग उठी।

गांव में दो-चार जगह भाषण देते ही, पचीसों आदमी उनके साथ हो लिए और प्राणपण से सफाई में जुट गये। उन लोगों की देखा-देखी धीरे-धीरे कुछ अन्य ग्रामीण भी आ गए। संध्या तक सफाई और टीका लगाने का काम जोरों से होता रहा। अन्त में गिरीश ने कहा—'भाइयो! तुम लोगों की मदद से आज हमारा काम सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। रात को तुम लोग बेला के घर पर आना, तो हम लोग तुम्हें अन्य बहुत-सी बातें बतायेंगे। अब आज का काम समाप्त हुआ।' सब अपने-अपने घर गये।

दो घण्टा रात बीते, बेला के घर के सामने सैकड़ों ग्रामीणों की भीड़ एकत्र हो गयी। मित्रगण अपनी सफलता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

गिरीश ने उठकर नम्र शब्दों में सबकी अभ्यर्थना की और उन्हें विश्वास दिलाया कि उनके हाथों, गांव वालों का कभी कोई अनिष्ट नहीं होगा। इसके बाद उसने सफाई की श्रेष्ठता बतलाई, प्लेग होने के कारणों एवं उनके दूर करने के उपायों पर प्रकाश डाला। अन्त में टीके की उपयोगिता आदि विषयों पर सरल भाषा में उन्हें अच्छी तरह समझा दिया।

तत्पश्चात कुएं में डालने के लिए पोटेशियम परमैंगनेट और चूहे मारने की गोलियां वितरित की गईं। उपस्थित लोगों में से जिन्हें टीके नहीं लगे थे, उन्हें टीका लगाया गया। अन्त में जुगल ने कहना शुरू किया—

'भाइयो! इस समय आप लोगों को यहां पर देखकर मुझे आश्चर्य के साथ प्रसन्नता भी हो रही है। न जाने किसके बहकाने से आप लोग हमें अपना दुश्मन समझने लगे थे, आज आपको मालूम हो गया होगा कि हम और हमारे साथी आपके हितू हैं···हमारी कामना यही है कि गांव से प्लेग की बीमारी दूर हो जाय। इस काम में अगर आप लोग हमारा साथ देते रहे तो जल्दी ही चारों ओर हंसी-खुशी छा जायगी। गांव के हर स्त्री-पुरुष और बच्चे को टीका ले लेना चाहिए। कल हम लोग फिर घर-घर घूमेंगे और टीका लगायेंगे। मुझे विश्वास है कि सभी लोग हमारी मदद करेंगे···अगर आप लोग रोजाना

शाम को यहां पर जुटा करें तो हम आपको ग्रामोपयोगी अच्छी-अच्छी बातें बतायेंगे, जिनसे आपका हित होगा। जिसको भी बुखार आये या गिल्टी निकले, वह फौरन आकर हमारे यहां से दवा ले जाय।'

जुगल बैठ गया तो सभा विसर्जित हुई। सब ग्रामीण हंसते तथा बातें करते अपने-अपने घर चले गये।

दूसरे दिन गांव में पूरी जागृति आ गयी। घर-घर में सफाई की धूम मच गयी और झोंपड़ियां छोड़कर लोग घरों में आने लगे टीका लगवाने लगे, प्रत्येक कुएं में दवा छोड़ दी गई। चूहों को मारने वाली गोलियां बिखेर दी गयीं। मरे हुए चूहों को एकत्रित कर जलाया जाने लगा।

यद्यपि मुसलमान लोग युवकों की इस सभा में सम्मिलित नहीं होते थे, फिर भी दूसरों की देखा-देखी वे सभी सफाई में लग गये और टीके लेने लगे।

मित्र-मण्डली ने हिन्दू और मुसलमान का भेदभाव छोड़-कर सबकी सेवा की—इसलिए बहुतेरे मुसलमानों के दिल में इन युवकों के प्रति असीम श्रद्धा हो गयी। उन्हें बहकाने वालों का रंग फीका पड़ने लगा।

बेला के घर पर प्रतिदिन ग्रामीणों की सभा रात में जुटने लगी। मित्र-मण्डली उन्हें प्रतिदिन बाहरी दुनिया की अनेक रोचक बातें बताती और भोले ग्रामीण आश्चर्य करते कि इन चार दिन के जवानों में, सौ बरस की अनुभवी बुद्धि कहां से आ गयी?

सतत् प्रयत्न से प्लेग का आतंक कम होने लगा। धीरे-धीरे उसका नाम भी मिट चला।

केवल दो-तीन सप्ताह इस काम में लगे और इस अवधि में ही उन युवकों का प्रभाव गांव वालों पर अच्छी तरह जम चुका था। सभी उन्हें देवता की तरह मानने लगे थे।

क्रमशः मुसलमानों में भी उनका मान-सम्मान बढ़ चला और मजहब के दीवाने लगभग आधे मुसलमान रात्रि की सभा में सम्मिलित होने लगे। उनके हृदय की हिचक पूर्णतया दूर हो गई थी।

कुछ ही दिन और बीते, दस-बारह कट्टर मुसलमानों को

छोड़कर अन्य सभी एकता के रंग में रंग गये। मित्र-मण्डली नित्य ही हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भाषण देने लगी। इनकी वाणी में गजब की शक्ति थी।

जुम्मन आदि कट्टर मुसलमान अपना संगठन छिन्न-भिन्न होते देखकर बौखला गए। उन्हें रशीद पर पूरा सन्देह था। समझते थे कि रशीद ही मुसलमानों को बहका कर काफिरों की जमात में शामिल कर रहा है।

इसहाक मियां भी शहर से कई बार गांव में आये और जुम्मन से सारी बातें सुनकर बहुत क्रोधित हुए। परन्तु इस समय कुछ दिनों तक रुके रहना ही उन्हें हितकर मालूम पड़ा।

युवकों के आगमन से ठाकुर का अत्याचार आजकल एक-दम बन्द हो गया था। वे चुपचाप हवेली में पड़े रहते थे। लठैत और मुन्शीजी आजकल बेकार थे। कुछ था ही नहीं करने को।

गांव में इतनी जागृति देखकर असामाजिक-तत्व भयभीत थे और शिवपूजन साहू की हौली तो उसी दिन से बन्द हो गयी थी।

८

बेला और गिरीश के मध्य जो लज्जा और संकोच की दीवार खड़ी थी, वह धीरे-धीरे कमजोर पड़कर धराशायी हो गयी।

गिरीश उत्साहित होकर उसे साक्षर बनाने की सोचने लगा और अब उसने हिन्दी की पहली पुस्तक उसके सामने रखकर पढ़ने का प्रस्ताव किया तो वह तुरन्त तैयार हो गयी। वह भी चाहती थी कि इन्हीं जैसी तीव्र बुद्धि की वह भी बन जाय तो उसे कोई 'गंवारिन' नहीं कह सकेगा।

जितनी देर पढ़ती, मन लगाकर पढ़ती। गिरीश देख रहा था कि बेला में ग्रहण करने की शक्ति तीव्र है।

गिरीश को तब आश्चर्य हुआ, जब उसने एक सप्ताह में ही सौ तक गिनती और दस तक पहाड़ा सीख लिया। ककहरा और मात्रायें भी जान गयी।

अब वह नाम-धाम लिख पढ़ लेती थी। अकस्मात् उसकी दृष्टि किताब के कोने पर सुन्दर अक्षरों में लिखे अपने नाम 'बेला रानी' पर पड़ गयी। वह कभी अक्षरों की सुन्दरता और कभी गिरीश की सुन्दरता पर दृष्टिपात करती, मोहक मुस्कान मुस्करा पड़ती।

ऐसा एक बार नहीं अनेक बार हुआ तो गिरीश ने पूछ लिया—'क्या बार-बार देख रही हो मेरे मुंह पर···कुछ लगा-वगा तो नहीं है मुंह पर···?'

बेला जोरों से हंस पड़ी और उंगली से किताब के कोने पर लिखे 'बेला रानी' अक्षरों की ओर इंगितकर दिया और चिढ़ाती हुई ऐसी भागी जैसे तूफान!

बाहर से भीतर आते जुगल से वह टकराकर गिर पड़ी। पर तुरन्त ही वह उठकर खड़ी हो गई और सामने देखा जुगल मुस्करा रहा है।

'अच्छा जी।' बोली वह—'आंख मूंदकर चलते हो क्या आजकल?'

'अन्धी बनकर तो तू ही दौड़ती है···तूफान की तरह कहां

भागी जा रही थी ?'

'यह देखो जुगल भैया ! मेरा नाम लिखा है इस पर···।' बेला ने पुस्तक आगे कर दी। जुगल ने देखा—सुन्दर अक्षरों में लिखा था—बेला रानी···। देखकर एक क्षण के लिए जुगल का मुख मलीन पड़ गया।

'किसने लिखा है···?' उसने पूछा।

'उन्होंने।' बेला शायद गिरीश का नाम लेना नहीं चाहती थी।

'किसने···? गिरीश ने !'

'हां-हां···।'

कहते-कहते बेला का मुख गुलाब की तरह लाल हो उठा और इस लालिमा को जुगल ने भली प्रकार लक्ष्य किया।

एक पीड़ा-सी उठी उसके हृदय में, न जाने क्यों ?

वह छोटी-सी किताब बेला के हाथों में ठूंसकर, जुगल जाने लगा तो बेला ने पकड़कर कहा—'कहां जाते हो, जुगल भैया ?'

जुगल ने जोर से झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया। बोला—'कहां नहीं···तुम जाकर गिरीश के पास पढ़ो, मैं अभी आया।'

और वेदनाछन्न मुख लिए वह आगे बढ़ गया। बेला की समझ में यह बात नहीं आई कि जुगल को कहां और कैसे चोट पहुंची।

कुछ देर तक वह दरवाजे पर खड़ी रही, फिर गिरीश के साथ आकर बातें करने लगी। दोनों पढ़ते-पढ़ाते कम—बातें अधिक किया करते थे।

और जुगल चला जा रहा था।

रास्ते में ही मिल गया रशीद।

'अरे ! कहां जा रहे हो जुगल···?' बोला वह—'मैं तुमसे ही मिलने आ रहा था···'

'कहो, क्या काम है ?' उसने भरी आवाज में पूछा।

'परन्तु तुम्हें क्या हो गया है ?' रशीद ने उसके मुंह की ओर देखते हुए पूछा।

'कुछ भी तो नहीं···'

'फिर तुम्हारा मुंह इतना गमगीन क्यों है ?'

'यही तो···' कहकर जुगल एक मलीन हंसी हंस पड़ा।

'क्या कहने आये थे···! कोई जरूरी बात है क्या ?'

'हां, कुछ ऐसी ही बात है—चलो, बेला के घर बैठकर बातें होंगी···'

जुगल लौट पड़ा रशीद के साथ।

'और लोग कहां हैं···?' पूछा जुगल ने।

'गांव में घूम रहे हैं···' उत्तर दिया रशीद ने। फिर क्षण भर रुक कर पूछा—'गिरीश और बेला तो हैं न वहीं ?'

जुगल और रशीद घर में घुसे, तो बेला और गिरीश सट-कर बैठे हुए कुछ बातें कर रहे थे। रशीद ने एक बार ध्यान से उन दोनों को देखा और तब जुगल के चेहरे पर नजर डाली। उदासी का कारण समझ गया रशीद।

'आओ रशीद भाई···।' गिरीश ने कहा—'कैसे टपक पड़े आज ?'

रशीद और जुगल बैठ गए।

'बात यह है।' रशीद बोला—'कि हमारी जमात के कुछ गुण्डे खुराफात मचाना चाहते हैं—तुम लोगों को होशियार कर देना मैंने लाजिमी समझा।'

'कैसी खुराफात ?' गिरीश ने पूछा।

'मुझे छोड़कर यहां और सब मुसलमान पहले एक थे और उनका इरादा था कि मजहब की आड़ में यहां मुसलमाती अमलदारी कायम की जाय···मगर जब से तुम लोग यहां आये हो, ज्यादातर मुसलमान तुम लोगों से हमदर्दी रखने लगे हैं··· सिर्फ थोड़े-से बचे हैं, जिनके दिमाग में अब भी खूंरेजी की आग जल रही है और मौका पाकर वे शरारत से बाज नहीं आयेंगे। इसके लिए तुम्हें कोई रास्ता सोचना पड़ेगा।'

'हम समझ लेंगे सबसे, रशीद भाई। कितने होंगे सब मिला-कर ?'

'यही दस-बारह···! शहर से एक इसहाक मियां आते हैं, जिन्होंने जुम्मन को यहां का रहनुमा बनाया है और लड़ने के लिए शहर से पोशीदा तौर पर बहुत से हथियार भेजे हैं···आज दो-तीन दिन से उनकी मीटिंग हो रही है। कल मुझे भी बुला-कर डराया-धमकाया था।'

'क्या कहा उन लोगों ने ?' गिरीश ने पूछा।

'कह रहे थे कि तुम्हीं ने सब मुसलमानों को बहकाया है—हम तुम्हारी जान ले लेंगे…।'

'इसहाक मियां तो शहर के कट्टर मुसलिम लीगी हैं, शायद सेक्रेटरी भी हैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं मैं।' बोला गिरीश।

'आज दो-तीन दिन से गांव में आये हैं—शाम को मीटिंग होगी…' रशीद ने कहा—'अगर अभी से कुछ न किया गया तो भाई-भाई लड़ मरेंगे।'

'आज ही सब निपटारा हो जाएगा, रशीद भाई।' गिरीश ने कहा।

तब तक प्रेमचन्द आदि भी आ गए और सब लोग साथ बैठकर इस बात पर विचार करने लगे कि इन गुण्डों के संगठन को कैसे नष्ट किया जाय ?

उसी दिन शाम को—जुम्मन के घर कट्टर मुसलमानों का जमघट हुआ। छिपे-छिपे सब लोग एकत्रित हुए और आंगन में आ बैठे। इसहाक मियां भी तकिया के सहारे आ बैठे। केवल ग्यारह मुसलमान थे; सभी गुण्डे लग रहे थे। मुख पर क्रूरता की छाप थी। शरीफ मुसलमान तो उस जमात से पहले ही निकल चुके थे।

जुम्मन ने इसहाक की ओर देखते हुए कहा—'हमारे मनसूबों को इस गांव के कुछ बुजदिल मुसलमानों ने बालाये-ताक पर रख दिया…सभी काफिरों के दल में जा मिले। सिर्फ यही ग्यारह मुरीद बच रहे हैं, जो मौजूद हैं।'

'कोई बात नहीं, जुम्मन मियां।' इसहाक बोला—'ग्यारह सौ काफिरों से तो हमारे ग्यारह मजहबपरस्त बेहतर हैं। ये हमारी वह मदद करेंगे कि जमीन-आसमान के फरिश्ते वाह-वाह कर उठेंगे, हमारे मनसूबे नाउम्मीदों की दरिया में गर्क नहीं होंगे—आज नहीं तो कल हमारी फतह जरूर होगी…घबड़ाने की कोई बात नहीं, मेरे हमदर्द दोस्त !'

'यह सब उसी कम्बख्त रशीद की कारगुजारी है…।' एक ने कहा।

हम उससे समझ लेंगे, दोस्तो…! इस जंगे-मजहब में काफिरों का हर दोस्त हमारा दुश्मन है, चाहे वह मुसलमान हो

या खुदा का फरिश्ता। कायदे-आजम ने पाकिस्तान बना है और हम लोग उन्हीं के पाक हुक्म से हिन्दुस्तान में रहकर अपनी जड़ें मजबूत कर रहे हैं, ताकि हमले के वक्त हम पाकिस्तान को पूरी मदद कर सकें…'

'हम सब लोग आपके साथ हैं, किबला…।' सबने एक स्वर से कहा।'

'मौका हाथ में आकर निकल गया…' इसहाक बोला—'हमें हमारे ही दोस्तों ने धोखा दिया, मगर इतने से हम शिकस्त नहीं खा सकते। मौका आते ही हमारा हमला होगा…फतह हमारी होगी।'

इतने में ही जुम्मन के दरवाजे पर धांय से गोली की आवाज कड़क उठी और कच्चे मकान की दीवारें कांप उठीं।

सब घबड़ा कर उठ खड़े हुए।

'क्या बात है?' इसहाक ने पूछा।

तब तक धड़धड़ाते हुए प्रेमचन्द, जुगल, गिरीश आदि अन्दर घुस आए और उस जमात के बीच में आ खड़े हुए।

नटवर बाहर रह गया था, जो प्रेमचन्द की झूठी पिस्तौल में कार्क भर-भरकर धांय-धांय की आवाजें कर रहा था।

'खबरदार…!' प्रेमचन्द चिल्लाया—'कोई अपनी जगह से हिले नहीं—हमारे पास बन्दूकें हैं, सीना छेद के रख देंगी तुम लोगों का…ओह! आप भी हैं, इसहाक मियां?'

'तुम लोग यहां क्यों आए हुए हो? किसके हुक्म से घर में घुस पड़े…?' इसहाक ने कड़क कर पूछा।

'हम गांव के सरपंच हैं…' प्रेमचन्द ने कहा—'और गांव में होते हर विद्रोह को दबाने की हमारी जिम्मेदारी है…तुम यहां किसके हुक्म से आये हो, इसहाक मियां?'

'मेरी यहां रिश्तेदारी है।'

'तुम अपने रिश्तेदार भाई को, भाई के कलेजे में खंजर भौंकने की नसीहत देने आए हो, तुफ है तुम पर, तुम्हारी शराफत पर।'

'ज्यादा बढ़कर बातें मत करो, नहीं तो अक्ल ठिकाने लगा दी जाएगी।' इसहाक मियां बोले। वे जानते थे कि उनका

इशारा पाते ही वहां उपस्थित सभी मुसलमान इन काफिरों पर टूट पड़ेंगे और इन्हें जमीन पर सुलाकर ही दम लेंगे।

'गफलत में न रहो, इसहाक मियां।' प्रेमचन्द भी गरजा—'यहां का हर मुसलमान हमारे एहसान के बोझ से दबा है···प्लेग के डर से जब तुम शहर में छिपे बैठे थे, तब हमने हिन्दू और मुसलमान का भेद भुलाकर इन सबकी सेवा की है, सबको गले लगाकर अपना भाई स्वीकार किया है; मैं यह जानता हूं कि मजहबी मतभेद हो तो हो, मगर कोई भी मुसलमान एहसान-फरामोश नहीं हो सकता। मुझे विश्वास है कि यहां का हर आदमी मुझे अपना सगा भाई समझता है···।'

प्रेमचन्द राजनीतिक दांव-पेंच का सहारा लेकर इतनी बात कह गया, जिसका असर उन कट्टर मुसलमानों पर पड़े बिना न रहा। सभी के सर अपने आप नीचे झुक गए।

'हमारे पास ताकत भी है और हमदर्दी भी···' प्रेमचन्द कहता गया—'हमारे दिल में जहर भी है और अमृत भी। हम यहां इस प्रकार निडर होकर घुस आये हैं यह अपनी ताकत के बल पर ही···बाहर सैकड़ों आदमी इस घर के चारों तरफ हथियार लिए खामोश खड़े हैं, इशारा पाते ही तुम गद्दारों को चटनी की तरह पीस डालेंगे मगर हम यहां अपनी ताकत दिखाने नहीं आये हैं, हम अपने गुमराह भाइयों को रास्ता दिखाने आए हैं, उन्हें गले से लगाने आए हैं—यह कहने आए हैं कि खूंरेजी हैवानियत है और रहमदिली सच्ची इन्सानियत। हम गांव में सुख-शान्ति देखना चाहते हैं।'

'तुम अभी निकल जाओ यहां से···।' गरजा इसहाक—'हमें तुम्हारी नसीहत की जरूरत नहीं।'

'मैं तुम्हारे घर नहीं आया हूं, इसहाक मियां···। हम लोग जुम्मन मियां के घर आये हैं जो हमारे गांव के रईस मुसलमान हैं। अगर वे कहें तो हम अभी यहां से निकल जायेंगे। मगर जुम्मन मियां की जान खुद हमने बचाई है—इसको वे इनकार नहीं कर सकते, मुझे विश्वास है।'

कहकर प्रेमचन्द ने जुम्मन की ओर देखा। जुम्मन का सर नीचा हो गया। कुछ बोला नहीं वह।

'अरे मुसलमान भाइयो! आप लोग मेहरबानी करके बैठ

जायं और गौर से मेरी बात सुनें···' प्रेमचन्द ने कहा।

सभी मुसलमान अपनी जगह पर बैठ गए।

मित्र लोग भी इसहाक मियां की बगल में आसन जमा बैठे।

'गिरीश भैया ! बोलो तुम।' प्रेमचन्द बोला।

गिरीश उठा और कहने लगा—

'इस समय जबकि चारों ओर दुनिया में हाहाकार मचा हुआ है, खाने को अन्न और पहनने को कपड़ा नहीं मिलता—हमें दूध-पानी की तरह एक होकर काम करना चाहिए। दंगे-फसाद करने से, सिवा नुकसान के फायदा नहीं होगा। मजहब की दीवानगी हर हालत में खौफनाक है। दुनिया का कोई भी मजहब, एक-दूसरे इन्सान का गला काटने की इजाजत नहीं देता खून बहाने को नहीं कहता। मजहब का उसूल है—इन्सान के ख्यालात को ऊंचा उठाकर खुदा के पाक कदमों तक पहुंचाना। तुम्हारा खुदा और हमारा ईश्वर दो नहीं हैं और न तो हम दोनों में फर्क है···फर्क तो इन्सान का बनाया हुआ है, नफरत हमारे दिल का फितूर है। जो सुख पड़ोसी की सेवा करने में है, गला काटने में नहीं। इस लड़ाई-झगड़े से हर कौम के शरीफ हमेशा अलग रहे हैं और गुण्डों ने मनमाना खेल खेला है। शरीफ लुटे हैं और गुण्डों ने लूटा है। मुझे मालूम है कि इधर के दंगों में मुसलमान गुण्डों ने मुसलमान का घर, और हिन्दू गुण्डों ने हिन्दू का घर लूट लिया है। बदमाशों का कोई मजहब नहीं होता। लूटना और कत्ल करना ही उनका मजहब है···।'

सब मुसलमान ध्यान से एक-एक बात सुन रहे थे और बगल में बैठे हुए इसहाक मियां दांत पीस रहे थे। गिरीश पुनः कहने लगा—

'तुम लोग पाकिस्तान का स्वप्न देख रहे हो···परन्तु यह समझ लो कि पाकिस्तान जिन्हें मिलना था उन्हें मिल चुका। जो बादशाह बनना चाहते थे, वे बन चुके। तुम तो गरीब थे और अब भी वही हो···तब भी हिन्दुस्तान में थे और अब भी वहीं हो···तुम्हारे कायदे-आजम ने साफ शब्दों में कह दिया है कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों को पाकिस्तान में कोई जगह नहीं। पाकिस्तान के मुसलमान तो तुम्हें असली मुसलमान भी नहीं

'क्या झगड़ा मचा रखा है, प्रेमचन्द···!' गिरीश ने अपना बैग खोलते हुए कहा—'जल्दी से सब कोई मिलकर सफाई कर लो·· तब तक मैं जुगल को पट्टी बांध देता हूं।'

एक घण्टे के अन्दर सफाई हो गयी, पट्टी बंध गयी, विस्तर भी लग गया और सब लम्बी तानने की तैयारी करने लगे।

जमीन पर ही सब सो रहे। कोने में बेला थी, उसके बाद जुगल था और जुगल के बाद गिरीश, प्रेमचन्द आदि थे।

रात अधिक बीत चली थी अतः थोड़ी देर में ही सब खर्राटे लेने लगे। चोट की पीड़ा से जुगल जाग रहा था और जुगल की पीड़ा से बेला भी···।

दोनों बड़ी देर तक बातें करते रहे। बेला को जुगल के मित्र बड़े पसन्द आये थे। आज उसका घर इतने आदमियों की चहल-पहल से जगमगा उठा था। वह बड़ी प्रसन्न थी।

रात बीतती चली जा रही थी और बेला का बड़ा-सा मुर्गा जाग कर बांग दे रहा था···तब जुगल को सोये थोड़ी ही देर हुई थी।

उसे सोते देखकर बेला कुछ निश्चिन्त हुई और उसकी पलकों में भी नींद आ बैठी।

उस मित्र-मण्डली में गिरीश ही सबसे पहले उठने का अभ्यस्त था। वह जानता था कि जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ और प्रसन्न रखता है। आज भी वह सबसे पहले उठा, परन्तु और दिनों से कुछ आज देर अवश्य हो गयी थी।

झोंपड़ीनुमा उस घर में कुछ-कुछ उजाला हो चुका था। आंख खुलते ही गिरीश की दृष्टि सबसे पहले बेला के सलोने मुख पर पड़ी—

होंठों पर उसके क्षीण मुस्कान झलक रही थी और पलकें नींद के भार से बोझिल होकर बन्द पड़ी थीं। कुछ देर तक गिरीश उसे अपलक देखता रहा, फिर बारी-बारी से उसने प्रेमचन्द आदि को जगाया। सब एक-दो बार हां-हूं करते हुए उठ बैठे।

जुगल और बेला सोये ही रहे। गिरीश ने उन्हें नहीं जगाया क्योंकि कम-से-कम जुगल के लिए सोना अत्यन्त आवश्यक

था।

कुछ देर तक सब लोग धीरे-धीरे बातें करते रहे। इतने में ही बेला जाग पड़ी और जुगल को जगाने लगी।

'उसे सोने दो, बेला…!' गिरीश बोला—'चोट लगी है न, इसलिए सोना जरूरी है।'

'अच्छा जी…।' बेला मुस्कराकर बोली—'तुम अपनी डागडरी अपने पास रखे रहो—भालू की तरह दिन में भी ऊंघते रहना क्या अच्छी बात है…? भैया! ओ जुगल भैया!'

बेला ने जुगल को जगाकर ही दम लिया।

जुगल अलसाया हुआ उठ बैठा—'क्या है री…? सुबह-सुबह सिर खाने लगी…आज से यहां नहीं सोऊंगा मैं।'

'भला जी भला! मत सोना यहां—बस न…! इस बखत तो उठकर बैठो।' बेला ने कहा।

गिरीश को बेला की देहाती बोली—अच्छा जी, भला जी, मुला, बखत आदि बड़ी अच्छी लगी।

रात में रामसरन मार खाकर पूरा बौखला गया था, परन्तु उसने यह बात किसी से बतायी नहीं। सबेरे ही वह मुन्शीजी तथा लठैतों को लेकर बेला के घर की कुर्की करने आया। उसने सोच रखा था कि इस समय अकेली बेला ही होगी घर पर, तो मनमानी लूट-पाट मचेगी।

मित्रगण भीतर बैठे हुए अभी गप-शप कर ही रहे थे कि बाहर से किसी ने पुकारा—'बेला…! अरे बेलवा!'

'कौन…?' प्रेमचन्द्र ताल ठोंककर उठ खड़ा हुआ और बाहर आया।

रामसरन को खड़ा देखकर उसकी भवें तन गईं। रामसरन भी भयभीत हो उठा। वह क्या जानता था कि बेला की झोंपड़ी से यह शेर दहाड़ता हुआ निकल पड़ेगा।

'क्या है…?' कठोर स्वर में प्रेमचन्द ने पूछा।

रामसरन ने मुन्शीजी की ओर देखा और मुन्शीजी ने रामसरन की ओर। दोनों में से कोई भी आगे बोलने को तैयार न था।

'बोलते क्यों नहीं?'

प्रेमचन्द ऐसा तड़का कि मुन्शीजी की नाक पर टिका हुआ

चश्मा नीचे गिरते-गिरते बचा, गिर भी गया होता अगर डोरी कान में कसकर न बंधी होती।

'बात यह है? बात यह है कि···।' हकलाते हुए बोले मुन्शीजी—'मैं ठाकुर साहब का मुन्शी हूं···।'

ठाकुर का कुत्ता कहो···।' फिर गरजा प्रेमचन्द—'बोलो क्यों आये हो?'

'कुर्की करने···।'

'कैसी कुर्की···?'

'बेला पर ठाकुर के नौ सौ रुपये आते हैं···।' मुन्शीजी ने कहा—'झूठ नहीं कहता, यह हिसाब देख लीजिए···।'

मुन्शीजी ने एक कागज उसके आगे बढ़ाना चाहा, तब तक लपक कर प्रेमचन्द ने स्वयं ही वह कागज छीन लिया।

डरकर मुन्शीजी कई कदम पीछे हट गये। उन्होंने समझा कि यह उसकी कुटम्मस करने आ रहा है।

'यही हिसाब है तुम्हारा···?' प्रेमचन्द ने पूछा—'इसी को लेकर कुर्की करने चले···' प्रेमचन्द ने वह कागज फाड़ कर फेंक दिया—'तुम्हारे···ने भी कभी कुर्की की थी?'

तब तक अन्य लोग भी बाहर निकल आए।

युवकों की पलटन···की हिम्मत पस्त हो गयी और मुन्शीजी के पैर···पत्तों की तरह हिलने लगे···जबान तालू से···।

'क्या है प्रेमचन्द···?' गणेश ने पूछा।

'देखो···भी देखे हैं तुमने···? देख लो—एक नहीं चार-चार···कुर्की करने आये हैं।'

'हमारे रुपये दिला दीजिए, साहब! हम चले जायें···।' ···ने कहा।

'अबे कुत्ते के बच्चे! रात की मार भूल गया···?' प्रेमचन्द चिल्लाकर बोला—'जाकर अपने ठाकुर से कह दे कि अब इस गांव में मनमानी नहीं चलेगी। रुपये वसूल करने हों तो शहर में जाकर कचहरी में दावा करें···उनके बाप की जमीन नहीं है जो कुर्की कर लें···।'

बुल्ला और सरजू लट्ठ सम्हाले खड़े थे। सरजू तो चाहता था कि अधिक बढ़-बढ़कर बोलते हुए इस युवक की पीठ पर

दो-चार लट्ठ जमाकर देखें—परन्तु रामसरन रात में ही उसकी ताकत देख चुका था, अतः उसने सरजू को चुप रहने का इशारा किया।

'तुम लोग ठाकुर की ताकत हो न···?' प्रेमचन्द ने कहा —'इच्छा हो तो लाठी के दो-चार हाथ बज जायं—एक साथ तुम तीनों को मारकर जमीन न सुघा दूं तो कहना···अब से अगर तुम लोगों ने कोई भी शरारत गांव में की, तो समझ लो ! घर के अन्दर से खींचकर मारूंगा और तुम मुर्गी की एक टांग वाले मुन्शीजी ! अब अपनी कलम तोड़ दो, नहीं तो अपने दाहिने हाथ की कलाई कटी हुई समझो···! तुम्हारे अत्याचार के विषय में, मैं जंगल से सुन चुका हूं।'

कांपते हुए खड़े मुन्शी [illegible] अपनी दाहिनी कलाई छूकर देखने लगे कि कहीं [illegible] गयी।

'मैं सरका[illegible] प्रेमचन्द कहता गया—'सर-कार ने [illegible] तुम लोगों को यहां भेजा है। [illegible] मचाई थी, उसके लिए मैं चाहूं [illegible] हूं, मगर बिल में रहने वाले [illegible] नहीं लड़ा करते, समझे ! ऐसे [illegible] लोगों को···! नटवर, जरा

[illegible] नटवर यों ही भीतर जाने

[illegible]ा—'रहने दो नटवर !

[illegible] ड़ने वाली बच्चों की [illegible] कभी मामूली पिस्तौल [illegible] पिस्तौल समझकर डर [illegible] धक गये थे, अब जो [illegible] ीसा' का मन-ही-मन

[illegible]' प्रेमचन्द ने कहा—

[illegible] श की ओर करके बोले

पर हाथ रखा। कार्क तो पहले ही लगा हुआ था। घोड़ा दबाते ही ऐसी सन्नाटे की आवाज हुई कि मुन्शीजी जोर से चीखकर जमीन पर लेट गये, जैसे गोली सीधी उनके कलेजे के पार हो गई हो।

लठैतों का भी धैर्य जाता रहा और बेला तो जोरों से चिल्ला उठी। उसने समझा प्रेमचन्द ने मुन्शीजी का खून कर डाला है।

जुगल ने बेला को सम्हाला और धीरे से उसके कान में कहा—'डर मत, वह तो खिलवाड़ कर रहा है।'

अब बेला को तसल्ली हुई। प्रेमचन्द की धमकी से डरे लठैत और मुन्शीजी, दुम दबाकर भाग खड़े हुए।

'देखा···!' प्रेमचन्द ताल ठोकता हुआ बोला।

'बड़ा ब्लफ करता है यह तो···।' जुगल हंसकर कहने लगा —'बेला तो मारे डर के सन्नाटे में आ गयी थी।'

'चलो, भाई! नहाना-धोना, दातुन-कुल्ला होगा या नहीं?' नटवर ने कहा।

'चलो, हवेली के पास वाले कुएं पर चलें!' प्रेमचन्द ने कहा—'बड़ी अच्छी जगह है, कल मार्क किया था मैंने। क्यों गिरीश भैया! ठीक रहेगा न···?'

'बिलकुल ठीक···!' गिरीश ने कहा।

सब लोग चटपट तैयार हो गये। घर में ताला लगाकर जुगल ने बेला को भी साथ ले लिया। अलबेले मित्रों की वह टोली ठाकुर के कुएं पर जाकर जम गयी, हवेली से थोड़ी ही दूर पर था वह कुआं।

प्रेमचन्द एक घर में घुसकर रस्सी और घड़ा मांग लाया, साथ ही पानी खींचने के लिए एक आदमी भी पकड़ता आया।

'यह कौन है, प्रेमचन्द···?'

'पानी खींचेगा, भैया···! कहता है चमार हूं, कुएं पर नहीं चढ़ूंगा, ठाकुर का कुआं है···।' फिर चमार की ओर अभिमुख हो बोला—'अरे भाई आ। नीचे ही क्यों खड़ा रह गया···?'

'मुझे माफ करो, सरकार···!' गिड़गिड़ाता हुआ चमार बोला—'ठाकुर वह सामने खड़े दातुन कर रहे हैं···।'

'क्या कर लेंगे ठाकुर···? जोरों से कहा प्रेमचन्द ने, ताकि

ठाकुर भी सुन लें और फिर हाथ पकड़कर चमार को कुएं पर चढ़ा लिया।

ठाकुर ने जब देखा तो दांत पीसकर रह गये। किसमें इतनी ताकत थी कि उन नवयुवकों को रोक सकता?

रामसरन और मुन्शीजी ने कुर्की से लौटकर जो बातें ठाकुर को बतायी थीं, उन्हें सुनकर वे दहल गए थे। सोच रहे थे कि जुगल अपने मित्रों को गांव में लाकर उनसे अच्छा बदला ले रहा है।

एक घण्टे के भीतर ही सब मित्र स्नानादि से छुट्टी पाकर रशीद के घर आये और नाश्ता करके पुनः निकल पड़े। रशीद और जमीला भी साथ थे। कल की तरह आज भी सफाई का काम प्रारम्भ हुआ।

प्रेमचन्द और गिरीश घर-घर घूमकर प्लेग का टीका लगाने लगे।

लोग इनसे डरते थे, अतः उन्हें अपनी ओर से निर्भय करने के विचार से प्रेमचन्द जब कभी दस-बीस आदमी एकत्र हो जाते थे, तो एक छोटा-मोटा भाषण दे डालता था—कहता था वह—

'भाइयो! हम लोगों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं··· हम तो तुम्हारी भलाई करने आए हैं···तुम्हारे गांव में प्लेग फैला हुआ है और तुम लोग अज्ञानता के कारण कीड़ों की तरह मर-खप रहे हो। सफाई करना तुम नहीं जानते—रोग से अपनी हिफाजत तुम नहीं कर सकते—यही सब तुम लोगों को बताने के लिए हम लोग यहां आये हैं। तुम स्वयं देख रहे हो कि हम लोग अपने हाथों से तुम्हारा कूड़ा-करकट साफ कर रहे हैं, ···और तुम लोग डरकर हमसे दूर भागते हो। तुम्हें चाहिए कि हमारी मदद करो, हमारे काम में हाथ बंटाओ! फिर देखो प्लेग भागता है कि नहीं···? यह प्लेग गन्दगी से ही होता है। तुम्हें चाहिए कि अपना घर हमेशा साफ रखो। यह जो टीका हम तुम्हें लगा रहे हैं, यह प्लेग की दवा है, इसे लगवा लेने से प्लेग नहीं होता···।'

ऐसे भाषणों से ग्रामीणों पर अच्छा असर पड़ता। वे काफी भयभीत थे, परन्तु अब स्नेह और सहानुभूति पाकर उनके हृदय

मे उन युवकों के प्रति सद्भावना जाग उठी।

गांव में दो-चार जगह भाषण देते ही, पचीसों आदमी उनके साथ हो लिए और प्राणपण से सफाई में जुट गये। उन लोगों की देखा-देखी धीरे-धीरे कुछ अन्य ग्रामीण भी आ गए। सन्ध्या तक सफाई और टीका लगाने का काम जोरो से होता रहा। अन्त में गिरीश ने कहा—'भाइयो! तुम लोगों की मदद से आज हमारा काम सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। रात को तुम लोग बेला के घर पर आना, तो हम लोग तुम्हें अन्य बहुत-सी बातें बतायेंगे। अब आज का काम समाप्त हुआ।' सब अपने-अपने घर गये।

दो घण्टा रात बीते, बेला के घर के सामने सैकड़ों ग्रामीणों की भीड़ एकत्र हो गयी। मित्रगण अपनी सफलता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

गिरीश ने उठकर नम्र शब्दों में सबकी अभ्यर्थना की और उन्हें विश्वास दिलाया कि उनके हाथों, गांव वालों का कभी कोई अनिष्ट नहीं होगा। इसके बाद उसने सफाई की श्रेष्ठता बतलाई, प्लेग होने के कारणों एवं उनके दूर करने के उपायों पर प्रकाश डाला। अन्त में टीके की उपयोगिता आदि विषयों पर सरल भाषा में उन्हें अच्छी तरह समझा दिया।

तत्पश्चात कुएं में डालने के लिए पोटेशियम परमैगनेट और चूहे मारने की गोलियां वितरित की गईं। उपस्थित लोगों में से जिन्हें टीके नहीं लगे थे, उन्हें टीका लगाया गया। अन्त में जुगल ने कहना शुरू किया—

'भाइयो! इस समय आप लोगों को यहां पर देखकर मुझे आश्चर्य के साथ प्रसन्नता भी हो रही है। न जाने किसके बहकाने से आप लोग हमें अपना दुश्मन समझने लगे थे, आज आपको मालूम हो गया होगा कि हम और हमारे साथी आपके हितू हैं···हमारी कामना यही है कि गांव से प्लेग की बीमारी दूर हो जाय। इस काम में अगर आप लोग हमारा साथ देते रहे तो जल्दी ही चारों ओर हंसी-खुशी छा जायगी। गांव के हर स्त्री-पुरुष और बच्चे को टीका ले लेना चाहिए। कल हम लोग फिर घर-घर घूमेंगे और टीका लगायेंगे। मुझे विश्वास है कि सभी लोग हमारी मदद करेंगे···अगर आप लोग रोजाना

शाम को यहां पर जुटा करें तो हम आपको ग्रामोपयोगी अच्छी-अच्छी बातें बतायेंगे, जिनसे आपका हित होगा। जिसको भी बुखार आये या गिल्टी निकले, वह फौरन आकर हमारे यहां से दवा ले जाय।'

जुगल बैठ गया तो सभा विसर्जित हुई। सब ग्रामीण हंसते तथा बातें करते अपने-अपने घर चले गये।

दूसरे दिन गांव में पूरी जागृति आ गयी। घर-घर में सफाई की घूम मच गयी और झोंपड़ियां छोड़कर लोग घरों में आने लगे टीका लगवाने लगे, प्रत्येक कुएं में दवा छोड़ दी गई। चूहों को मारने वाली गोलियां बिखेर दी गयीं। मरे हुए चूहों को एकत्रित कर जलाया जाने लगा।

यद्यपि मुसलमान लोग युवकों की इस सभा में सम्मिलित नहीं होते थे, फिर भी दूसरों की देखा-देखी वे भी सफाई में लग गये और टीके लेने लगे।

मित्र-मण्डली ने हिन्दू और मुसलमान का भेदभाव छोड़-कर सबकी सेवा की—इसलिए बहुतेरे मुसलमानों के दिल में इन युवकों के प्रति असीम श्रद्धा हो गयी। उन्हें बहकाने वालों का रंग फीका पड़ने लगा।

बेला के घर पर प्रतिदिन ग्रामीणों की सभा रात में जुटने लगी। मित्र-मण्डली उन्हें प्रतिदिन बाहरी दुनिया की अनेक रोचक बातें बताती और भोले ग्रामीण आश्चर्य करते कि इन चार दिन के जवानों में, सौ बरस की अनुभवी बुद्धि कहां से आ गयी ?

सतत् प्रयत्न से प्लेग का आतंक कम होने लगा। धीरे-धीरे उसका नाम भी मिट चला।

केवल दो-तीन सप्ताह इस काम में लगे और इस अवधि में ही उन युवकों का प्रभाव गांव वालों पर अच्छी तरह जम चुका था। सभी उन्हें देवता की तरह मानने लगे थे।

क्रमशः मुसलमानों में भी उनका मान-सम्मान बढ़ चला और मजहब के दीवाने लगभग आधे मुसलमान रात्रि की सभा में सम्मिलित होने लगे। उनके हृदय की हिचक पूर्णतया दूर हो गई थी।

कुछ ही दिन और बीते, दस-बारह कट्टर मुसलमानों को

छोड़कर अन्य सभी एकता के रंग में रंग गये। मित्र-मण्डली नित्य ही हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भाषण देने लगी। इनकी वाणी म गजब की शक्ति थी।

जुम्मन आदि कट्टर मुसलमान अपना संगठन छिन्न-भिन्न होते देखकर बौखला गए। उन्हें रशीद पर पूरा सन्देह था। समझते थे कि रशीद ही मुसलमानों को बहका कर काफिरों की जमात में शामिल कर रहा है।

इसहाक मियां भी शहर से कई बार गांव में आये और जुम्मन से सारी बातें सुनकर बहुत क्रोधित हुए। परन्तु इस समय कुछ दिनों तक रुके रहना ही उन्हें हितकर मालूम पड़ा।

युवकों के आगमन से ठाकुर का अत्याचार आजकल एकदम बन्द हो गया था। वे चुपचाप हवेली में पड़े रहते थे। लठैत और मुन्शीजी आजकल बेकार थे। कुछ था ही नहीं करने को।

गांव में इतनी जागृति देखकर असामाजिक-तत्व भयभीत थे और शिवपूजन साहू की हौली तो उसी दिन से बन्द हो गयी थी।

बेला और गिरीश के मध्य जो लज्जा और संकोच की दीवार खड़ी थी, वह धीरे-धीरे कमजोर पड़कर धराशायी हो गयी।

गिरीश उत्साहित होकर उसे साक्षर बनाने की सोचने लगा और अब उसने हिन्दी की पहली पुस्तक उसके सामने रखकर पढ़ने का प्रस्ताव किया तो वह तुरन्त तैयार हो गयी। वह भी चाहती थी कि इन्हीं जैसी तीव्र बुद्धि की वह भी बन जाय तो उसे कोई 'गंवारिन' नहीं कह सकेगा।

जितनी देर पढ़ती, मन लगाकर पढ़ती। गिरीश देख रहा था कि बेला में ग्रहण करने की शक्ति तीव्र है।

गिरीश को तब आश्चर्य हुआ, जब उसने एक सप्ताह में ही सौ तक गिनती और दस तक पहाड़ा सीख लिया। ककहरा और मात्रायें भी जान गयी।

अब वह नाम-धाम लिख पढ़ लेती थी। अकस्मात् उसकी दृष्टि किताब के कोने पर सुन्दर अक्षरों में लिखे अपने नाम 'बेला रानी' पर पड़ गयी। वह कभी अक्षरों की सुन्दरता और कभी गिरीश की सुन्दरता पर दृष्टिपात करती, मोहक मुस्कान मुस्करा पड़ती।

ऐसा एक बार नहीं अनेक बार हुआ तो गिरीश ने पूछ लिया—'क्या बार-बार देख रही हो मेरे मुंह पर···कुछ लगा-वगा तो नहीं है मुंह पर···?'

बेला जोरो से हंस पड़ी और उंगली से किताब के कोने पर लिखे 'बेला रानी' अक्षरों की ओर इंगितकर दिया और चिढ़ाती हुई ऐसी भागी जैसे तूफान !

बाहर से भीतर आते जुगल से वह टकराकर गिर पड़ी। पर तुरन्त ही वह उठकर खड़ी हो गई और सामने देखा जुगल मुस्करा रहा है।

'अच्छा जी।' बोली वह—'आंख मूंदकर चलते हो क्या आजकल ?'

'अन्धी बनकर तो तू ही दौड़ती है···तूफान की तरह कहां

भागी जा रही थी ?'

'यह देखो जुगल भैया ! मेरा नाम लिखा है इस पर···।' बेला ने पुस्तक आगे कर दी। जुगल ने देखा—सुन्दर अक्षरों में लिखा था—बेला रानी···। देखकर एक क्षण के लिए जुगल का मुख मलीन पड़ गया।

'किसने लिखा है···?' उसने पूछा।

'उन्होंने।' बेला शायद गिरीश का नाम लेना नहीं चाहती थी।

'किसने···? गिरीश ने !'

'हां-हां···।'

कहते-कहते बेला का मुख गुलाब की तरह लाल हो उठा और इस लालिमा को जुगल ने भली प्रकार लक्ष्य किया।

एक पीड़ा-सी उठी उसके हृदय में, न जाने क्यों ?

वह छोटी-सी किताब बेला के हाथों में ठूंसकर, जुगल जाने लगा तो बेला ने पकड़कर कहा—'कहां जाते हो, जुगल भैया ?'

जुगल ने जोर से झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया। बोला—'कहां नहीं···तुम जाकर गिरीश के पास पढ़ो, मैं अभी आया।'

और वेदनाछन्न मुख लिए वह आगे बढ़ गया। बेला की समझ में यह बात नहीं आई कि जुगल को कहां और कैसे चोट पहुंची।

कुछ देर तक वह दरवाजे पर खड़ी रही, फिर गिरीश के साथ आकर बातें करने लगी। दोनों पढ़ते-पढ़ाते कम—बातें अधिक किया करते थे।

और जुगल चला जा रहा था।

रास्ते में ही मिल गया रशीद।

'अरे ! कहां जा रहे हो जुगल···?' बोला वह—'मैं तुमसे ही मिलने आ रहा था···'

'कहो, क्या काम है ?' उसने मरी आवाज में पूछा।

'परन्तु तुम्हें क्या हो गया है ?' रशीद ने उसके मुंह की ओर देखते हुए पूछा।

'कुछ भी तो नहीं···'

'फिर तुम्हारा मुंह इतना गमगीन क्यों है ?'

'नहीं तो···' कहकर जुगल एक मलीन हंसी हंस पड़ा।

'क्या कहने आये थे···! कोई जरूरी बात है क्या ?'

'हां, कुछ ऐसी ही बात है—चलो, बेला के घर बैठकर बातें होंगी···'

जुगल लौट पड़ा रशीद के साथ।

'और लोग कहां हैं···?' पूछा जुगल ने।

'गांव में घूम रहे हैं···' उत्तर दिया रशीद ने। फिर क्षण भर रुक कर पूछा—'गिरीश और बेला तो हैं न वहीं ?'

जुगल और रशीद घर में घुसे, तो बेला और गिरीश सट-कर बैठे हुए कुछ बातें कर रहे थे। रशीद ने एक बार ध्यान से उन दोनों को देखा और तब जुगल के चेहरे पर नजर डाली। उदासी का कारण समझ गया रशीद।

'आओ रशीद भाई···।' गिरीश ने कहा—'कैसे टपक पड़े आज ?'

रशीद और जुगल बैठ गए।

'बात यह है।' रशीद बोला—'कि हमारी जमात के कुछ गुण्डे खुराफात मचाना चाहते हैं—तुम लोगों को होशियार कर देना मैंने लाजिमी समझा।'

'कैसी खुराफात ?' गिरीश ने पूछा।

'मुझे छोड़कर यहां और सब मुसलमान पहले एक थे और उनका इरादा था कि मजहब की आड़ में यहां मुसलमानी अमलदारी कायम की जाय···मगर जब से तुम लोग यहां आये हो, ज्यादातर मुसलमान तुम लोगों से हमदर्दी रखने लगे हैं··· सिर्फ थोड़े-से बचे हैं, जिनके दिमाग में अब भी खूंरेजी की आग जल रही है और मौका पाकर वे शरारत से बाज नहीं आयेंगे। इसके लिए तुम्हें कोई रास्ता सोचना पड़ेगा।'

'हम समझ लेंगे सबसे, रशीद भाई। कितने होंगे सब मिला-कर ?'

'यही दस-बारह···! शहर से एक इसहाक मियां आते हैं, जिन्होंने जुम्मन को यहां का रहनुमा बनाया है और लड़ने के लिए शहर से पोशीदा तौर पर बहुत से हथियार भेजे हैं···आज दो-तीन दिन से उनकी मीटिंग हो रही है। कल मुझे भी बुला-कर डराया-धमकाया था।'

'क्या कहा उन लोगों ने ?' गिरीश ने पूछा।

'कह रहे थे कि तुम्हीं ने सब मुसलमानों को बहकाया है—हम तुम्हारी जान ले लेंगे···।'

'इसहाक मियां तो शहर के कट्टर मुसलिम लीगी हैं, शायद सेक्रेटरी भी हैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं मैं।' बोला गिरीश।

'आज दो-तीन दिन से गांव में आये हैं—शाम को मीटिंग होगी···' रशीद ने कहा—'अगर अभी से कुछ न किया गया तो भाई-भाई लड़ मरेंगे।'

'आज ही सब निपटारा हो जाएगा, रशीद भाई।' गिरीश ने कहा।

तब तक प्रेमचन्द आदि भी आ गए और सब लोग साथ बैठकर इस बात पर विचार करने लगे कि इन गुण्डों के संगठन को कैसे नष्ट किया जाय ?

उसी दिन शाम को—जुम्मन के घर कट्टर मुसलमानों का जमघट हुआ। छिपे-छिपे सब लोग एकत्रित हुए और आंगन में आ बैठे। इसहाक मियां भी तकिया के सहारे आ बैठे। केवल ग्यारह मुसलमान थे; सभी गुण्डे लग रहे थे। मुख पर क्रूरता की छाप थी। शरीफ मुसलमान तो उस जमात से पहले ही निकल चुके थे।

जुम्मन ने इसहाक की ओर देखते हुए कहा—'हमारे मनसूबों को इस गांव के कुछ बुजदिल मुसलमानों ने बालाये-ताक पर रख दिया···सभी काफिरों के दल में जा मिले। सिर्फ यही ग्यारह मुरीद बच रहे हैं, जो मौजूद हैं।'

'कोई बात नहीं, जुम्मन मियां।' इसहाक बोला—'ग्यारह काफिरों से तो हमारे ग्यारह मजहबपरस्त बेहतर हैं। ये हमारी वह मदद करेंगे कि जमीन-आसमान के फरिश्ते वाह-वाह कर उठेंगे, हमारे मनसूबे नाउम्मीदों की दरिया में गर्क नहीं होंगे···आज नहीं तो कल हमारी फतह जरूर होगी···घबड़ाने की कोई बात नहीं, मेरे हमदर्द दोस्त !'

'यह सब इसी कम्बख्त रशीद की कारगुजारी है···।' एक ने कहा।

'हम उससे समझ लेंगे, दोस्तो···! इस जंगे-मजहब में काफिरों का हर दोस्त हमारा दुश्मन है, चाहे वह मुसलमान हो

या खुदा का फरिश्ता। कायदे-आजम ने पाकिस्तान बना लिया है और हम लोग उन्हीं के पाक हुक्म से हिन्दुस्तान में रहकर अपनी जड़ें मजबूत कर रहे हैं, ताकि हमले के वक्त हम पाकिस्तान को पूरी मदद कर सकें…'

'हम सब लोग आपके साथ हैं, किबला…।' सबने एक स्वर से कहा।

'मौका हाथ में आकर निकल गया…' इसहाक बोला—'हमें हमारे ही दोस्तों ने धोखा दिया, मगर इतने से हम शिकस्त नहीं खा सकते। मौका आते ही हमारा हमला होगा…फतह हमारी होगी।'

इतने में ही जुम्मन के दरवाजे पर धांय से गोली की आवाज कड़क उठी और कच्चे मकान की दीवारें कांप उठीं।

सब घबड़ाकर उठ खड़े हुए।

'क्या बात है ?' इसहाक ने पूछा।

तब तक धड़धड़ाते हुए प्रेमचन्द, जुगल, गिरीश आदि अन्दर घुस आए और उस जमात के बीच में आ खड़े हुए।

नटवर बाहर रह गया था, जो प्रेमचन्द की झूठी पिस्तौल में कार्क भर-भरकर धांय-धांय की आवाजें कर रहा था।

'खबरदार…!' प्रेमचन्द चिल्लाया—'कोई अपनी जगह से हिले नहीं—हमारे पास बन्दूकें हैं, सीना छेद के रख देंगी तुम लोगों का…ओह ! आप भी हैं, इसहाक मियां ?'

'तुम लोग यहां क्यों आए हुए हो ? किसके हुक्म से घर में घुस पड़े…?' इसहाक ने कड़क कर पूछा।

'हम गांव के सरपंच हैं…' प्रेमचन्द ने कहा—'औ[illegible] में होते हर विद्रोह को दबाने की हमारी जिम्मेदारी है[illegible]ते हैं, यहां किसके हुक्म से आये हो, इसहाक मियां ?'

'मेरी यहां रिश्तेदारी है।'

'तुम अपने रिश्तेदार भाई को, भाई के कलेजे में खंज[illegible] भौंकने की नसीहत देने आए हो, तुफ है तुम पर, तुम्हारी शरा[illegible]फत पर।'

'ज्यादा बढ़कर बातें मत करो, नहीं तो अक्ल ठिकाने ल[illegible] दी जाएगी।' इसहाक मियां बोले। वे जानते थे कि उन[illegible]

इशारा पाते ही वहां उपस्थित सभी मुसलमान इन काफिरों पर टूट पड़ेंगे और इन्हें जमीन पर सुलाकर ही दम लेंगे।

'गफलत में न रहो, इसहाक मियां।' प्रेमचन्द भी गरजा—'यहां का हर मुसलमान हमारे एहसान के बोझ से दबा है··· प्लेग के डर से जब तुम शहर में छिपे बैठे थे, तब हमने हिन्दू और मुसलमान का भेद भुलाकर इन सबकी सेवा की है, सबको गले लगाकर अपना भाई स्वीकार किया है; मैं यह जानता हूं कि मजहबी मतभेद हो तो हो, मगर कोई भी मुसलमान एहसान-फरामोश नहीं हो सकता। मुझे विश्वास है कि यहां का हर आदमी मुझे अपना सगा भाई समझता है···।'

प्रेमचन्द राजनीतिक दांव-पेंच का सहारा लेकर इतनी बात कह गया, जिसका असर उन कट्टर मुसलमानों पर पड़े बिना न रहा। सभी के सर अपने आप नीचे झुक गए।

'हमारे पास ताकत भी है और हमदर्दी भी···' प्रेमचन्द कहता गया—'हमारे दिल में जहर भी है और अमृत भी। हम यहां इस प्रकार निडर होकर घुस आये हैं यह अपनी ताकत के बल पर ही···बाहर सैकड़ों आदमी इस घर के चारों तरफ हथियार लिए खामोश खड़े हैं, इशारा पाते ही तुम गद्दारों को चटनी की तरह पीस डालेंगे मगर हम यहां अपनी ताकत दिखाने नहीं आये हैं, हम अपने गुमराह भाइयों को रास्ता दिखाने आए हैं, उन्हें गले से लगाने आए हैं—यह कहने आए हैं कि खूंरेजी हैवानियत है और रहमदिली सच्ची इन्सानियत। हम गांव में सुख-शान्ति देखना चाहते हैं।'

'तुम अभी निकल जाओ यहां से···।' गरजा इसहाक—'हमें तुम्हारी नसीहत की जरूरत नहीं।'

'मैं तुम्हारे घर नहीं आया हूं, इसहाक मियां···। हम लोग जुम्मन मियां के घर आये हैं, जो हमारे गांव के रईस मुसलमान हैं। अगर वे कहें तो हम अभी यहां से निकल जायेंगे। मगर जुम्मन मियां की जान खुद हमने बचाई है—इसको वे इनकार नहीं कर सकते, मुझे विश्वास है।'

कहकर प्रेमचन्द ने जुम्मन की ओर देखा। जुम्मन का सर नीचा हो गया। कुछ बोला नहीं वह।

'अरे मुसलमान भाइयो! आप लोग मेहरबानी करके बैठ

जायं और गौर से मेरी बात सुनें···' प्रेमचन्द ने कहा।

सभी मुसलमान अपनी जगह पर बैठ गए।

मित्र लोग भी इसहाक मियां की बगल में आसन जमा बैठे।

'गिरीश भैया ! बोलो तुम।' प्रेमचन्द बोला।

गिरीश उठा और कहने लगा—

'इस समय जबकि चारों ओर दुनिया में हाहाकार मचा हुआ है, खाने को अन्न और पहनने को कपड़ा नहीं मिलता—हमें दूध-पानी की तरह एक होकर काम करना चाहिए। दंगे-फसाद करने से, सिवा नुकसान के फायदा नहीं होगा। मजहब की दीवानगी हर हालत में खौफनाक है। दुनिया का कोई भी मजहब, एक-दूसरे इन्सान का गला काटने की इजाजत नही देता खून बहाने को नहीं कहता। मजहब का उसूल है—इन्सान के ख्यालात को ऊंचा उठाकर खुदा के पाक कदमों तक पहुंचाना। तुम्हारा खुदा और हमारा ईश्वर दो नहीं हैं और न तो हम दोनों में फर्क है···फर्क तो इन्सान का बनाया हुआ है, नफरत हमारे दिल का फितूर है। जो सुख पड़ोसी की सेवा करने में है, गला काटने में नहीं। इस लड़ाई-झगड़े से हर कौम के शरीफ हमेशा अलग रहे हैं और गुण्डों ने मनमाना खेल खेला है। शरीफ लुटे हैं और गुण्डों ने लूटा है। मुझे मालूम है कि इधर के दंगों में मुसलमान गुण्डों ने मुसलमान का घर, और हिन्दू गुण्डों ने हिन्दू का घर लूट लिया है। बदमाशों का कोई मजहब नहीं होता। लूटना और, कत्ल करना ही उनका मजहब है···।'

सब मुसलमान ध्यान से एक-एक बात सुन रहे थे और बगल में बैठे हुए इसहाक मियां दांत पीस रहे थे। गिरीश पुनः कहने लगा—

'तुम लोग पाकिस्तान का स्वप्न देख रहे हो···परन्तु यह समझ लो कि पाकिस्तान जिन्हें मिलना था उन्हें मिल चुका। जो बादशाह बनना चाहते थे, वे बन चुके। तुम तो गरीब थे और अब भी वहीं हो···तब भी हिन्दुस्तान में थे और अब भी वहीं हो···तुम्हारे कायदे-आजम ने साफ शब्दों में कह दिया है कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों को पाकिस्तान में कोई जगह नहीं। पाकिस्तान के मुसलमान तो तुम्हें असली मुसलमान भी नहीं

में हो।

(४) गांव की मिट्टी की जांच कराकर ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि पैदावार बढ़े और हर ऋतु में कोई न कोई फसल पैदा की जा सके।

(५) गांव में एक बीज-भण्डार खोला जाय, जिसमें फल, तरकारी आदि के बीज संगृहीत किये जायं और गांव वालों को उचित मूल्य पर दिए जायें। बोने के लिए गल्ले आदि सवाई पर दिए जायं।

(६) सिंचाई के लिए नाले और तालाब बांधने का और नये कुएं खुदवाने का प्रबन्ध किया जाय।

(७) खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त तिलहन, कपास आदि उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जाय।

(८) खाद बनाने के लिए विशेष प्रबन्ध किया जाय। बरसाती गोबर और कूड़ा-करकट सड़ाने के लिए बड़े-बड़े गड्ढे खोदे जायं।

(९) खेतों का बंटवारा करते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि हर किसान को एक ही स्थान पर इकट्ठी जमीन मिल जाय, थोड़ा इधर और थोड़ा उधर नहीं।

(१०) गांव में एक तगड़ा सांड रखा जाय, ताकि पशुओं की नस्ल सुधारी जा सके।

(११) गांव में चरखे चलवाये जायं—जुलाहों से कपड़ा बुनवाया जाय और शहर से कपड़े मंगाना धीरे-धीरे बन्द कर दिया जाय।

(१२) अन्य ग्राम्य-उद्योग की उन्नति की जाय। ऐसी व्यवस्था हो कि सारी आवश्यक वस्तुएं गांव में ही प्राप्त हो जायं।

(१३) एक ग्राम-पंचायत की स्थापना की जाय, जिसमें चुने-चुने लोग रहें। उनका कार्य होगा पंचायत के काम की देख-रेख करना, झगड़ों का न्यायपूर्ण ढंग से निपटारा करना।

(१४) सुरक्षा के लिए रक्षा दल बनाया जाय— जिसमें कसरत आदि के अतिरिक्त अस्त्र-शस्त्रों की भी शिक्षा दी जाय। रक्षा-दल के लिए एक व्यायामशाला भी रहे।

(१५) प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए एक स्कूल रहे, जहां उन्हें

खेल-कूद द्वारा शिक्षा दी जाय।

(१६) गांव में एक पुस्तकालय स्थापित किया जाय और पत्र-पत्रिकायें मंगायी जायं। रात्रि पाठशाला में ग्रामीणों को समाचार-पत्र पढ़कर सुनाये जायं।

(१७) एक रेडियो सेट की व्यवस्था की जाय।

(१८) गांव में स्वास्थ्य-रक्षा के लिए एक डॉक्टर रखा जाय जो दवा देने के अतिरिक्त और भी अन्य काम कर सके।

(१९) गांव के दाहिने किनारे पर बहुत बड़ा घेरा बनाया जाय, जिसके अन्दर बीज-भण्डार, ग्राम पंचायत, रक्षा-दल, रात्रि पाठशाला, पुस्तकालय, व्यायामशाला आदि के लिए पृथक्-पृथक् भवनों का निर्माण हो। औषधालय के लिए विशेष प्रकार का स्वास्थ्यप्रद भवन हो।

योजना के स्वीकृत होने पर ग्रामवासियों की बृहत सभा बुलायी गयी। सारी योजना उन्हें पढ़कर समझा दी गयी। ग्रामवासी इस नयी सुधारवादी योजना से अत्यन्त प्रसन्न हुए।

दूसरे दिन से मित्रगण जमीन के बटवारे में लग गये। कुछ लोग घूमकर यह लिखने लगे कि किसके यहां कितने आदमी हैं और कितनी जमीन में उनका गुजारा हो सकता है।

आवश्यक जांच-पड़ताल कर लेने के पश्चात जुगल आदि की बैठक पुनः बैठी और जमीन का निश्चित रूप से बंटवारा कर दिया गया।

ठाकुर के हिस्से में दस बीघे जमीन और हवेली आयी। इतने में ही उन्हें परम सन्तोष हुआ।

एक सप्ताह बाद सभी किसान और ठाकुर शहर की कचहरी में आये और नये पट्टे लिखकर उनकी रजिस्ट्री कर दी गयीं।

इसके बाद ठाकुर के स्थायी कोष का निरीक्षण हुआ। पचास हजार नगद थे कोष में! इतने रुपयों में से किस कार्य में कितना खर्च किया जाय, इसकी भी लिस्ट बन गयी।

ग्राम पंचायत का चुनाव हुआ। जुगल सर्वसम्मति से सरपंच निर्वाचित हुआ। गिरीश पर औषधालय और ग्रामोद्योग की उन्नति का भार सौंपा गया। प्रेमचन्द रक्षादल का नायक नियुक्त हुआ। नटवर को, जो एग्रीकल्चर का विद्यार्थी था,

जमीन की देख-रेख, बीज भण्डार का संचालन, खाद का निर्माण आदि कार्य सौंपा गया।

और विपिनबिहारी रात्रि पाठशाला, पुस्तकालय आदि का संचालक नियुक्त किया गया।

ठाकुर ने नाले, तालाब पर बांध बनवाने तथा नये कुएं खुदवाने का भार अपने ऊपर लिया।

और पुरोहितजी गांव भर के पुरोहित थे ही—उनका कार्य तो सर्वविदित था।

भिन्न-भिन्न भवनों के निर्माण के लिए जगह चुनी गयी। निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ। ग्रामवासियों ने निर्माण-कार्य में जी-जान से मदद की। जिन्हें दिन को अवकाश न मिलता वे रात्रि में आकर श्रमदान करते।

सात-आठ महीने में उस गांव की कायापलट हो गयी।

भवनों का निर्माण पूर्ण हो चुका था।

एक दिन उत्साह के साथ उत्सव मनाया गया। कृषकों ने ठाकुर के सद्कृत्य के लिए उन्हें श्रद्धापूर्वक पुष्प मालाओं से ढंक दिया।

दूसरे दिन से सभी विभागों का कार्य प्रारम्भ हो गया।

हर आदमी ने अपना-अपना भार असीम उत्साह के साथ सम्हाला।

गिरीश, प्रेमचन्द, नटवर तथा विपिनबिहारी—सभी इस संसार में अकेले थे। अपना कहने के लिए संसार में उनका कोई नहीं था।

सो वे सभी शहर की माया छोड़कर गांव में ही रहने लगे।

यहां उन्हें सुख और शान्ति मिली और मिला एक अत्यन्त व्यस्त काम, कि सिर उठाने तक की फुर्सत न थी।

गिरीश का अपना निजी एक मकान शहर में था, जो आज कल उसके न रहने से बन्द पड़ा था।

धीरे-धीरे गांव में विद्या की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी।

कल का रोता-सिसकता गांव, आज स्वर्गपुरी बन गया था।

उन परिश्रमशील युवकों के प्रयत्न से सुख का जो सूर्य उदय

हुआ, उसके प्रकाश से सभी के हृदय जगमगा उठे।

ठाकुर अब भी हवेली में ही रहते थे। रामसग्त आदि उनका खेत जोतते थे। मुंशीजी भी कुदाल लेकर दो-चार हाथ चला ही लेते थे।

यह लोग तो ठाकुर के कुटुम्ब थे—और उन । था ही कौन ? न स्त्री न पुत्र !

सारा कार्य अत्यन्त व्यवस्थित ढंग से हो रहा था।

एक दिन विपिनबिहारी ने शहर जाने की इच्छा प्रकट की—तो अन्य मित्र भी शहर घूमने की लालसा को रोक न सके और साथ चलने को तैयार हो गये। जुगल ने भी चलना चाहा, तो गिरीश बोला—'सभी लोग चल दोगे, तो यहां का काम कौन देखेगा ?'

'बड़े बुजुर्ग लोग तो हैं ही—फिर एक सप्ताह बाद तो लौट ही आयेंगे हम लोग…।' प्रेमचन्द ने कहा।

'तो ठीक है…।' गिरीश ने बात मान ली।

बेला को हवेली में छोड़कर सभी मित्र शहर चले गये। ठाकुर अब बेला को बेटी की तरह मानने लगे थे। कभी-कभी पुरोहित भी आकर आशीर्वाद दे जाते थे।

९

पूर्णमासी का चांद जब निकला, तो गांव की स्वच्छता जाग उठी। ठाकुर चौपाल में बैठे हुए थे, तभी आ पहुंचे पुरोहित दयाराम दुबे।

'आओ महाराज···! पालागी!' ठाकुर ने उठकर अभ्यर्थना की।

'आयुष्मान जजमान···!' कहकर पुरोहित बैठ गये।

'जुगल आदि को शहर गये आज चार दिन हुए न पण्डित जी···?' पूछा ठाकुर ने।

'हां, चौथा दिन है आज! एक सप्ताह बाद आने को कह गये हैं!' पुरोहित ने कहा—'काम तो चल ही रहा है, चाहे सात दिन में आयें या दस दिन में।'

'अच्छा तो यह बताइये महाराज! यह नयी व्यवस्था आपको अच्छी तो लगी न?'

'क्यों नहीं ठाकुर! भला लिपा-पुता घर और सफेद कपड़ा किसे अच्छा नहीं लगता···इन लड़कों ने तुम्हें भी सीधा करके ही छोड़ा···।'

'यह बहुत ही अच्छा हुआ, पुरोहित जी! जिन्दगी रहते कुछ नाम कमा लिया। सन्तोष तो रहेगा कि मरते समय गांव के लिए कुछ करके मरा हूं। ठाकुर घराने में मेरा नाम सौ-दो-सौ बरस तक तो जरूर ही चलेगा। गांव में···बड़े-बूढ़े कहेंगे कि एक थे ठाकुर बलजीत सिंह जिन्होंने अपनी जमीन गांव वालों को दान कर दी···और कौन है वारिस मेरा? यदि कुछ कर नहीं देता, तो एक दिन दूर के रिश्तेदार आकर इस जमींदारी पर काबिज हो जाते। मैंने भी सोचा कि मोटे-मोटे रिश्तेदारों को न देकर, यह जमीन गरीबों को ही दे दूं तो नाम अमर रहेगा—नहीं तो सब थूकते भी नहीं मेरे नाम पर···।'

'ठीक कहते हो ठाकुर!' पुरोहित बोले—'बेला कहां है?'

'भीतर रोटी पका रही होगी···!' ठाकुर ने कहा—'तुम्हारे जुगल ने तो ब्राह्मण, ठाकुर और शूद्र का नाम तक मिटा दिया···जिसे कभी छूता नहीं था, उसके हाथ की रोटी खा रहा

हूं आजकल ! यह समय की गति है महाराज !'

'सो तो है ही, ठाकुर ! मेरा भी नेम-धरम सब ले लिया इन छोकरों ने।'

इसी समय जुम्मन, रशीद तथा गांव के अन्य पच्चीस-तीस मुसलमानों ने वहां प्रवेश किया और ठाकुर को जुहार करके बैठ गये।

'कैसे चले जुम्मन मियां ?' ठाकुर ने पूछा।

'सरकार के दीदार नसीब हुए जमाना गुजर चुका था। सोचा चलकर गरीबों के हमदर्द की कदमबोसी कर आऊं...।' जुम्मन ने कहा।

'वाहजी जुम्मन मियां...!' ठाकुर बोले—'खूब कहा तुमने भाई ! मगर कोई काम तो होगा ही, नहीं तो इतने दिनों तक मेरी याद क्यों नहीं आई तुम लोगों को ?'

'कुछ काम भी है, सरकार ! तभी इतने लोग आपकी खिदमत में हाजिर हुए हैं...बाबू लोग होते तो हम उन्हीं से कहते, मगर वे लोग शहर गये हैं, लिहाजा आप ही गौर कीजिए...।'

'कौन-सा काम है ?'

'यों तो गांव में हिन्दू-मुसलमान सभी के साथ एक-सा बर्ताव होता है, सरकार ! और हमारे हिन्दू-भाइयों की हम पर मेहरबानी भी रहती है, मगर यह खान-पान का झगड़ा अब भी चला आ रहा है, जिससे कुछ विलगाव-सा लगता है।'

'यह भी कुछ दिनों में मिट जायगा, जुम्मन मियां ! सुधार एकाएक नहीं हो जाता।'

'बजा फरमाते हैं आप...।' जुम्मन कहने लगा—'मगर यह फिरकापरस्ती की दीवार मिट जाय तभी बेहतर है, सरकार ! यही फरियाद लेकर हाजिर हुए हैं।'

'मगर यह दीवार कैसे मिट सकती है ?' ठाकुर ने पूछा।

'गांव का हर मुसलमान अपना मजहब छोड़ने को तैयार है... हम आपस में गुफ्तगू कर चुके हैं, और चाहते हैं कि हम लोगों को हिन्दू बना लिया जाय !'

'अपना धर्म तुम क्यों छोड़ना चाहते हो, मियां ?'

'सरकार ! हम मजहब के पीर नहीं बनना चाहते। हम

गांव में भाईचारा लाना चाहते हैं···चाहते हैं कि सब साथ मिलकर खाना खा सकें, खुशियां मना सकें। यह मजहब की दीवार हमारे लिये सबसे बड़ी रुकावट है सरकार! हमने यह इशारा गांव के किसानों के सामने रखा था तो वे इस पर बेहद खुश हुए और कहा कि तुम्हारे पूर्वज आखिर हिन्दू ही तो थे, फिर तुम लोगों को अपने धरम में क्यों न लेंगे···? वे हमें गले लगाने के लिए तैयार हैं···बस, आपके हुक्म की देर है।'

'मुझे कोई एतराज नहीं···!' ठाकुर ने कहा—'क्यों पण्डित जी! आपकी क्या राय है?'

'ठीक तो है—इनकी शुद्धि की जा सकती है।'

'फिर दिन तै कर दीजिए, पण्डितजी···!' जुम्मन ने कहा।

'सप्तमी का दिन अच्छा रहेगा—पुष्प नक्षत्र भी है और सर्वांग सिद्ध योग भी!' पुरोहित ने कहा।

'तब तो बहुत अच्छा रहेगा···।' ठाकुर बोले—'पण्डित जी! इसी अवसर पर एक काम और हो जाय तो कैसा रहे?'

'कौन-सा काम ठाकुर?'

'बेला की शादी···! अब वह सयानी हो चुकी है, उसके हाथ पीले कर देना ठीक है···मैं पांव पूज दूंगा।' ठाकुर ने कहा।

'मगर शादी होगी किससे जजमान?'

'जुगल से···! और किससे? यह तो सभी जानते हैं, पण्डितजी कि उन दोनों में बचपन से ही बड़ा प्रेम है···फिर उन्हें जिन्दगी भर के लिए एक क्यों न कर दिया जाय! क्या राय है आपकी?'

पुरोहित बड़ी देर तक चुप रहकर सोचते रहे, फिर बोले—'अब तो सभी कुछ हो रहा है, ठाकुर, तो वह भी सही।'

'तो उसी दिन शादी भी हो जाय!' ठाकुर ने कहा—'कल रामसरन को जुगल के पास शहर भेज दूंगा। कहला दूंगा कि शादी के दिन वहीं से बारात सजाकर लावे···कम-से-कम गांव वाले शहर की बारात देख लेंगे।'

रामसरन और मुंशीजी दरवाजे पर खड़े हुए सब सुन रहे थे।

शादी की बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मुंशीजी दौड़-

कर सामने आकर बोले—'सरकार, न हो तो मैं ही शहर चला जाऊं ?'

'वे अनाड़ी लड़के बारात सजाना क्या जानें···? मैं रहूंगा तो सब इन्तजाम कर लूंगा···मेरा चश्मा भी दम तोड़ चुका है, सो इसी खुशी में जुगल से मांग लूंगा।'

'ठीक है—तब तुम्हीं चले जाना।'

दूसरे दिन मुंशीजी तड़के ही शहर चल दिये।

गांव में सजावट होने लगी। चारों ओर हर्ष उमड़ पड़ा।

उस दिन खाना खाते हुए ठाकुर बोले—'बेला! तुमने कुछ सुना ?'

'नहीं तो।' बेला ने कहा।

'तुम्हारी शादी होने जा रही है।'

'किससे···?'

'जुगल से···! पसन्द है न ?' ठाकुर ने पूछा।

बेला चुप हो रही। कुछ बोल न सकी।

'क्या सोचने लगी ?'

'कुछ नहीं···।' लज्जायुक्त स्वर में बेला ने कहा।

'यह शादी तुम्हारे मन की है न ?'

'जो आप लोगों की इच्छा हो, करें—मुझे क्या !'

बेला ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया और उठकर बाहर चली गयी। ठाकुर ने समझ लिया कि बेला शरमा रही है।

सप्तमी के दिन तक पूरी तैयारी हो गयी। पाठशाला के भवन में बारात का उतरना निश्चित हो गया। गांव भर में सहभोज के लिए पूर्ण तैयारी हो गयी।

मिठाइयां बनने लगीं—पूरी, कचौड़ी, मालपूए उतरने लगे। दस बजते-बजते गांव के बाहर बारात का बाजा सुनाई पड़ा।

गांव वालों की भीड़ उमड़ पड़ी दूल्हे जुगल को देखने के लिए। ठाकुर आदि भी अगवानी के लिए आगे बढ़े। बारात के आगे-आगे सुनहरे फ्रेम का चश्मा चढ़ाये हुए मुंशीजी चटकते-मटकते चले आ रहे थे और उनके पीछे बाजे वाले थे। बाजे वालों के पीछे बारह-चौदह बाराती थे—और सबके अन्त में थी पालकी।

यह क्या ? ठाकुर चौंक पड़े···जुगल पालकी के नीचे-नीचे क्यों चला आ रहा है···? पालकी में कौन है ?

वे दौड़कर मुंशीजी के पास पहुंचे। उन्हें अलग बुलाकर पूछा—'यह क्या मुंशीजी···? जुगल सादे कपड़ों में पैदल क्यों चला आ रहा है ?'

'यह उनकी इच्छा सरकार···!'

'तुम्हारा मतलब···? क्या पालकी में कोई दूसरा है ?'

'हां मालिक···!'

'कौन है ?'

'गिरीश बाबू दूल्हा बने हैं···!' मुन्शीजी ने कहा।

'ऐसा क्यों हुआ मुन्शी ? तुम क्या घास छीलते रहे वहां ? बेला कभी गिरीश को स्वीकार नहीं करेगी।'

ठाकुर का क्रोध देखकर मुन्शीजी ने झट से अपना चश्मा उतार कर हाथ में ले लिया, नहीं तो शायद पैर के कम्पन से नया चश्मा जमीन पर गिरकर टूट जाता।

'तुम जुगल को भेजो मेरे पास।' ठाकुर ने आज्ञा दी। मुन्शीजी जुगल को बुलाने चले गये।

तब तक बारात पाठशाला तक पहुंच चुकी थी। गांव वालों ने पालकी में से गिरीश को उतरते देखा तो विस्मय से एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे।

जुगल शुष्क मुखाकृति लिए ठाकुर के सामने आ खड़ा हुआ।

'यह क्या जुगल···? यह खिलवाड़ कैसा ?'

'खिलवाड़ नहीं है यह, ठाकुर काका···! गिरीश ही वास्तविक दूल्हा है।'

'और तुम···! तुम क्या जनम भर कुआंरे ही बैठे रहोगे ?' ठाकुर व्यग्र स्वर में बोले।

'इरादा तो ऐसा ही है, ठाकुर काका···! यह शादी हो जाने दीजिए। बेला और गिरीश की जोड़ी अच्छी रहेगी।'

'मगर क्या बेला इसे पसन्द करेगी ?' ठाकुर ने कहा।

'बेला को जितना मैं समझ सका हूं, उतना शायद कोई नहीं। उसके हृदय का तार-तार, उसके दर्द का रेशा-रेशा मेरे निकट साकार है···जो कुछ मैंने किया है, इससे उसे प्रसन्नता

होगी। जानता हूं मैं कि गिरीश और बेला एक-दूसरे को प्यार करते हैं। फिर बेला तो मेरी बहन है, ठाकुर। वह मुझे भैया पुकारती है।'

'मैं सब समझता हूं, जुगल ! तुमने बेला और गिरीश के लिए जो यह त्याग किया है वह तुम्हें सुखी नहीं रहने देगा। जलन ही तुम्हें मिलेगी…और उस जलन से तुम तड़पते रहोगे।'

'जो होगा देख लूंगा, ठाकुर काका ! मेरे विचार से इन्सान कष्ट सहकर ही खरा इन्सान बन पाता है। चलूं, जरा बेला से मिल लूं ?'

कहकर जुगल हवेली की ओर चल पड़ा। ठाकुर बारात की आवभगत में लग गये।

बेला आज बेला की कली बनी हुई थी। सुन्दर कपड़ों से सौंदर्य और भी निखर आया था। परन्तु मुख पर एक क्षीण उदासी की छाया थी।

'बेला…!' कहता हुआ आ पहुंचा जुगल।

बेला की समझ में नहीं आया कि वह अब जुगल को क्या कहकर पुकारे। वह शर्माई हुई नीचे की ओर देखती खड़ी रही।

'मेरी ओर देख, बेला…।' जुगल ने पास आकर कहा।

बेला ने एक क्षण के लिए नेत्र उठाकर जुगल की ओर देखा, तो एकदम चौंक पड़ी। जुगल की मुखाकृति म्लान थी। बदन पर साधारण वस्त्र थे—दूल्हा तो वह लगता नहीं था।

'तेरे लिए बड़ा अच्छा दूल्हा लाया हूं, बेला…!' जुगल ने कहा—'गिरीश तुझे पसन्द है न…?'

जुगल के मुख से गिरीश का नाम सुनते ही बेला का मुख लाल हो उठा।

'वही दूल्हा बनकर आया है…।' जुगल ने वाक्य पूरा किया।

'जुगल भैया…!' दौड़कर बेला जुगल के कलेजे से जा लिपटी ठीक पहले की तरह।

जुगल उसके सर पर हाथ फेरने लगा स्नेह और ममता से भर कर। आंखें पोंछ डालीं उसने, ताकि बेला उसे न देख ले।

'इधर कर अपना हाथ···!' जुगल ने बेला की कलाई हाथ में लेते हुए कहा—'ठाकुर ने तो तुझे काफी गहने दिये हैं और तेरा दूल्हा भी कम नहीं लाया है, मगर अपने गरीब भाई की यह भेंट स्वीकार कर। डाल ले इन्हें कलाइयों में।'

जुगल ने जेब से ठीक वैसी ही चूड़ियों का पैकेट निकाला, जैसा वह पहले ला चुका था···बेला में कोई हरकत नहीं हुई तो उसने एक-एक करके बेला की दोनों कलाइयों में चूड़ियां पहना दीं।

बड़ी देर तक हाथ में बेला की कलाई कपड़े, उन चूड़ियों की ओर देखता रहा। एकाएक चमकती चूड़ियों के शरीर पर दो बूंद गर्म आंसू लोट पड़े। बेला चौंक पड़ी। जुगल के मुख की ओर देखा···दोनों आंखों से आंसू बह रहे थे।

'जुगल भैया···!'

'बोल···! क्या कहती है···?'

'रोते हो तुम?'

'अब आंसू भी छीन लेना चाहती है, पगली···!' जुगल ने भीगी आवाज में कहा।

'तुम्हें क्या दुःख है, जुगल भैया?'

'पगली कहीं की···! अब मेरा दुःख लेकर क्या करेगी? अब तो तू दूसरे की बनने जा रही है। जिसके साथ इतने दिन खेलते-कूदते दिन गुजारे थे वह अब पराई हो जायगी, वह स्वच्छन्दता न रहेगी, वह आजादी नहीं रहेगी—क्या यह कम दुःख है मेरे लिये?'

'मैं तो गांव में ही रहूंगी न, भैया···! वे लोग भी तो यहीं रहेंगे।'

'हां-हां···! मगर कुछ दिनों के लिये तो तुझे शहर जाना ही पड़ेगा। गिरीश के पड़ोस की स्त्रियां तुझे देखने को अत्यन्त उत्सुक हैं···शहर जायेगी तो थोड़ा घूम-फिर भी लेगी।'

'मगर तुम्हारे आंसू मुझसे नहीं देखे जाते, जुगल भैया!'

'बेला, ये आंसू तेरे दुश्मन हैं तो ले इन्हें भी मिटा देता हूं···।'

जुगल ने अपने नेत्र पोंछ लिए और मुस्कराने का असफल अभिनय किया उसने।

'अब चलता हूं मैं, तेरे भाई का मित्र तेरा पति है, मेरी सुख-शान्ति तुम दोनों के साथ है···भूलना नहीं मुझे, बेला !'

घूम पड़ा जुगल और लड़खड़ाते पैरों से बाहर चला गया।

शाम को बृहद् यज्ञ हुआ। सभी मुसलमान—औरत, मर्द, बच्चे इकट्ठे हुए और पुरोहित ने पंचगव्य पिलाकर तथा वैदिक मन्त्रोच्चारण के बीच सबकी शुद्धि की। गांव वालों का धर्म एक हो गया।

इसके बाद बेला और गिरीश का विधिवत् विवाह हुआ।

सहभोज में बाराती और गांव वाले साथ-साथ भोजन करने बैठे।

बहुत दिनों के बाद गांव वालों ने ऐसे उत्सव में भाग लिया था। अतः गले तक चढ़ाकर स्वादिष्ट भोजन किया।

परन्तु जुगल से कुछ खाया नहीं गया। दो-चार कौर खा कर वह मूक बैठा रहा और फिर सबके साथ उठ गया।

दूसरे दिन सवेरे···! एक बैलगाड़ी हवेली के सामने आ खड़ी हुई। दुलहन बेला शहर जाने के लिए उस पर जा बैठी। गिरीश, प्रेमचन्द, नटवर, विपिनबिहारी तथा अन्य बाराती भी उसी पर बैठे।

गिरीश गाड़ी से मुंह बाहर करके बोला—'देखो जुगल ! यहां का काम देखना···एक महीने बाद हम लोग भी आ जायेंगे।'

बैलगाड़ी चल पड़ी। ठाकुर आदि वहीं रह गये। जुगल पैदल ही बैलगाड़ी के साथ-साथ चलने लगा।

गांव के बाहर आकर प्रेमचन्द ने कहा—'अब लौट जाओ जुगल !'

'चलो कुछ दूर तक और···।' जुगल लौटना नहीं चाहता था। चाहता था वह कि बैलगाड़ी इसी तरह चलती रहे और वह उसके सहारे रेंगता हुआ जिन्दगी का सफर पूरा कर दे।

'जुगल भैया···।' घूंघट की ओट में से धीरे से बोली बेला—'लौट जाओ अब।'

'अच्छा···!' जुगल हृदय पर वज्र रखकर बोला—देखना गिरीश ! इस बेला को बचपन से ही मैंने बहन का-सा

प्यार दिया है—प्यार देकर संवारा है, दुलारा है। शहर में कोई तकलीफ न होने पाये इसे।'

'तुम निश्चिन्त रहो जुगल…।' गिरीश ने सान्त्वना दी।

जुगल लौट पड़ा। बैलगाड़ी आगे बढ़ती गई। पगडण्डी पर बैलगाड़ी के पहियों के समानान्तर निशान उभरे हुए थे—लग रहा था, जैसे जुगल के कलेजे पर कोई दोहरी लकीरें खींचता चला गया हो। जिधर भी दृष्टि जाती थी, उधर ही से वेदना की एक लहर उठ खड़ी होती थी। गांव का कण-कण बेला की याद से झुलसा जा रहा था।

जुगल बेला के बगीचे में आकर अमरूद के नीचे बैठ गया। यही पेड़ उनके बचपन का साथी था।

इसकी हर डाल, हर टहनी और हर पत्ते ने उन दोनों का उछल-कूद देखा है, उन दोनों की मधुर बातें सुनी हैं, उन्हें अपनी छाया के नीचे सुलाया है, भूख लगने पर मीठे-मीठे अमरूद खिलाये हैं।

जमीन पर बैठे हुए जुगल के मुख से एक गहरी सांस फूट निकली।

उसका हाथ जेब में गया। एक पुड़िया निकाली उसमें से, जिसमें उन चूड़ियों के टुकड़े थे जिन्हें बेला ने क्रोध में आकर एक दिन तोड़ डाला था। जुगल ने उन टुकड़ों को कसकर मुट्ठी में जकड़ लिया, जैसे वे भी उसे अकेला छोड़ जाना चाहते हों।

धीरे से वह लेट गया और मुट्ठी में बन्द उन निर्जीव कांच के टुकड़ों को धड़कते सीने पर रख लिया।

उसके कलेजे से लगकर वे टुकड़े सजीव होकर सिसकने लगे—सिसकते रहे!

०००



कुशवाहा 'कान्त'

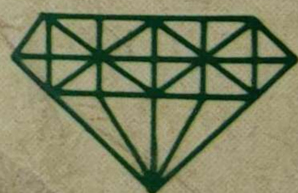
का मनभावन उपन्यास

चूड़ियाँ

कुशवाहाकान्त हिन्दी उपन्यास जगत पर पिछले 40 वर्षों से छाये हुए है। उनकी सरल सशक्त लेखनी ने हिन्दी उपन्यास जगत में हलचल मचा दी थी। उनके उपन्यासों में जहां श्रृंगार रस का अनूठा समन्वय है, वहीं क्रान्तिकारी लेखनी व जासूसी कृतियों में भी उनका कोई सानी नहीं है। उन्होनें कुल 35 उपन्यास लिखे है। वह आज भी उतने ही लोकप्रिय है जितने 40 वर्ष पूर्व थे। उनका प्रत्येक उपन्यास पढ़कर पाठक उनके पूरे उपन्यास पढ़ना चाहता है।

उसी उपन्यासकार की एक उत्कृष्ट रचना आपके हाथों में है।

डायमंड पाकेट बुक्स कुशवाहाकान्त के उपन्यासों को आप तक पहुंचा कर गर्व अनुभव कर रहा है।



डायमंड पाकेट बुक्स